समुन्द समाना बुन्द में

आचार्य रजनीश

सम्पादक

डॉक्टर रामचन्द्र प्रसाद

एम० ए०, पी० एच-डी० (एडिनबरा)

डी० लिट० (पटना)

मोतीलाल बनारसीदास

दिल्ली :: वाराणसी :: पटना

आचार्य रजनीश : एक परिचय

आचार्य रजनीश वर्तमान युग के युवा-द्रष्टा, क्रांतिकारी विचारक, आधुनिक संत, रहस्यदर्शी ऋषि और जीवन-सर्जक हैं।

धर्म, अध्यात्म और साधना मे ही इनका जीवन-प्रवाह है। इसके सिवा कला, साहित्य, दर्शन, राजनीति, समाजशास्त्र, आधुनिक विज्ञान आदि में भी ये अनूठे और अद्वितीय हैं। जीवन को उसकी समग्रता में जानने, जीने और प्रयोग करने के ये जीवन्त प्रतीक हैं। जीवन की चरम ऊंचाइयों में जो फूल खिलने संभव हैं, उन सबके दर्शन इनके व्यक्तित्व में मिलते हैं।

११ दिसम्बर, १९३१ को मध्यप्रदेश के एक छोटे-से गांव मे इनका जन्म हुआ। सन् १९५७ मे इन्होने सागर-विश्वविद्यालय से दर्शन-शास्त्र मे एम० ए० की उपाधि प्रथम श्रेणी मे प्रथम स्थान के साथ प्राप्त की। अपने विद्यार्थी-जीवन मे ये बडे क्रांतिकारी, अद्वितीय जिज्ञासु तथा प्रतिभाशाली छात्र थे। रायपुर और जबलपुर महाविद्यालयों में क्रमश एक और आठ वर्ष के लिए ये आचार्य पद पर शिक्षण-कार्य करते रहे। सन् १९६६ में नौकरी छोड़ कर ये अपना पूरा समय प्रायोगिक साधना के विस्तार और धर्म के पुनरुत्थान में लगा रहे हैं।

आचार्य श्री के प्रवचनो के अनेकानेक सकलन पुस्तकाकार प्रकाशित हो रहे हैं। अब तक लगभग ३० बडी पुस्तकें तथा २५ छोटी पुस्तिकाएं हिन्दी में ही प्रकाशित हो चुकी हैं। अधिकतर पुस्तको के गुजराती, अंग्रेजी और मराठी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। हजारों की सख्या में देशी तथा विदेशी साधक इनसे विविध गूढ़तम साधना-पद्धति में एवं प्रक्रियाओं के सम्बन्ध में प्रेरणा पा रहे हैं।

आचार्य श्री के प्रवचन सूत्रवत् हैं, सीधे हैं, हृदय-स्पर्शी हैं, मीठे हैं, तीखे हैं और साथ ही पूरे व्यक्तित्व को झकझोरने और जगानेवाले हैं।

अन्तर्वस्तु

आमुख

पटने मे आचार्य रजनीश की वह पहली धर्मदेशना थी और मुझे ऐसा लगा था कि तथागत की भांति उनका भी अवतरण सत्वो को ज्ञान का प्रतिबोध कराने के लिए हुआ था। जब वे धर्मोपदेश के पूर्व समाधिस्थ हुए तो मैंने देखा .

उनका ललाट शुद्ध सोने का सा है,

उनकी आँखें झरने पर बैठी हुई कपोतियों के समान हैं,

और, लगता है, वे दूध की धुली हैं

तथा बडी ही सुडौल हैं ।
उनके पाँव स्फटिक स्तम्भो की तरह हैं
जो शुद्ध सोने के आधारो पर रखे हो ।
उनकी वाणी अति मधुर है,
वे परम सुन्दर हैं ।[1]

वे समाधि से व्युत्थित हुए और उपस्थित जन-समूह को सम्बोधित करते हुए कहा "प्रिय आत्मन्, एक रेगिस्तानी सराय मे एक बडा काफिला आया था। यात्री थके हुए थे और ऊँटो को आराम की जरूरत थी। लेकिन जब खूँटियां गाडी जा रही थी तब पता चला कि एक ऊँट की खूँटी और रस्सी खो गई है। उस ऊँट को खुला छोडना अयुक्त था, क्योकि रात के अँधेरे मे उसके भटक जाने की सम्भावना थी। काफिले के मालिक ने सराय के स्वामी से एक खूँटी और रस्सी की माँग की। सराय के स्वामी ने कहा 'मेरे पास न तो कोई खूँटी है और न कोई रस्सी, लेकिन तुम चाहो तो जाकर खूँटी गाड दो, रस्सी बाँध दो और ऊँट से कहो कि वह सो जाय।' काफिले का मालिक बहुत हैरान हुआ। उसने कहा कि यदि खूंटी और रस्सी ही हमारे पास होती तो हम खुद ही न बाँध देते ? हम कौन-सी खूँटी गाड दें और कौन-सी रस्सी बाँध दें ? सराय के मालिक को हँसी आ गई और उसने कहा 'यह जरूरी नही कि ऊँट को असली खूटी और असली रस्मी से ही बाँधा जाय। नकली खूँटी गाड दो, उसके गले मे झूठी रस्सी बाँध दो और उसमे कहो कि वह सो जाय।' ऊँटो के स्वामी को विश्वास तो न हुआ, फिर भी विवश हो उसने झूठी खूँटी गाडी। जो खूँटी नही थी उस पर उसने चोटें की। ऊँट ने चोटें सुनी और समझा कि खूंटी गाडी जा रही है। जो रस्सी नही थी उसे उसने ऊँट के गले मे बाँधा। ऊँट ने समझा कि रस्सी बाँधी जा रही है और वह सो गया। प्रातःकाल जब काफिला उस सराय से रवाना होने लगा तो काफिले के मालिक ने निन्यानबे ऊँटो की खूँटियाँ उखाडी और रस्सियाँ खोली। लेकिन सौवें ऊँट की न तो कोई खूँटी थी और न कोई रस्सी। इसलिए न तो उसकी खूँटी उखाडी गई और न रस्सी खोली गई। निन्यानबे ऊँट उठकर खडे हो गए, पर सौवें ऊँट ने उठने से इनकार कर दिया। उसका मालिक बहुत

१ 'सुलेमान का सर्वश्रेष्ठ गीत', ५। दे धर्मग्रन्थ (इलाहाबाद, १९६५), पृ० ७३८।

परेशान हुआ। सराय के वृद्ध स्वामी से जाकर उसने शिकायत की और कहा कि तुमने कौन-सा मत्र पढ़ दिया है जिसके कारण मेरा ऊँट जमीन से बँध गया है और उठाने पर भी नही उठता। सराय के मालिक ने कहा 'जाकर पहले खूँटी तो उखाडो, रस्सी तो खोलो।' ऊँट के मालिक को उस बूढे की जडता पर ईषत् क्रोध हुआ और उसने कहा 'वहाँ न तो कोई खूँटी है और न कोई रस्सी।' बूढ़े ने कहा 'तुम्हारे लिए वे भले ही न हो, पर ऊँट के लिए हैं। जाओ, खूंटी उखाडो और रस्सी खोलो।' झूठी खूँटी उखाडी गई और रस्सी मे ऊँट के गले को मुक्त किया गया। ऊँट उठकर खडा हो गया। सराय के वृद्ध मालिक ने इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए कहा 'ऊँटो की बात तो जाने दो, खुद तुम और हम झूठ की ऐसी ही खूँटियो से बँधे हैं। इन खूँटियो का कोई अस्तित्व नही, पराधीनता की ऐसी ही रस्सियाँ हमारे गले मे लगी है जिनकी कोई सत्ता नही। मुझे ऊँटो का कोई अनुभव न था, परन्तु मनुष्यो के अनुभव के आधार पर ही मैंने तुम्हे ऐसी सलाह दी थी।"

देखते-ही-देखते प्रवचन के साठ मिनट बीत गए।

मैने तरह-तरह की बोधकथाएँ पढी और सुनी थीं। प्रवचन सुने थे, धर्म-देशनाएँ सुनी थी। परन्तु किसी भी धर्मोपदेशक ने आजतक न तो शास्त्रो का इतना सशक्त खडन किया था और न किसी ने गुरुडम का—'कठमुल्लो' का—इतना पुरजोर विरोध ही। न तो अधश्रद्धा का और न मन्दिरो, मसजिदो तथा गिरजाघरो मे ईश्वर की खोज का। मैने जिन धर्मगुरुओ के प्रवचन सुने थे उनकी परम्परानुगामिनी चेतना भय से आक्रान्त होती थी और उनके व्यक्तित्व मे ऐसा भुवनमोहन तेज भी न था। वे स्निग्धभाषी थे, किन्तु उन्हे अपना गुणानुवाद अधिक प्रिय था, वे अज्ञान-तम से आवृत्त जीवो के उद्धार के लिए उपदेश करते थे, किन्तु अपने निस्तार के लिए ही वे अधिक यत्नवान दीखते थे। इसी कारण आचार्य रजनीश की सद्धर्मदेशना मुझे अधिक हित-विधायक, गम्भीर और, साथ ही साथ, बोधगम्य लगी। हुइ-नेग् की 'अरूप'—गाथा की निम्नलिखित पक्तियाँ उनके दर्शन और साधना-तत्त्व का सार प्रस्तुत करती हैं

(१) 'चाहे हम दस हजार रूपो मे इसकी व्याख्या कर लें,
परन्तु इन सब व्याख्याओ का उद्गम यह एक मूल सिद्धान्त ही है कि हमे अपने अँधेरे और अस्थायी घर के अन्दर प्रकाश करना है,

जो मलिनताओ (क्लेशो) के कारण गन्दा है,
हमे सतत रूप से इसमे प्रज्ञा का प्रकाश करना है।'[1]

(२) 'हमारे मन के सार में ही बोधि व्याप्त है,
इसे अलग ढूंढना गलत होगा,
हमारे अपवित्र मन के अन्दर ही
पवित्र पाया जाता है,
और जब एक बार हमारा मन ठीक हुआ तो हम तीनो प्रकार के मोहावरणो
(क्लेश, दुष्कर्म और अधम योनियो मे प्रायश्चित्त) से मुक्त हो जाते हैं।'

(३) 'प्रत्येक जीव की मुक्ति का अपना अलग मार्ग है,
इसलिए उन्हें एक दूसरे के मार्ग मे
हस्तक्षेप नही करना चाहिए,
और न परस्पर विरोध करना चाहिए,
परन्तु यदि हम स्वय अपने मार्ग को छोड दें
और मुक्ति के किसी
अन्य मार्ग को खोजें,
तो हम इसे नही पायेंगे,
मृत्यु-पर्यन्त हम भले ही भटकते रहें,
अन्त में पछतावा ही हमे मिलेगा।'[3]

(४) 'बुद्ध का क्षेत्र इस ससार में ही है,
इसी मे हमे बोध को खोजना है,
इस ससार से अपने को अलग कर बोधि को खोजना
उसी प्रकार मुक्तिहीन और हास्यास्पद है
जिस प्रकार एक खरगोश के सीग को खोजना।'[4]

---

१ डॉ० भरतसिंह उपाध्याय, ध्यान-सम्प्रदाय (दिल्ली), पृ० ५२, ड्वाइट गॉडार्ड (सम्पा०),
अ बुद्धिस्ट बाइबल (न्यू यॉर्क, १९५१), पृ० ५२०।

२ अनु० डा० भरतसिंह उपाध्याय।

३ उपरिवत।

४ इसका अंगरेजी पाठ इस प्रकार है
This world is the Buddha—world*

आचार्य रजनीश की दृष्टि में मानवात्मा के लिए समुचित आवास न तो राम की नगरी है और न रावण की। इसी प्रकार जीवन का आधार न तो प्रकृति है और न अतिप्रकृति,[1] न काल और न कालातीत, न स्थूल और न सूक्ष्म। इन विरोधी ध्रुव-युग्मों[2] के किसी एक ध्रुव पर जीवन के सत्य का अधिवास नही हो सकता। जब हम सृष्टि के विरोध मे स्रष्टा को, पृथ्वी के विरोध में स्वर्ग को, तात्कालिक साध्य के विरोध में जीवन के परम सत्य को खड़ा कर देते हैं तो जीवन एक अमूर्त प्रत्यय-मात्र रह जाता है। ध्यानाचार्यों की तरह आचार्यजी भी कहते हैं कि पवित्रता समग्रता का पर्याय है और, इसलिए, वे न तो जीवन के लिए परमार्थ (परमात्मा) की आवश्यकता का निषेध करते है और न परम स्वतंत्रता (शैतान) की आवश्यकता का। वे नहीं चाहते कि हम उन विरोधी युग्मों में किसी एक का सहारा लें जिनके बीचो-बीच मानव-जीवन डोलता रहता है। हमारी बुद्धि इन युग्मो के बीच कोई ऐसे सेतु का निर्माण नही कर सकती जिससे इनका पारस्परिक विरोध समाप्त हो जाय। बुद्धि के लिए 'अ' और 'न-अ' का विरोध असाम्य (irreconcilable) है। इसलिए वह जीवन की चरम अस्तित्वात्मक (existential) समस्याओ का समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। एक समस्या तो यह है कि हमारा जीवन यथार्थ—अर्थात् पूर्ण—कैसे हो? इसलिए जेन धर्माचार्यो की तरह आचार्य रजनीश भी चाहते हैं कि हम बुद्धि से परे, अपनी अन्तरात्मा के सत्य की ओर लौटें, उस स्वसत्ता की ओर बढ़ें जिसमे इन विरोधो का पृथक्करण नहीं हुआ है।

आचार्यजी के प्रवचनो के श्रवण से किसी में बोधिचित्त का उदय भले ही हो जाय, परन्तु आचार्यजी इस बात पर बल देते हैं कि परमार्थ-सत्य शिक्षको और धर्मगुरुओ द्वारा सचारित नही हो सकता। वस्तुत परमार्थ-सत्य का ज्ञान

---

*Within which enlightenment may be sought
To seek enlightenment by separating from this world
Is as foolish as to search for a rabbit's horn

—*A Buddhist Bible, p 521.*

१ Supernature

२ Pairs of opposite poles

न तो बौद्धिक अर्थग्रहण की किसी क्रिया[1] द्वारा उपलब्ध हो सकता है और न अनुभूति की किसी क्रिया द्वारा। इसका ज्ञान किसी भी शक्ति के प्रयोग से नही हो सकता। स्मरण रहे कि मनुष्य को अपनी पूर्णता की उपलब्धि किसी आशिक उत्तर मे नहीं हो सकती, हमारी सत्ता के किसी खड-विशेष से, चाहे वह हमारा हृदय हो या हमारा मस्तिष्क, उद्धार नही हो सकता। आचार्य रजनीश के प्रवचन जेन की तरह कोरी भावात्मकता के उतने ही विरोधी हैं जितने बुद्धिवाद के। शब्द के सच्चे अर्थ मे आचार्यजी पक्षपातरहित है और जानते हैं कि पक्षावलम्बन अन्धानुयायी श्रद्धालुओं की विशेषता है। इसलिए वे मानव-सत्ता के किसी खड विशेष के हिमायती नही हैं, प्रत्युत चाहते हैं कि हम अपनी पूर्णता को उपलब्ध हो जायें। बुद्धिवादिता और भावुकता, दोनो ही इस पूर्णता को दबा बैठने की सम्भावनाओ से आपूरित हैं।

विश्व के अन्यान्य धर्मों ने भी घोषणा की है कि सत्य ही मनुष्य को मुक्त कर सकता है, लेकिन आचार्यजी के लिए यह मुक्तिप्रद सत्य स्वसत्ता का सत्य है और इस कारण ठोस एव व्यक्तिगत भी। चूंकि यह व्यक्तिगत है, इसलिए इसे किसी ऐसे सूत्र मे निबद्ध नही किया जा सकता जो अन्य लोगो के लिए भी प्रयोजनीय हो। स्वसत्ता के सत्य को निज की सत्ता मे और उसी के माध्यम से समझने का यत्न करना चाहिए। यह एक ऐसा मूर्त्त सत्य है जिसे बाहर से चिन्तन द्वारा नही पकडा जा सकता। किसी अन्य के लिए इसकी जानकारी हो, यह असम्भव है, किसी अन्य से इसका वर्णन हो, यह अत्यन्त कष्टसाध्य है। हममे से प्रत्येक को अपने ही द्वारा, अपने ही यत्नो से, इसकी प्राप्ति करनी होगी। 'किसी की बातो से किसी की यात्रा नही होती। अगर मेरी बाते सुनकर आपकी यात्रा हो सके तो बडी आसान बात है, तब तो दुनिया मे सबकी यात्रा कभी की हो गई होती। हमने बुद्ध को सुना है, महावीर को सुना है। लेकिन सुनने से कभी किसी की यात्रा नही होती।'[2] सत्य की अनुकृति नही

---

१ Any act of intellectual understanding एक 'बोधि-गीत' मे कहा गया है

'महान् गजराज खरगोश के सकीर्ण मार्ग पर नहीं चलता,
सम्यक् सम्बोधि बौद्धिकता के सँकरे दायरे से बाहर है,
सरकडे के एक टुकडे से आकाश को नापना बन्द करो'

२ सत्य की खोज, पृष्ठ १२१

हो सकती और न कोई अपनी निजी सत्ता की वास्तविकता को किसी अन्य व्यक्ति की सत्ता के यथार्थ पर ढाल सकता है। इस सम्बन्ध मे आदर्श, परम्परा, धर्मगुरु आदि सब के सब व्यर्थ हो जाते हैं। सत्य की राह स्वय बनानी पडती है। बने-बनाये अथवा घिसे-पिटे मार्ग पर सत्यान्वेषी को चलना नही पडता। कहा जाता है कि जब शिष्य अपने गुरुओ के शब्द उद्धृत कर उनके द्वारा प्रशसित होने का प्रयास करते थे तो ध्यानाचार्य अपने डडे से उनकी मरम्मत तक करने मे संकोच न करते थे। इसका अर्थ यह हुआ कि सत्य का ज्ञान धर्म-देशना से उपलब्ध नहीं होता और न हम किसी पन्थ अथवा सम्प्रदाय द्वारा निर्दिष्ट मार्ग पर चलकर इसकी प्राप्ति कर सकते हैं। एक ऐसा भी युग था जब लोगो ने ये धर्मदेशनाएँ नही सुनी थी। इसलिए सच पूछिए तो धर्म की शिक्षाएँ, धर्म के उपदेश ऊपर से लादी गई बाहरी चीजे हैं। इन शिक्षाओ और उपदेशो को पकड रखना या आत्मसात् कर लेना निरर्थक है। धार्मिक शिक्षाओ को पालन करने की अनवरत चेष्टा ही इस बात का प्रमाण है कि वे हमारे लिए विजातीय है। धार्मिक शिक्षाएँ प्राय सामान्य और अमूर्त्त हुआ करती हैं, इसलिए आचार्यजी के पास ऐसी शिक्षाओ का न तो कोई भाडार है और न उनके अनुयायियो का कोई विशिष्ट सम्प्रदाय या सिद्धान्त। वे किसी व्यक्ति पर सत्य को आरोपित करना नही चाहते और कहते हैं कि आरोपित सत्य आरोपण-मात्र होता है तथा उसमे यथार्थ-अयथार्थ का भेद निरूपित करनेवाली वह क्षमता नही होती जो जीवन्त सत्य मे होती है। जिस सत्य का आरोपण होता है वह हमारे लिए न तो यथार्थ होता है और न हम उसे अपनी पूर्ण सत्ता से स्वीकार कर पाते है।

आचार्यजी चाहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने-अपने जीवन के विकास के लिए पूरी आजादी मिलनी चाहिए। इसलिए जीवन के सत्य को सूत्रबद्ध करना या शास्त्र का रूप दे देना अयुक्त है। सत्य कोई ऐसी चीज नही जिसे हम तिजोरी मे बन्द कर सके और आनेवाली पीढियो को उत्तराधिकार के रूप मे सौप सके। तिजोरी मे बन्द होते ही सत्य दम तोड देता है और जो शेष बच जाता है वह मौत की दुर्गन्ध होती है। यह सत्य है कि शव-रक्षा की कतिपय प्रविधियाँ उसे अनन्तकाल तक नष्ट होने से बचा सकती हैं, किन्तु 'शव-लेपन' मे मुरदे को जिलाने की ताकत नही होती। आचार्यजी यह नही कहते कि उन्होने सत्य को अधिकृत कर लिया है, क्योकि वे जानते है कि सत्य पर किसी

का अधिकार नही हो सकता। जो धर्म सत्य को अधिकृत कर रखने का दावा करे वह न तो धर्म है और न उसका सत्य जीवन का सत्य।

धर्म और विज्ञान के संघर्ष में रूढ़िवादी चाहे तो प्रथम विकल्प का समर्थन करते हैं या उदारमना धर्मशास्त्री दूसरे विकल्प का। इनमे आज के मानव की आध्यात्मिक आवश्यकताओ की पूर्ति करने की क्षमता नही होती, क्योकि इनमे प्रत्येक को जो चीज उपलब्ध हुई रहती है वह दूसरे को मिली हुई नही होती। वही धर्म आज के मानव की आवश्यकताओ की पूर्ति कर सकता है जो जीवन के लिए पूर्ण सहारा बन सके, अड़ान का काम कर सके और साथ ही साथ परिवर्तन के लिए गुंजाइश रखे। किसी मत-विशेष, किसी सुस्पष्ट एव सीमाकित शिक्षा-विशेष अथवा किसी सिद्धान्त-विशेष पर आधारित धर्म ऐसा नही कर सकता। भिन्न-भिन्न प्रकार के सापेक्ष तत्त्वो (Relatives) से अपबद्ध होने के कारण कोई भी सूत्र अथवा सिद्धान्त पूर्ण रूपेण सार्वभौम नही होता। इस कारण समय-समय पर हमारी वर्धमान अनुभूतियो के आलोक मे इन सूत्रो का सशोधन भी अत्यन्त आवश्यक हो जाता है। स्मरण रखना होगा कि हम जिसे जीवन की सज्ञा देते हैं वह अत्यन्त गत्यात्मक है, इसलिए इसके सत्य को सूत्रबद्ध कर लेना सत्य की हत्या करना है। ध्यानाचार्यों की तरह आचार्यजी धर्म के मामले मे उदार एव समचित्त है और किसी प्रकार के शब्द तथा सिद्धान्त के जाल मे नही फँसते। उनके प्रवचन किसी सम्प्रदाय की मान्यताओ का प्रकाशन नही करते और न वे किसी राष्ट्र या जाति-विशेष की सम्पदा हैं। वस्तुत वे सर्वग्राही है और उनका धर्म सार्वलौकिक है—उससे उन सभी लोगो का हित हो सकता है जो जीवन को अखड बनाने मे लगे है।

उनका मार्ग सच्चे ध्यान-विद्यार्थी का मार्ग है।

न यश और न लज्जा उनके हृदय को विचलित करते है।

वे चित्त के दमन मे विश्वास नही करते, फिर भी उनका चित्त पाप से निवृत्त है। इस कारण उनके लिए भय का कोई हेतु नही है।

'जिसका चित्त स्वायत्त है, उसके सुख की हानि नही होती।'

चाहे हम उनकी ताडना करें चाहे जुगुप्सा चाहे उन पर धूल फेंकें चाहे उनके साथ क्रीडा करें, वे केवल इतना चाहते है कि उनके द्वारा किसी प्राणी का अनर्थ सम्पादित न हो।

उनकी करुणा स्नेह-सवलित है।

उनका चित्त सुखत्रय (दानप्रीति, परानुग्रहप्रीति, बोधिसभारसभरणप्रीति) से आप्यायित है।

वे अपने स्वार्थों को पीछे और परोपकार के आदर्श को आगे रखते हैं। चूँकि वे व्यक्तिगत हित की भावना से रहित हैं, इसलिए उनका व्यक्तिगत हित होता है।[1] पूर्ण ज्ञानी वह है जो अपने को पीछे रखता है पर लोगो का अगुआ बनता है।

हम टकटकी लगाकर देखते है, पर उन्हें देख नही पाते, इसलिए हम उन्हें अदृश्य कहते है।

हम सुनते हैं, पर उन्हे सुन नही पाते, इसलिए उन्हें अश्रव्य कहते हैं।

हम टटोलते है, पर उन्हें पकड नही पाते, इसलिए उन्हें सूक्ष्म कहते हैं।

वे निराकार को आकार प्रदान करते और शून्यता मे एक प्रतिमा का निर्माण करते है।

हम उनसे मिलते हैं, पर उनके अग्रभाग को देख नही पाते, हम

उनका अनुसरण करते हैं, पर उनके पृष्ठभाग को देख नही पाते।[2]

लाओत्से की भाँति वे इस तथ्य से पूर्णतया अभिज्ञ हैं कि—

पचरगो मे मनुष्य की आँखे अधी हो जाती है।

पचस्वरो से उसके कान बहरे हो जाते हैं।

पचरसो मे उसकी रुचि शीर्ण हो जाती है।

सरपट चौकडी और शिकार से उसका हृदय उन्मत्त हो उठता है।

वे पदार्थ जिन्हें प्राप्त करना कठिन होता है उसके आचरण को उलझा डालते हैं।

इस कारण सन्त नेत्रो की नही, पेट की चिन्ता करते है

एक का निषेध और दूसरे का समर्थन करते हैं।[3]

वे युगद्रष्टा हैं, आदर्शवादी नही। समाज, धर्म अथवा परम्परा द्वारा निर्धारित आदर्शों का पालन वे नही करते, क्योकि वे जानते है कि ऐसे आदर्शों मे प्रचालित समाजसेवक समाज के दुखो की ही वृद्धि करते रहे है। रजनीश का हृदय करुणा और प्रेम से ओतप्रोत है और उनका लक्ष्य है व्यक्ति का पूर्ण

---

१ ताओ-तेह-किंग, अध्याय ७।

२ उपरिवत्, अध्याय १४।

३ उपरिवत्, अध्याय १२।

रूपान्तरण—उसके जीवन मे आमूल क्रान्ति। फिर भी, उनमे न तो महत्त्वाकाक्षा है और न सफलता की कामना। कृष्णमूर्ति की तरह रजनीश का खयाल है कि सुखी आदमी ही धार्मिक आदमी होता है और उसका जीवन ही समाज-सेवा है। भारत के भिखमगे तब तक धार्मिक न होगे जब तक वे सुखी न हो, परन्तु साथ ही स्मरण रहे कि धन-सम्पत्ति के अबार हमे सच्चा सुख प्रदान नही कर सकते। सम्पत्ति का बँटवारा भी नितान्त आवश्यक है और सारे देश, सारी पृथ्वी और सभी जीव-जन्तुओ को सुखी करना है। आचार्यजी बारबार इस बात पर बल देते है कि महत्त्वाकाक्षा, चाहे वह पार्थिव हो या आध्यात्मिक, दुखो की जननी है, उससे तरह-तरह के भय उत्पन्न होते है। जिसे सरलता, स्पष्टता, ऋजुता और बुद्धिमत्ता आदि गुण प्रिय हो, उसे चाहिए कि वह अपने दिमाग से सभी महत्त्वाकाक्षाओ को निकाल फेके और एक ऐसे परिवेश का निर्माण करे जिसमे किसी प्रकार का भय न हो। परम्परा का भय, समाज का भय, पति अथवा पत्नी का भय, पडोसियो का भय, मृत्यु का भय, नौकरी जाने का भय—इन सबसे आज का जीवन आक्रान्त है, सब-के-सब किसी-न-किसी भय से भयभीत है। इस कारण ससार मे मानो बुद्धि का लोप हो चला है। जीवन मे सुख की उपलब्धि उन्हे होती है जो एक ऐसे परिवेश मे जीवन-यापन करते है जिसमे भय की जगह स्वतत्रता का वातावरण होता है। यह स्वतत्रता स्वेच्छानुकूल आचरण करने की स्वतत्रता नही होती, अपितु जीवन की सम्पूर्ण प्रक्रिया को समझने की स्वतत्रता होती है।

आचार्य रजनीश जीवन को कुरूप नही मानते। इसके असाधारण सौन्दर्य और इसकी गहराइयो का एहसास आपको तभी हो सकता है जब आप धार्मिक सस्थाओ, रूढियो और आज के सडे-गले समाज के बन्धनो से मुक्त हो जायँ और मनुष्य के रूप मे इस बात का पता लगाएँ कि सत्य क्या है। खोजना, पता लगाना ही शिक्षा का लक्ष्य है, न कि अनुकरण करना। समाज, माता-पिता और शिक्षक के आदेशो के अनुसार आचरण करना अत्यन्त सरल है। जीने का इससे आसान तरीका और क्या हो सकता है? परन्तु आचार्यजी के मतानुसार ऐसे जीवन को जीवन नही कहते। जीवन तो वह है जिसमे किसी प्रकार का भय न हो, जिसमे ह्रास और मृत्यु का आतक न व्यापे। जीता वह है जो इस तथ्य का अन्वेषण करता है कि जीवन क्या है और ऐसे अन्वेषण मे कोई तभी प्रवृत्त होता है जब उसके जीवन मे स्वतत्रता होती है।

परतन्त्रता मे बडी सुरक्षा है, स्वतंत्रता मे बडी असुरक्षा।

विचार विद्रोह है और जिसके जीवन मे विचार का जन्म हो जाता है वह परतंत्र नहीं रह सकता।

अँधेरे से लडना नही है, प्रकाश को जलाना है।

जीवन एक सामना है और हम एक साक्षी है।

जहाँ शब्द है वही दीवार है, जहाँ शून्य है वही द्वार है।

जीवन का सत्य भीतर है, स्वय को जानना सत्य के जानने की दिशा मे अनिवार्य चरण है।

सोचने-विचारने का अर्थ है असत्य को असत्य के रूप मे देखना-परखना।

सुरक्षित जीवन, सामान्यत, अनुकृति और भय का जीवन होता है। किन्तु शिक्षा का लक्ष्य प्रत्येक व्यक्ति को निर्भीक बनने और स्वतत्र रहने मे सहायता देना है। भयरहित वातावरण का निर्माण तभी हो सकता है जब हम और हमारे शिक्षक सोचने का व्रत लें और जीवन के सत्य मे विमुख न हो। ध्यानाचार्यों की तरह आचार्यजी भी इस तथ्य की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करते है कि विरोध के तल पर सत्य और यथार्थ की खोज नही की जानी चाहिए। उनकी दृष्टि मे धार्मिक जीवन के लिए श्रद्धा-भक्ति, मूर्ति-पूजा आदि निरर्थक है। महत्त्व है जीवन के सत्य का, परिपूर्ण सत्य का, न कि जीवन के किसी एक ऐसे पक्ष का जिसे भूल से परम सत्य मान लिया गया हो।

डा० रामचन्द्र प्रसाद

भारत का दुर्भाग्य

भारत के दुर्भाग्य की कथा बहुत लम्बी है। लोग साधारणतः समझते हैं कि हमें ज्ञात है कि भारत का दुर्भाग्य क्या है, यह बिलकुल ही गलत है। हमें बिलकुल ही ज्ञात नहीं है कि भारत का दुर्भाग्य क्या है। दुर्भाग्य के जो फल और परिणाम हुए हैं वे हमें ज्ञात हैं। लेकिन किन रुग्ण जड़ों के कारण भारत का सारा जीवन विषाक्त, असफल और उदास हो गया है? वे कौन-से बुनियादी कारण हैं जिनके कारण भारत का जीवनरस सूख गया है, भारत का बड़ा वृक्ष धीरे-धीरे कुम्हला गया है, उस पर फल फूल आना बन्द हो गए हैं? भारत

की प्रतिभा पूरी की पूरी जड़ और अवरुद्ध हो गई है ? वे कौन-से कारण हैं जिनसे यह हुआ है ? निश्चित ही उन कारणों को हम समझ लें तो उन्हें बदला भी जा सकता है। सिर्फ वे ही कारण कभी नहीं बदले जा सकते जिनका हमे कोई पता ही न हो। बीमारी मिटानी उतनी कठिन नहीं है जितना कठिन निदान है। एक बार ठीक से पता चल जाय कि बीमारी क्या है तो उसे मिटाने के उपाय निश्चित ही खोजे जा सकते हैं। लेकिन अगर यही पता न चले कि बीमारी क्या है और कहाँ है, तो इलाज से बीमारी ठीक तो नहीं होती, उलटे अंधे इलाज से बीमारी और बढ़ती चली जाती है। बीमारी से भी अनेकबार औषधि ज्यादा खतरनाक हो जाती है, अगर बीमारी का कोई पता न हो। बीमारी कम लोगो को मारती है, डाक्टर ज्यादा लोगो को मार डालते हैं, अगर इस बात का ठीक पता न हो कि बीमारी क्या है। और मुझे दिखायी पड़ता है कि हमे कुछ भी पता नहीं कि बीमारी क्या है, हमारे दुर्भाग्य का मूल आधार क्या है। यह तो दिखायी पड़ता है कि दुर्भाग्य घटित हो गया है और अंधकार जीवन पर छा गया है। तमाम एक उदासी, एक निराशा, एक हताशा, एक बोझिलपन है, मानो हमने सब कुछ खो दिया है और आगे कुछ भी पाने की उम्मीद भी खो दी है। वह दिखायी पड़ता है, लेकिन यह हो क्यो गया है ? बहुत-से लोग हैं जो इसका निदान करते हैं। कोई कहेगा कि पश्चिम के प्रभाव से भारत नीचे गिर गया है, चरित्र मे, आशा मे, आत्मा मे। गलत कहते हैं वे लोग। गलत इसलिए कहते हैं कि यह बात ध्यान रहे कि जैसे पानी नीचे की तरफ बहता है वैसे ही प्रभाव भी ऊपर की तरफ नहीं बहता है, हमेशा नीचे की तरफ बहता है। अगर एक बुरे और अच्छे आदमी का मिलन होगा तो जिसकी ऊँचाई ज्यादा होगी, प्रभाव उसकी तरफ से दूसरे आदमी की तरफ बहेगा। अगर अच्छे आदमी की ऊँचाई ज्यादा होगी तो बुरा आदमी परिवर्तित हो जायगा और अगर अच्छे आदमी की सिर्फ बातचीत होगी और जीवन मे कोई गहराई न होगी तो बुरा आदमी प्रभावशाली हो जायगा। प्रभाव बुरे आदमी से अच्छे आदमी की तरफ बहने शुरू हो जायेंगे।

पश्चिम से भारत प्रभावित हुआ है। इसका कारण यह नहीं है कि पश्चिम ने भारत को प्रभावित कर दिया है। इसका कारण यह है कि पश्चिम की, जिसको हम अनीति कहते हैं, वह अनीति भी हमारी नीति से ज्यादा बलवान और शक्तिशाली सिद्ध हुई है। पश्चिम की अनैतिकता की जितनी ऊँचाई है, हमारी

नैतिकता की भी उतनी ऊँचाई नही है। पश्चिम के भौतिकवाद की भी एक सामर्थ्य है, हमारे आध्यात्मवाद मे उतनी भी सामर्थ्य नहीं है, वह उससे भी ज्यादा निर्वीर्य, नपुसक सिद्ध हुआ है। इसलिए प्रभाव उनकी तरफ से हमारी तरफ बहता है। इसमे दोष उनका नही है। पहाड पर पानी गिरता है, लेकिन गिरा हुआ पानी भी पहाड से नीचे उतर जाता है, क्योकि पहाड की ऊँचाई बहुत है। यह हो सकता है कि एक झील मे पानी न गिरे, एक गड्ढे मे पानी न गिरे, लेकिन पहाड पर गिरा हुआ पानी बहकर थोडी देर मे गड्ढे मे भर जायगा। गड्ढा यह कह सकता है कि पानी मुझमे भरकर मुझे भ्रष्ट कर रहा है। लेकिन गड्ढे को जानना चाहिए कि वह गड्ढा है इसलिए पानी भर रहा है। वहाँ खाली जगह है, वहाँ निचाई है इसलिए प्रभाव चारो तरफ से दौडते हैं और भर जाते है। भारत की आत्मा रिक्त और खाली है, इसलिए सारी दुनिया उसे कभी भी प्रभावित कर सकती है। जिनकी आत्माएँ भरी है, समृद्ध हैं, वे प्रभावित नही होते है, बल्कि प्रभावित करते है। यह दोष देने से कुछ भी न होगा कि पश्चिम की शिक्षा और सस्कृति हमे विकृत कर रही है। यह ऐसा ही है जैसा गड्ढा कहे कि पानी भर करह मे नष्ट किया जा रहा है। गड्ढे को जानना चाहिए कि मै गड्ढा हूँ, इसलिए पानी मेरी तरफ दौडता है। अगर मै पहाड का शिखर होता तो पानी मेरी तरफ नही दौड सकता था। लेकिन हम गाली देकर तृप्त हो जाते है और सोचते है कि हमने कोई कारण खोज लिया। हम सोचते हैं हमने पश्चिम को दोष देकर कोई कारण खोज लिया। हम बिलकुल नही देख पाए कि हम गड्ढे की तरह हैं।

कुछ लोग हैं जो कहेगे कि हजारो साल से भारत गुलाम था, इसलिए दीनहीन, दरिद्र, दुखी और पीडित हो गया है। वे भी गलत कहते है। उनकी आँखे भी बहुत गहरी नही है किसी की आत्मा को देखने के लिए। गुलामी से कोई मुल्क पतित नही होता है, पतित होने मे मुल्क गुलाम हो जाता है। गुलामी से कोई कैसे पतित हो सकता है? और बिना पतित हुए कोई गुलाम कैसे हो सकता है? किसी कौम को मरने की हमेशा स्वतन्त्रता है लेकिन जो लोग मरने के मुकाबले मे गुलामी को चुन लेते हैं वे ही केवल गुलाम हो सकते है। हम मृत्यु से इतने भयभीत लोग हैं कि हम कैसा भी दीन-हीन, दलित और पैरो मे पडा हुआ जीवन स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन मृत्यु को वरण करने की हिम्मत हमने बहुत पहले खो दी है। हम इसलिए नहीं नीचे गिर गए कि हम

हजारो साल गुलाम रहे, बल्कि हम नीचे गिरे, इसलिए हमें हजार साल गुलाम रहना पडा। क्या आज भी हमारी कोई ऊँचाई उठ गई है ? कोई स्वतत्र होने से ऊँचा नहीं उठ जाता है। मात्र स्वतत्र होने से कोई ऊपर नही उठ जाता। बल्कि हालत उलटी दिखाई पडती हैं। गुलाम हम थे तो जैसे एक गुलामी से बँधे थे और हमारे चरित्र को चारों तरफ दीवालें रोके हुई थी। स्वतत्र होकर हमारे चरित्र मे और पतन आया है, ऊँचाई नहीं उठी है। जैसे स्वतत्रता ने हमारे चरित्र मे जो छिपे हुए रोग थे उन सबोको मुक्त कर दिया है और स्वतत्र कर दिया है। हम स्वतत्र नही हुए, हमारी सारी बीमारियाँ स्वतत्र हो गई हैं। हम स्वतत्र नही हुए, हमारी सारी कमजोरियाँ स्वतत्र हो गई हैं। हम स्वतत्रत नही हुए, हमारे भीतर जितने भी रोग के कीटाणु थे वे स्वतत्र हो गए हैं और देश गुलामी की हालत से भी बदतर हालतो मे पिछले बीस वर्षों में नीचे उतर गया है। कोई कहेगा कि हम दरिद्र है, दीन है इसलिए सारे दोष, उदासी, थकावट, बेचैनी, घबराहट, अनैतिकता, यह सब हैं। लेकिन नही, इस बात को भी मै मानने को राजी नही हूँ। सच्चाई फिर भी उलटी है। सच्चाई यह नही है कि हम गरीब है इसलिए हम चरित्रहीन है। हम चरित्रहीन हैं इसलिए हम गरीब है। चरित्र समृद्धि लाता है, चरित्र श्रम लाता है। चरित्र ही सकल्प पैदा करता है, चरित्र कुछ करने की हिम्मत और बल देता है। वह बल हमारे भीतर नही है, इसलिए हम दरिद्र हैं, इसलिए हम दीन हैं।

ऊपर से दिखाई पडने वाले जो कारण है, वे कोई कारण नही हैं। और भारत के सारे नेता, सारे धर्मगुरु और वे सारे हकीम, जो नीम हकीम ही है, इन्ही ऊपर से दिखाई देनेवाले कारणो पर अटके हुए है और इसलिए वे कोई भी फर्क नही ला सकते।

मैं एक छोटी-सी घटना से अपनी बात शुरू करना चाहता हूँ कि क्या है दुर्भाग्य का मूल आधार। स्वामी रामतीर्थ जापान गए हुए थे। वे जापान के सम्राट् के महल का बगीचा देखने गए। उस बगीचे मे उन्होने एक बडी अद्भुत बात देखी। वे बहुत हैरान हुए। चिनार के वृक्ष थे, जिन्हें आकाश मे सौ-डेढ सौ फुट तक उठ जाना चाहिए था किन्तु वे केवल एक-एक बीते के, एक-एक बालिश्त के थे। उनकी उम्र डेढ-डेढ, दो-दो सौ वर्ष थी। रामतीर्थ बहुत हैरान हुए कि दो सौ वर्षों का चिनार का वृक्ष और एक बालिश्त, एक बीता की ऊँचाई ! यह कैसे सभव हुआ ? उनकी समझ मे कुछ भी नही आ

सका। जो माली उन्हें दिखा रहा था वह हंसने लगा। उसने कहा—मालूम होता है आपको वृक्षो के सबध मे कुछ भी पता नही। रामतीर्थ ने कहा कि मैं हैरान हूं कि ये वृक्ष डेढ सौ वर्ष के हैं। इन्हें तो आकाश छू लेना था, पर ये केवल एक बालिश्त के कैसे हैं ? किस तरकीब से ? उस माली ने कहा, "आप वृक्ष को देखते है, माली जडो को देखता है।" उसने एक गमले को उठाकर बताया। उसने कहा, "हम इस वृक्ष की जडो को नीचे नही बढने देते हैं। उन्हें नीचे से काटते चले जाते हैं। जडें नीचे छोटी रह जाती हैं तो वृक्ष ऊपर नही उठ सकता है। आकाश मे उठने के लिए पाताल तक जडो का जाना बहुत जरूरी है। जडें जितनी गहरी जाती है, उतना ही वृक्ष ऊपर उठता है। वृक्ष के प्राण ऊपर उठते हुए वृक्ष मे नही होते। वृक्ष के मूलप्राण होते है उन जडो मे जो दिखाई भी नही पडती। हम जडो को काटते रहते है। नीचे जडे छोटी रखते हैं तो वृक्ष ऊपर नही बढ पाता। वृक्ष ऊपर कभी नही बढ सकेगा। वृक्ष के प्राण जडो मे होते हैं।"

„किसी जाति के प्राण कहाँ होते हैं, कभी आपने सोचा है ? कोई जाति अगर बौनी रह जाय, कोई जाति अगर ठिगनी रह जाय आत्मा के जगत मे, चरित्र के जगत मे, तो उसके प्राण कहाँ हैं, उसकी जडे कहाँ हैं ? यह पूछना जरूरी है क्योंकि जडें जरूर कही नीचे से काट दी गई हैं या काटी जा रही हैं और इसलिए व्यक्तित्व ऊपर नही प्रकट हो पा रहा है। हम ऊपर से पूरे वृक्ष को भी काट दें तो कुछ नुकसान नही हो पायगा, अगर जडें साबित हो तो नया वृ।र फिर पैदा हो जायगा। लेकिन जडें हम नीचे से काट दें, वृ.. पूरा का पूरा साबित हो तो भी मर जायगा। एक–दो दिन मे वृक्ष कुम्हला जायगा और शाखाएँ ढल जायँगी और मृत्यु पास आने लगेगी। वृक्ष के प्राण होते हैं जडो मे। जाति के प्राण कहाँ होते हैं, राष्ट्रो के प्राण कहाँ होते हैं ? कभी सोचा है कि कहाँ होते हैं प्राण ? जहाँ प्राण होते हैं वही से बीमारियाँ उठती हैं और फैलती हैं। जडें दिखाई नहीं पडतीं, वृक्ष दिखाई पडता है। किसी जाति, किसी देश, किसी समाज की जडें भी दिखाई नही पडती। मनुष्य के जीवन मे ऐसी कौन-सी बात है जो दिखाई नही पडती ? शायद आपने कभी उस तरफ खोजबीन ही न की हो।

अगर हम मनुष्य के व्यक्तित्व को खोजें तो दो बातें दिखाई पडेंगी। आचरण दिखाई पडता है, व्यक्तित्व दिखाई पडता है। विचार दिखाई नहीं

पड़ते, विचार अदृश्य हैं। आचरण की जड़ें विचार मे होती हैं और अगर विचार की जड़ो को व्यवस्था से काट दिया गया हो तो आचरण अपने आप पगु हो जायगा, आगे न बढ़ सकेगा। भारत के विचार की जड़ें काटी गई हैं। और जिन्हें हम अच्छे और भले लोग कहते है और जिनके चरण पकड़कर हम सोचते हैं कि जगत का उद्धार और जीवन सफल हो जायगा उन्ही लोगो ने विचार की जड़ें काट दी हैं। विचार के तल पर भारत ने आत्मघात कर लिया है और इसलिए आचरण के तलपर वृक्ष सूखता चला गया और जीवन के तलपर हम उदास, थके हुए और हारे हुए होते चले गए।

मैं ऐसी तीन जड़ो की बाते आज करना चाहता हूँ जो विचार के तल पर भारत के दुर्भाग्य के मूल आधार हैं और यह कह देना चाहता हूँ कि जबतक उन तीन जड़ो को हम नही बदल लेते हैं तबतक भारत कभी भी दुर्भाग्य से मुक्त नही हो सकता। आज नही, हजारो साल तक भी मुक्त नही हो सकता। लाख उपाय कर लें हम ऊपर-ऊपर वृक्ष को सम्हालने के, पर हमारे सब उपाय थोथी सजावट साबित होगे। वृक्ष मे प्राण नही आ सकेंगे, जीवन सजीव नही हो सकेगा, प्रतिभा जाग नही सकेगी। शायद मेरी बात अजीब लगेगी क्योकि वह जो नही दिखाई पड़ता है, उस सबध मे बात करना थोड़ी मुश्किल होती है।

भारत के विचार के केन्द्रो मे आज तक समय की जो भारतीय धारणा (Concept of Time) है वह गलत है। इस समय की गलत धारणा के कारण हमारे जीवन का इतना अहित हुआ है जिसका हिसाब लगाना मुश्किल है। हमारी समय की धारणा क्या है? हमारा टाइम कसेप्ट क्या है? भारत के समय की धारणा ऐसी है जैसे सूरज निकलता है, साँझ डूब जाता है, फिर दूसरे दिन सूरज निकलता है, फिर साँझ डूब जाता है, एक वृत्त, एक चक्र मे सूरज घूमता है। भारत को पहले यह अनुभव हुआ कि सूरज एक चक्र मे घूमता है, जहाँ से निकलता है फिर वापस वही लौट जाता है। एक आवर्तित चक्र, एक वृत्ताकार परिभ्रमण है। वर्षा आती है, फिर दूसरी ऋतु आती है, फिर तीसरी ऋतु आती है, फिर वर्षा आ जाती है। ऋतुएँ भी एक परिभ्रमण करती हैं, एक चक्र मे घूमती है। आदमी पैदा होता है, बच्चा, जवान, बूढ़ा फिर मौत, फिर बचपन, फिर जवानी, फिर मौत। जीवन भी एक चक्र मे घूमता है। जीवन के इस चक्रीय अनुभव के आधार पर भारत ने यह सोचा कि

समय भी एक चक्र मे घूमता है। जो समय बीत गया वह फिर आ जायगा। समय एक वृत्त मे घूमता है बार-बार। जैसे हम एक चक्के को घुमाएँ तो जो स्पोक अभी ऊपर है वह थोडी देर बाद नीचे चला जायगा, फिर ऊपर आयगा, फिर नीचे जायगा, फिर ऊपर आयगा। समय एक चक्र मे घूमता है, ऐसी भारत ने धारणा बनाई। इस धारणा ने भारत के प्राण ले लिये। यह बुनियादी रूप से गलत है। समय चक्र की तरह नही घूमता है, समय एक सीधी रेखा मे जाता है और वापस कभी नही लौटता। जो हो गया, वह फिर कभी नही होगा। समय एक सीधी यात्रा है जिसमे लौटने का कोई भी उपाय नही है। समय परिभ्रमण नही कर रहा है। आप कहेंगे कि समय की धारणा से भारत के दुर्भाग्य का क्या सम्बन्ध हो सकता है ? गहरा सम्बन्ध है। सोचेंगे तो दिखाई पडेगा। जो कौम ऐसा सोचती है कि समय एक चक्कर मे परिभ्रमण कर रहा है उस कौम का पुरुषार्थ नष्ट हो जायगा। उस कौम को कुछ करने-जैसा है— वह धारणा भी नष्ट हो जायगी। चीजें अपने आप घूमकर अपनी जगह आ जाती हैं और घूमती रहती हैं। हमे कुछ भी नही करना है। नई चीजे होती ही नही, पुरानी चीजें बार-बार घूमती रहती है। कलियुग है, फिर आयगा सतयुग, फिर आयगा कलियुग और ऐसे ही घूमता रहेगा। चौबीस तीर्थंकर होगे, फिर पहला तीर्थंकर होगा, फिर २४ तीर्थंकर होगे, फिर पहला तीर्थंकर होगा। कल्प घूमता रहेगा चक्के की तरह। जो हो चुका है वह हजारो बार हो चुका है और आगे भी हजारो बार होगा। आपके करने और न करने का सवाल नही है, समय के चक्कर पर आप घूम रहे है।

जब एक मुल्क के प्राणो मे यह धारणा बैठ गई कि हमारे करने से कुछ होने वाला नही है। सूरज निकलता है, डूब जाता है, वर्षा आती है, निकल जाती है। गरमी आती है, फिर वर्षा आती है, फिर गरमी आती है। यह चक्र मे घूमता रहता है समय। हमारे करने-जैसा कुछ भी नही है। हम दर्शक की भाँति हैं, घूमते हुए समय को देखने वाले लोग। समय की इस परिभ्रमण की धारणा ने भारत को दर्शक बना दिया, भोक्ता नही, कर्त्ता नही। दर्शकों की क्या स्थिति हो सकती है जीवन के मार्ग पर ? जिन्दगी कोई तमाशबीनी नही है कि कोई तमाशे की तरह हम देख रहे है कही खडे होकर। जिन्दगी जीनी पडती है लेकिन जीने की धारणा तभी पैदा होती है जब हमे यह विश्वास हो कि कुछ नया पैदा किया जा सकता है जो कभी नही था। हम नए को निर्माण कर

सकते हैं, हमारे हाथ मे है भविष्य। भविष्य पहले से निर्धारित नही है, निर्धारित होना है, और हम निर्धारित करेंगे। हमे निर्धारित करना है भविष्य को। आने वाला कल हमारा निर्माण होगा, किसी अनिवार्य इतिहास चक्र (Wheel of History) का घूम जाना नही। लेकिन भारत दस हजार वर्षों से इस बात को माने बैठा है कि इतिहास का चक्र घूम रहा है। सारी दुनियाँ मे इतिहास की किताबे हैं, भारत के पास इतिहास की कोई किताब नही है। क्यो? क्योकि जो चीज बार-बार घूमकर होनी है उसका इतिहास भी क्या लिखना। भारत के पास कोई इतिहास नही है। पश्चिम ने इतिहास लिखा क्योंकि उनकी दृष्टि यह है कि जो भी एक घटना एक बार घट गई है अब कभी पुन नही दोहरेगी। उसे स्मरण रख लेना जरूरी है, उसका इतिहास होना जरूरी है। अब वह कभी भी वापस होने को नही। एक-एक घटना ऐतिहासिक है क्योंकि वह अकेली और अनूठी है। इसलिए पश्चिम ने इतिहास लिखा। अपने इतिहास मे एक-एक मिनट और एक-एक घडी का उन्होने हिसाब रखा। हमारा कोई इतिहास नही है। हम यह भी नही बता सकते कि राम कब हुए, हम यह भी निश्चित रूप से नही कह सकते कि राम हुए भी या नही हुए। हमे हिसाब रखने की कोई जरूरत नही पडी क्योकि राम हर कल्प मे होते है, करोडो बार हो चुके हैं, अरबो बार हो चुके है, अरबो बार फिर भी होगे। यह राम की कथा बहुत बार होती रहेगी। इसको याद रखने की क्या जरूरत है!

इतिहास हमने नही निर्माण किया, यह आकस्मिक नही है। ऐसा नही था कि हमे लिखना नही आता था। दुनियाँ मे सबसे पहले लिखने की ईजाद हमने कर ली थी। ऐसा भी नही है कि हम मे सुनिश्चित धारणा नही थी चीजो को लिखने की। जो हमने लिखना चाहा है वह हमने बहुत सुनिश्चित लिखा है, लेकिन हम इतिहास लिखने का खयाल ही पैदा नही हुआ, क्योंकि जो चीज बार-बार दोहरती है उसे स्मरण रखने की जरूरत क्या है? वह तो दोहरती रहेगी। इसलिए हमने इतिहास नही लिखा और जब हमे यह खयाल हो गया कि हर चीज पुनरुक्त है तो जीवन से सारा रस चला गया। जीवन मे रस होना है तब, जब हर चीज नई हो। जब हर चीज पुनरुक्त हो तो जीवन नीरस हो गया, जीवन एक उदासी, एक ऊब हो गया। हमने सोचा कि यह होना रहा है, यह होता रहेगा। यह चलता रहा है, यह चलता रहेगा। इसमे कुछ कम नही किया जा सकता है। नए की कोई सभावना नही है। हम यह कहते रहे कि आकाश

के नीचे सब पुराना है, नया कुछ भी नही हो सकता। जबकि सच्चाई उल्टी है। आकाश के नीचे सब नया है, पुराना कुछ भी नहीं। कल जो सूरज उगा था वह सूरज भी आज वही नही है जो कल था। कल जि ा गगा के किनारे आप गए थे वह गगा आज वही नही है। बहुत पानी बह चुका है, नई गगा वहाँ बह रही है, सिर्फ आँखो का भ्रम है इसलिए लगता है कि वही गगा है। आप जो क.. थे वह आज नही हैं। जिन्दगी रोज नई है, और अगर जिन्दगी रोज नई है तो जिन्दगी मे रस आ सकता है। जिन्दगी अगर वही है पुरानी की पुरानी तो जिन्दगी मे रस नही हो सकता। भारत विरस हो गया है, निराश हो गया है, समय की इस धारणा के कारण। और जिन्दगी नई हो ही नही सकती तो फिर हमारे पास करने को कुछ भी नही बचता है। एक अनिवार्य चक्र है जो घूम रहा है। हमे करने को क्या है? जब हमे करने को कुछ भी नही है तो धीरे-धीरे करने की जो सामर्थ्य थी, वह सो गई और समाप्त हो गई। अगर एक आदमी को यह पता चल जाय कि मुझे चलने की कोई जरूरत नही है तो क्या आप समझते हैं कि दो-चार पाँच साल वह नही चले तो उसकी चलने की क्षमता बचेगी? उसकी चलने की क्षमता खो जायगी। उसके पैर चलने का काम ही भूल जायँगे। एक आदमी दो-चार पाँच साल देखना बन्द कर दे तो आँखें शून्य हो जायँगी, देखने की क्षमता विलीन हो जायगी। हम जिस अग का उपयोग करते है वही अग विकसित होता है। हमने पुरुषार्थ का उपयोग नही किया तो पुरुषार्थ विकसित नही हुआ। इसीलिए हम दरिद्र है और दरिद्र रहेंगे और किसी भी दिन गुलाम हो सकते है, क्योकि जिस मुल्क के भाव मे पुरुषार्थ की भावना नही है उस मुल्क का सौभाग्य उदय नही हो सकता है। समय की इस धारणा ने हमे भाग्यवादी (Fatalist) बनाया। इसलिए अगर गुलामी आई तो हमने कहा, यह भाग्य है। अगर उम्र हमारी कम हो गई और हमारे बच्चे कम उम्र मे मरे तो हमने कहा यह भाग्य है। हमने प्रत्येक चीज की एक व्याख्या खोज ली कि यह भाग्य है, इसमे कुछ किया नही जा सकता है। भाग्य का मतलब क्या है? भाग्य का मतलब है एक ऐसी घटना जिसमे हम कुछ भी नही कर सकते। भाग्य का और कोई मतलब नही है। भाग्य का मतलब है कि करने से हम छुटकारा चाहते है। ऐसा हुआ, ऐसा होना था, ऐसा होगा। फिर हम कहीं खडे रह जाते है।

इस समय की चक्रीय दृष्टि ने हमे भाग्यवादी बना दिया है। भाग्यवादी

कोई भी देश कभी समृद्ध नहीं हो सकता है। समृद्धि के लिए चाहिए श्रम, समृद्धि के लिए चाहिए संघर्ष। समृद्धि के लिए चाहिए नया आकाश, नया मार्ग, नया शिखर छूने की कामना, कल्पना, सपने। वे सब हम से छिन गए। जो हो रहा है उसे सह लेना है। कुछ करने को हमारे सामने नहीं रह गया। इसलिए जब देश गुलाम हुआ तो हमने कहा कि ऐसा ही भाग्य है। बिहार मे भूकम्प हुआ तो गांधी-जैसे अच्छे आदमी ने यह कहा था कि बिहार के लोगो के पापो का फल है। गांधी के भीतर से भारत की वही पुरानी मूढता हजारो साल की बोल रही थी। गांधी को खयाल भी नहीं कि हम यह क्या कह रहे ह। बिहार के लोग भूकम्प मे भूखो मरते हैं तो यह उनके पापो का फल है। मतलब इस सम्बन्ध मे हमे कुछ करने को न रहा। वह अपने पाप का फल भोग रहा है और पापो का फल भोगना पडेगा। हम इसमे क्या कर सकते है? अभी गुजरात मे बाढ आई और लोग बह गए और मर गए। उनके पापो का फल है! हम क्या कर सकते हैं? अपने-अपने पाप का फल तो भोगना ही पडता है। एक निराश चिंतन जीवन के बाबत खडा हो गया। हम जीवन को बदल नहीं सकते जैसा हम चाहते हैं। जैसा हम चाहते हैं पृथ्वी हो, वैसी पृथ्वी हम बना नहीं सकते, यह हमारी सामर्थ्य के बाहर है। एक बार जब देश ने यह धारणा भीतर ग्रहण कर ली तो देश की आत्मा सो गई, प्रतिभा खो गई, सामर्थ्य नष्ट हो गई। यह विचार काम कर रहा है हमारे जीवन को नष्ट करने मे। साथ ही इसके कुछ और फल हुए। जो कौम यह मानती है कि आगे भी वही पुनरुक्त होगा जो पहले हो चुका है तो उसकी आँखें पीछे लग जाती हैं, आगे नहीं। उसकी दृष्टि अतीतोन्मुखी हो जाती है, वह पीछे की तरफ देखना शुरू कर देती है। क्योंकि जो पीछे हुआ है वही आगे भी होने वाला है। तो भविष्य को जानने का एक ही रास्ता है कि हम अतीत को जान लें क्योंकि वही पुनरुक्त होगा, वही दोहरेगा।

पूरे भारत की आंख अतीत पर लग गई जो अब है ही नहीं, जो जा चुका है। यह वैसा ही है जैसे हम कार की हेड लाइट पीछे की तरफ लगा दे। कार आगे की तरफ चले और लाइट पीछे की तरफ हो तो दुर्घटना सुनिश्चित है। दुर्घटना होने ही वाली है क्योंकि कार चलेगी आगे की तरफ और प्रकाश उसका पडेगा पीछे की तरफ। जिस रास्ते से कोई सम्बन्ध नहीं उसपर प्रकाश पडेगा और जिस रास्ते से आगे सम्बन्ध है वह अंधकारपूर्ण होगा।

भारत की आँखें, राष्ट्र की आँखे सामने की तरफ नही है, पीछे की तरफ है। हम विचार करते है राम का, हम विचार करते है महावीर का, बुद्ध का। हम कभी विचार नही करते आने वाले भविष्य का, आने वाले बच्चो का। न राम इतने महत्त्वपूर्ण है, न बुद्ध, न महावीर जितना आने वाले कल पैदा होने वाला बच्चा है। घर-घर मे पैदा होने वाला साधारण-सा बच्चा भी पुराने आदमियो से, सारे अतीत से ज्यादा महत्त्वपूर्ण है क्योकि वह होने वाला है और अतीत हो चुका है, जा चुका है, समाप्त हो चुका है। लेकिन बच्चे हमारे रोज नष्ट होते चले गए क्योकि उनपर हमारा कोई ध्यान नही है। ध्यान उन बूढ़ो पर है, ध्यान उन मुर्दो पर है जो व्यतीत हो चुके, बच्चो पर हमारा कोई ध्यान नही है। समय की ऐसी धारणा, परिभ्रमण करने वाली धारणा मनुष्य को अतीतवादी बना देती है। भविष्य-जैसी कोई चीज उसके सामने नही रह जाती और पूरी कौम पीछे की तरफ देखने लगती है। जो पीछे की तरफ देखने लगता है उसकी आत्मा बूढ़ी हो जाती है, यह समझ लेना जरूरी है। आपने शायद खयाल न किया हो, बच्चे हमेशा भविष्य की तरफ देखते है। बच्चो का कोई अतीत नही होता, देखेगे भी क्या? पीछे की तरफ देखने की कोई स्मृति नही होती। बूढे हमेशा अतीत की तरफ देखते हैं। भविष्य उनका कुछ होता नही। भविष्य मे मौत होती है, एक दीवाल की तरह। आगे देखने मे कुछ होता नही। भविष्य यानी शून्य। भराव होता है अतीत का। बूढ़ा हमेशा बैठकर स्मृति करता है कि ऐसा था बचपन, ऐसी थी जवानी, ऐसे थे दिन, इस भाव घी बिकता था, इस भाव गेहूँ बिकता था। वही सारी बाते सोचता है क्योकि भविष्य कोई नही है उसके पास। उसके पास है केवल अतीत। वृद्ध मन का लक्षण है अतीत का चिन्तन। बूढा अतीत का चिन्तन करने लगता है। बाल मन का लक्षण है भविष्य, और युवा मन का लक्षण है वर्त्तमान। युवक जीता है वर्तमान मे—अभी और यहाँ। न उसे भविष्य की फिक्र है, न अतीत की। न वह बच्चा है, न वह बूढा है। अभी जो आनद मिल जाय वह उसे जी लेना चाहता है। इस क्षण मे जो मिल जाय वह उसे भोग लेना चाहता है। जब बच्चा था तो भविष्य था, जब बूढा हो जायगा तो अतीत होगा, अभी युवा है तब वर्त्तमान है।

कौमे भी तीन तरह की होती है। बचपन मे जो कौम होती है वह है रूस। रूस के पास कोई अतीत नही है। उन्होने अतीत को छोड दिया है,

इन्कार कर दिया है, वह चला गया। १९१७ के पहले उनका कोई अतीत नहीं है। वह उसकी कोई बात भी नहीं उठाते। भविष्य है, और भविष्य का चिन्तन और विचार करना है और उसे निर्मित करना है। अमरीका को जवान कौम कहा जा सकता है। उसके पास न कोई अतीत है, न कोई भविष्य है। अभी इसी क्षण जी लेना है, जो है उसे भोग लेना है। भारत बूढ़ी कौम कहा जा सकता है। उसके पास न कोई भविष्य है, न कोई वर्त्तमान है, केवल अतीत है। राम की कथा है। महावीर के स्मरण हैं। वह जो बीत गया है सुखद, स्वर्ण उन सबकी हजारो स्मृतियाँ हैं। उन्ही स्मृतियो मे जीना है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि अतीत का इतना चिन्तन रुग्णवार्धक्य का लक्षण है और यह अतीत का चिन्तन समय की इस धारणा से पैदा हुआ है। विकासमान जाति के लिए भविष्य का चिन्तन जरूरी है। विकासमान राष्ट्र के लिए भविष्य महत्त्वपूर्ण है और भविष्य के बाबत विचार करना होगा कि क्या हो सकता है क्योकि अतीत के सम्बन्ध मे हम कुछ भी नही कर सकते। जो हो गया, हो गया। अब उसे तब्दील नहीं किया जा सकता, अब उसमे कुछ भी हेर-फेर करने का उपाय नही है, अब उसमे एक रत्ती भर कोई फर्क करने की सभावना नहीं है। तो अगर हम अतीत को ही सदा देखते रहें तो हमारे चित्त मे यह धारणा पैदा हो जायगी कि कुछ भी नही किया जा सकता। और जिस चीज पर हम ध्यान देते हैं, हमारी चेतना उसी के साथ तल्लीन हो जाती है और एक हो जाती है। हम जो ध्यान करते है, जिसका ध्यान करते हैं उसी-जैसे हो जाते है। अतीत को देखने वाले लोग धीरे-धीरे इस निष्कर्ष पर पहुँच जायें तो आश्चर्य नही कि कुछ भी नही किया जा सकता। क्योकि अतीत मे कुछ भी नही किया जा सकता है। भविष्य की तरफ देखने वाले लोग इस नतीजे पर पहुँच जायें कि सब कुछ किया जा सकता है तो आश्चर्य नही क्योकि भविष्य का मतलब यही है कि जो अभी नही हुआ है पर हो सकता है। हो सकने का मतलब है कि अभी हजार सभावनाएँ हैं, उनमे से कोई भी सभावना चुनी जा सकती है। भविष्य की तरफ देखने वाली जाति जवान हो जायगी, युवा हो जायगी, ताजी हो जायगी, जीने की सामर्थ्य खोज लेगी। अतीत की तरफ देखनेवाली कौम जड़ हो जायगी, बूढी हो जायगी, उसके स्नायु सूख जायेंगे।

समय का यह विचार बदलना होगा ताकि हम देश की प्रतिभा को भविष्योन्मुखी बना सकें, ताकि हम देश की प्रतिभा को यह भाव और दृढ आधार

दे सकें, कि तुम कुछ कर सकते हो। तुम्हारे हाथ मे कुछ है।

दूसरा केन्द्र, दूसरी एक जड अद्भुत रूप से हमे परेशान किए रही है और हमारे प्राणो मे बहुत गहरा उसका विस्तार है। वह जड है इस बात की कि हमने कर्मफल के सिद्धान्त की एक ऐसी धारणा स्वीकार की है कि कर्म तो करेंगे आप अभी और फल मिलेगा अगले जन्म मे। इतना बिलबित फल, अजीब बात है। अभी मै आग मे हाथ डालूँगा तो अगले जन्म मे जलूँगा! अभी चोरी करूँगा और अगले जन्म मे फल मिलेगा! कार्य और कारण हमेशा सम्बन्धित होते है, उनके बीच मे रत्ती भर का फासला नही होता। क्या बीज और वृक्ष मे फासला होता है? अगर बीज और वृक्ष मे रत्ती भर का फासला भी पड जाय तो उस बीज मे वृक्ष पैदा न हो सकेगा। उनका सम्बन्ध ही टूट जायगा। बीज और वृक्ष एक ही सातत्य (continuity) के हिस्से है। मै जो करता हूँ उसका फल अभी मुझसे जुडा हुआ है, सयुक्त है, तत्क्षण सम्बन्धित है। यह झूठी बात है कि अभी मैं करूँगा काम और फल मिलेगा अगले जन्म मे। लेकिन यह धारणा हमने विकसित क्यो की और इस धारणा की वजह से हमने कितने दुख भोगे उसका हिसाब लगाना मुश्किल है। यह धारणा इसलिए विकसित करनी पडी कि समाज मे यह दिखलाई पडता था कि एक आदमी अच्छा है और दुख भोग रहा है और एक आदमी बुरा है, बेईमान है, और सुख भोग रहा है। तब हमारे साधु सतो और महात्माओ को बडी मुश्किल हुई इस बात को समझाने मे कि इसका मतलब क्या है। इसके दो ही मतलब हो सकते है। एक मतलब तो यह हो सकता था कि बुरे काम का बुरे फल से कोई सम्बन्ध नही है, अच्छे काम का अच्छे फल से कोई सम्बन्ध नही है। एक आदमी चोरी करता है और बेईमानी करता है पर इज्जत, प्रतिष्ठा और समृद्धि मे जीता है और एक आदमी ईमानदारी से रहने की कोशिश करता है, सच बोलता है, और दुख पाता है, कष्ट पाता है। इसका एक मतलब तो यह हो सकता था कि दोनो बाते सम्बन्धित नही हैं। आप क्या करते है, आपको क्या मिलेगा, यह सम्बन्धित नही है। यह केवल सयोगिक है। अगर यह बात कोई मुल्क मान ले तो उस मुल्क मे नीति और धर्म विलीन हो जायँगे। सत-महात्माओ की इतनी हिम्मत न थी कि इस बात को मान लें। इस बात को मानने का मतलब तो यह था कि फिर नैतिकता के लिए कोई आधार न रहा।

दूसरा विकल्प यह था कि आदमी जैसा करता है वैसा ही फल पाता है। लेकिन आँखें तो यह बताती हैं कि बेईमान सुख पा रहे हैं, ईमानदार दुख पा रहे हैं। इससे क्या हल निकाला जाय ? तो हल यह निकाला गया कि वह बेईमान जो अभी सुख पा रहा है, पहले जन्म की ईमानदारी का फल पा रहा है और वह जो ईमानदार दुख पा रहा है वह पिछले जन्म की बेईमानी का दुख पा रहा है। फल तो हमेशा वही मिलता है जैसा कर्म है, लेकिन पिछले जन्म के कर्म सब इकट्ठे होकर फल लाते है। इस जन्म से हमने सम्बन्ध तोडकर पिछले जन्म से जोडा ताकि व्याख्या मे तकलीफ न हो। लेकिन यह व्याख्या हमे और भी बड़े गड्ढे मे ले गई। मेरी अपनी समझ यह है कि इस धारणा ने कि पिछले जन्मो के बिलंबित फल हमे मिलते है, दो कारण हमारे सामने खडे कर दिए, दो स्थितियाँ बना दी। एक तो यह कि बुरा काम करने के प्रति जो तीव्र विचार होना चाहिए था वह शिथिल हो गया क्योंकि अगले जन्म मे फल मिलनेवाला है। पहले तो यही पक्का नही कि अगला जन्म होगा कि न होगा। इसे जानने का कोई प्रमाणीभूत उपाय नहीं। कोई मुर्दे लौटकर कहते नही कि अगला जन्म हुआ है। अगले जन्म की बात ने तथ्य को इतना कमजोर कर दिया कि आज जो मेरी जरूरत है उसको आज पूरा करूँ या अगले जन्म म होने वाले फलो का विचार करूँ। आज की जरूरत इतनी तीव्र और जरूरी है कि अगले जन्म के विचार के लिए उसे स्थगित नहीं किया जा सकता है। तो फिर जो ठीक लगे अभी करूँ, अगले जन्म का अगले जन्म में देखा जायगा। ऐसा एक स्थगन हमारे दिमाग मे पैदा हो गया कि ठीक है अभी जो करना है करो, अगले जन्म मे देखा जायगा। इतने दूर की बात से मनुष्य प्रभावित नही हो सकता। इतने दूर के फल मनुष्य के जीवन और चरित्र को गतिमान नही कर सकते। इतनी आकाश की और हवा की बाते मनुष्य के प्राणो के जीवन्त तथ्य नही बन सकती। इसलिए भारत का सारा चरित्र हीन हो गया क्योंकि यह दिखायी पडा कि अभी तो बुरा करने से अच्छा फल मालूम होता है। अगले जन्म का अगले जन्म मे देखा जायगा। फिर कौन कहता है कि अगला जन्म होगा ही। फिर कौन कहता है कि इस जन्म मे जब बुरा आदमी अच्छे फल भोग सकता है तो अगले जन्म मे भी वह कोई न कोई तरकीब न निकाल लेगा। जब इस जन्म मे तरकीब निकालनेवाले तरकीब निकाल लेते हैं तो अगले जन्म मे भी निकाल ही लेगे। फिर कौन जानता है

कि आदमी समाप्त नही हो जाता शरीर के साथ । इन सारी बातो ने स्थिति को बिलकुल डावाडोल कर दिया और भारत के व्यक्तित्व को इकट्ठे शिथिल कर दिया । उसके पास कोई जीवन्त नियम न रहा जिनके आधार पर वह चरित्र को, आचरण को और जीवन को ऊँचा उठाने की चेष्टा करे ।

दूसरी धारणा यह विकसित हुई कि अगर मै पाप भी करूँ तो कुछ पुण्य करके उन पापो को रद्द किया जा सकता है । स्वाभाविक था । अगर एक-एक कर्म का फल मिलता होता तो एक कर्म के फल को दूसरे कर्म का फल रद्द नही कर सकता था । लेकिन हमको फल मिलना था इकट्ठा । एक जन्म भर के कर्मों का फल अगले जन्म मे मिलना था तो हम पाप भी कर सकते है और पुण्य करके उनको रद्द भी कर सकते हैं । अन्तिम हिसाब मे जोड-बाकी मे अगर पुण्य बच जाय तो मामला खत्म हो जाता है । तो परिणाम यह हुआ कि पाप भी करते रहो एक तरफ, दूसरी तरफ पुण्य भी करते रहो । एक तरफ लाखो रुपए चूसो शोषण करो, दूसरी तरफ दान करो, मदिर बनाओ, तीर्थ जाओ । इधर से पाप करो, उधर से पुण्य भी करते रहो तो लाभ और हानि बराबर होती रहें और आखिर मे जोड पुण्य का हो जाय । तो जिन्दगी भर पाप करो और बुढापे मे थोडा पुण्य करो और हिसाब ठीक कर लो अपना । इस तरह एक चालाक गणित (cunning mathematics) हमने आध्यात्मिक जीवन के सम्बन्ध मे पैदा कर ली है । एक आदमी शोषण करे, इसको हमने बुरा न समझा । दान करे, इसकी हमने प्रशसा की और हमने कभी यह न पूछा कि दान करने योग्य पैसा इकट्ठा कैसे होता है ? दान करने योग्य पैसा इकट्ठा कैसे हो सकता है, उसका हमने विचार नही किया । दान पुण्य है, तो शोषण के पाप को दान के पुण्य मे काटा जा सकता है । दान की हमने खूब प्रशसा की है— मदिर बनाने की, तीर्थ बनाने की, साधु-सन्यासियो को भोजन कराने की, ब्राह्मणो को भोजन कराने की, गाय-दान करने की । हजार तरह की तरकीबें हमने ईजाद की जिनसे हम पाप करते रहें और उनको काटने के उपाय भी कर लें ।

चरित्र नीचे गिरना निश्चित था क्योकि जो मुल्क ऐसा सोचता है कि एक पाप को पुण्य करके काटा जा सकता है वह मुल्क कभी भी पाप से मुक्त नही हो सकता, क्योकि जबतक हमे यह खयाल न हो कि पाप को किसी पुण्य से कभी नही काटा जा सकता, एक कर्म को दूसरे कर्म से नही काटा जा सकता तबतक उस पाप के प्रति हम बचने के उपाय खोजने की कोशिश करेगे ।

इस धारणा ने हमारा जीवन ले लिया। मैं इसके सम्बन्ध में दो बातें कहना चाहता हूँ। एक बात तो यह कि कर्म बिलबित फल नही लाता है, कर्म इसी क्षण फल लाता है। एक आदमी अभी क्रोध करता है तो अभी क्रोध के नर्क मे गुजर जाता है। एक आदमी अभी चोरी करता है तो चोरी के उपाय, अपराध, पीडा, डर उन सबकी पीडाओ से गुजर जाता है। एक आदमी अभी किसी की हत्या करता है तो हत्या करने के पहले और हत्या करने के बाद वह जिस मानसिक उत्पीडन से, मानसिक भय से, मानसिक उत्ताप से गुजरता है वह उसकी पीडा से बहुत ज्यादा है जो मर गया। एक आदमी को मैं मार डालूं, उस आदमी को मरने मे जितनी पीडा होगी उससे ज्यादा पीडा मे से मारने के पहले और मारने के बाद मुझे गुजरना पडेगा। अगले जन्म की प्रतीक्षा नही करनी पडेगी कि अगले जन्म मे मुझे कोई मारे। नही, कृत्य तो अपने साथ ही फल को लिये हुए है। इधर मैने कृत्य शुरू किया और उधर फल मेरे ऊपर टूटना शुरू हो गया। एक अच्छा काम आप करें, एक प्रेम का कृत्य, और उसके साथ ही उसकी सुवास, आनद और सुगध है। प्रेम के ही कृत्य के साथ उसके पीछे एक हवा है, शान्ति की, धन्यता की। पाप के साथ एक पश्चात्ताप है, एक पीडा है।

इस पुरानी धारणा की जगह भारत के मन को नई धारणा चाहिए कि प्रत्येक कर्म का फल तत्क्षण है, आगे-पीछे नही। इतना भी फासला नही है कि मैं कुछ कर सकूं। मैने किया और करने के साथ ही फल भी उपलब्ध होना शुरू हो जाता है। मैं एक छत पर से कूद पडूं तो कूदने के साथ ही गिरना भी शुरू हो गया। कूदना और गिरना दो बाते नही है। कूदना उसी चीज का प्रारभ है जिसको हम गिरना कहते है। मैंने क्रोध किया और क्रोध के साथ ही जलना हो गया। कर्म ही फल है, इस उद्घोषण को हमे मुल्क के प्राणो पर ठोक देना होगा। इसलिए आगे सोच विचार का सवाल नही है, सोचना है तो इसी क्षण कि यह मुझे करना है या नही।

दूसरी बात, यह जो हमे दिखायी पडता है कि एक बेईमान आदमी सफल हो जाता है उस पर हमने कभी बहुत विचार नही किया, क्योकि हमारी जो धारणा थी, उससे हमे व्याख्या मिल गई इसलिए हमने विचार नही किया। जब एक बेईमान आदमी सफल होता है तब कभी आपने खयाल किया कि बेई-मान आदमी मे गुण भी होते है। और जब ईमानदार आदमी असफल होता

है तो आपने कभी खयाल किया कि ईमानदार आदमी मे अयोग्यता भी हो सकती है। एक बेईमान आदमी साहसी हो सकता है और एक ईमानदार आदमी कमजोर हो सकता है, हिम्मतहीन हो सकता है, कायर हो सकता है। अगर बेईमान आदमी सफल होता है तो मैं आपसे कहता हूँ कि सफल वह अपने साहस की वजह से हुआ है, बेईमानी की वजह से नही और अगर ईमानदार आदमी असफल होता है तो ईमानदारी की वजह से असफल नही होता, असफल होता है साहस की कमी की वजह से। किसी आदमी की सफलता के बहुत कारण होते है। हालाँकि ईमानदार आदमी असफल होता है तो उसको भी यही बताने मे मजा आता है, मैं ईमानदारी की वजह से असफल हो गया। ईमानदारी की वजह से दुनियाँ मे कभी कोई असफल नही हुआ है और न हो सकता है और बेईमानी की वजह से न कोई दुनियाँ मे कभी सफल हुआ है, और न हो सकता है। और बहुत कारण है। बईमान आदमी के पास गुण भी होते है। वह साहसी हो सकता है, वह बुद्धिमान हो सकता है, वह सगठन की क्षमता मे कुशल हो सकता है, वह भविष्य को देखने की अतर्दृष्टि वाला हो सकता है और इन सारी चीजो से वह सफल हो जायगा। जिसको हम ईमानदार आदमी कहते है, हो सकता है वह सिर्फ ईमानदार हो और उसके पास अन्य कोई गुण न हो। न उसके पास साहस हो, न अतर्दृष्टि हो, न जीवन को समझने की कोई कुशलता हो, न समझ हो, न पहल लेने की हिम्मत हो तो वह असफल हो ही जायगा। ईमानदार आदमी अपने मन मे यह सोचकर बहुत सतोष, बहुत सान्त्वना पायगा कि मैं इसलिए असफल हो गया कि मैं ईमानदार हूँ। इसलिए आप असफल नही हो गए है, आपकी असफलता के दूसरे कारण है। पर ईमानदार आदमी उस सफल आदमी की निन्दा करना चाहेगा, इस ईर्ष्यावश कि वह सफल हो गया है। उसकी निन्दा का एक ही उपाय है, यह कहना कि वह बेईमानी की वजह से सफल हो गया है। मै आपसे कहना चाहता हूँ कि जीवन के गणित मे दुर्गुण कभी भी कोई समृद्धि, कोई सफलता नही लाते है, न ला सकते है।

एक आदमी चोरी करने जाता है, आप सिर्फ इतना ही देखते हैं कि वह चोर है। लेकिन चोर के पास जो हिम्मत है वह है आपके पास ? अपने घर मे भी डर के चलते है आप, चोर दूसरे के घर मे भी निडर चलता है। अपने घर के अँधेरे मे भी आपके प्राण निकलते हैं। चोर दूसरे के घर के अँधेरे मे भी

ऐसा घूमता है जैसे दिन की रोशनी हो और अपना घर हो। यह गुण चोरी से बिलकुल अलग बात है।

जापान मे एक चोर था। उसकी बडी प्रसिद्धि थी। उसको लोग मास्टर थीफ कहते थे। कहते थे वैसा चोर कभी नही हुआ। कला-गुरु था वह चोरो का और यहाँ तक उसकी प्रसिद्धि हो गई थी कि जिस घर मे वह चोरी कर लेता था उस घर के लोग गौरव से लोगो मे कहते थे कि हमारे यहाँ मास्टर थीफ ने चोरी की है, हम कोई साधारण समृद्ध नही हैं। उस कलागुरु की नजर भी हमारे घर की तरफ गई है। लोग उसकी प्रशसा करते। लोग प्रतीक्षा करते थे कि वह कलागुरु कभी उनके घर की तरफ भी नजर कर ले क्योकि जिसके घर की तरफ वह देखता वह आदमी खानदानी रईस हो जाता।

वह चोर बूढा हो गया। उसके लडके ने उससे कहा कि आप तो बूढे हो गए, अब मेरा क्या होगा ? मुझे कुछ सिखा दे। उस बूढे ने कहा—"यह बड़ा कठिन मामला है। चोरी जितनी सरल दिखाई पडती है उतनी सरल चीज नही है। बडा जटिल विज्ञान है। उसमे बडे गुण चाहिए। एक सैनिक से कम हिम्मत की जरूरत नही, एक सत से कम शाति की जरूरत नही, एक ज्ञानी से कम अतर्दृष्टि की जरूरत नही, तब आदमी चोर बन सकता है।" उसके लडके ने कहा—"क्या कहते है ? सत, योद्धा, ज्ञानी, इनके गुण चाहिए ?" उस बूढे ने कहा—"इनके गुण चाहिए। कभी चोरी सफलता नही लाती, ये गुण सफलता लाते है। चोरी तो अपने आप मे असफल होने को आबद्ध है। इतने बल जोड दे तो सफल हो सकती है।" फिर भी उस लडके ने कहा कि कुछ मुझे सिखाइए। उसने कहा—"चल तू रात मेरे साथ।" जवान लडका बाप के साथ अँधेरी रात मे जाकर नगर के सम्राट् के महल मे पहुँच गया। बाप बूढा है, उसकी उम्र कोई ७० साल पार कर चुकी है। वह जाकर दीवाल की ईंटें फोडने लगा और लडका खडा काँप रहा है। उस बूढे ने कहा, "काँपना बन्द कर क्योकि यहाँ कोई साहूकारी करने नही आए हैं कि जो कँपते हुए भी हो जाय। यहाँ चोरी करने आए है। हाथ कँपा कि गए।" सत्तर वर्ष का बूढा है, वह ईंटें ऐसे तोड रहा है जैसे कोई कारीगर मौज से अपने घर काम कर रहा हो। वह लडका काँप रहा है कि यह दूसरे का घर है, कही आवाज न हो जाय, कही कुछ न हो जाय। और वह बूढा ऐसी शाति से खोद रहा है इटे, जैसे अपना घर हो। उस लड़के ने कहा, 'बाबा, आपके हाथ नही कँपते ?" उस बूढे ने

कहा—"चोर तभी हुआ जा सकता है जब हम सबकी सम्पत्ति अपनी मानते हो। चोर होना बहुत मुश्किल है। चोर होना आसान नही है।—" उसने इटे तोड़ ली हैं, वह भीतर चला गया है। लडका भी कांपते हुए उसके साथ पीछे गया है लेकिन उसकी छाती इतने जोर से धडक रही है कि उसे समझ भी नही आ रहा है कि ऐसा तो कभी नही हुआ था। उस बूढे ने कहा, "देखो, इतना घबराओगे तो सफलता बहुत मुश्किल है। बहुत शात और बहुत ध्यानपूर्वक ही चोरी की जा सकती है। क्योंकि दूसरे का घर है। लोग सोए हुए है। तेरा तो हृदय इतनी जोर से धडक रहा है कि उसकी धडकन से लोग जग जायँगे। ऐसे काम चलेगा? ऐसा धडकेगा तो चीजे गिर जायँगी। धक्का लग जायगा, सब गडबड हो जायगा। इस अँधेरे मे तो इतनी कुशलता म जाना है कि जरा सी आवाज न हो।' लेकिन लडके के तो पैर काँप रहे है और उसको चारो तरफ लोग दिखाई पड रहे हैं कि खडा है दीवाल के पास कोई! अब कोई जागा! किसी को खाँसी आ गई, कोई रात मे बर्रा रहा है, आवाज कर रहा है और वह घबरा रहा है। बूढा लेकिन उसको भीतर ले गया। वह ताले खोलता हुआ चला गया है। वह आखिरी अन्दर के कक्ष मे पहुँच गया है। उसने लडके को कहा "तू, भीतर जा और जो चीजें तुझे पसन्द हो उन्हे लेकर बाहर आ जा। मैं बाहर खडा हूँ।" वह दरवाजे पर खडा है। लड़का भीतर गया। उसे तो कुछ दिखाई भी नही पडता, पसद करने की बात तो बहुत दूर। उसे कुछ समझ मे नही आ रहा है कि क्या वहाँ है और क्या नही है। और तभी उसने देखा कि उसके बाप ने दरवाजा बन्द कर दिया, जोर से दरवाजा पीटा, चिल्लाया और भाग गया। वह लडका कमरे के भीतर है। सारे घर के लोग जाग गए हैं और दीया तथा लालटेन लिये खोज कर रहे है। उस लडके के तो प्राण बिलकुल सूख गए। उसने सोचा, यह तो बाप ने मरवा डाला। यह कैसी चोरी सिखाई, यह क्या किया पागलपन?

अचानक जैसे ही खतरे की, स्थिति पैदा हो गई वैसे ही विचार खत्म हो गए। इतने खतरे मे विचार नही चल सकते। विचार चलने के लिए सुविधा चाहिए। इतने खतरे है कि जान जाने को है, तो उसके विचार शून्य हो गए। अभी कोई आपकी छाती पर छुरा लेकर खडा हो जाय तो फिर मन चचल नही रहेगा उस वक्त। मन के चचल होने के लिए आराम से तकिया चाहिए, बिस्तर चाहिए, तब मन चचल होता है। जिन्दगी खतरे मे पड जाय

तो कहाँ की चचलता, मन एकदम स्थिर हो जायगा। उसका मन स्थिर हो गया है और एकदम उसे कुछ अतर्दृष्टि हुई। उसने दरवाजे को नाखून से खुरचा, जैसे कोई बिल्ली या चूहे आवाज कर रहे हो। हालाँकि उसे कुछ समझ मे नही आया कि यह मैं क्यो कर रहा हूँ। एक नौकरानी बाहर से गुजरती थी। उसने देखने के लिए दरवाजा खोला कि भीतर शायद कोई बिल्ली है। चोर को भी वह खोज रही थी। उसने हाथ बढाकर दीया हाथ मे लिये भीतर झाँककर देखा। अचानक उसने सोचा नही था कि नौकरानी हाथ बढायगी और जला हुआ दीया आगे होगा। इसका उसे कोई खयाल ही न था, कोई विचार नहीं था, कोई योजना नही थी, लेकिन दीया देखकर अचानक उसके मुंह से फूंक निकल गई। दीया बुझ गया, उसने धक्का दिया और अँधेरे मे भागा। दस-बीस लोग उसके पीछे भागे। आज उसे जिन्दगी मे पहली दफा पता चला कि इतनी तेजी से भी भागा जा सकता है। वह तीर की तरह भाग रहा था। उसे आज पहली दफा पता चला कि उसका शरीर इतना गतिवान है, जैसे तीर चल रहा हो। जब जान पर बाजी हो तो सारी शक्ति जग जाती है। वह एक कुएँ के पास से गुजर रहा था। दस-बीस कदम पीछे लोग रह गए थे और ऐसा लगता था कि वह अब पकडते है, अब पकडते है तभी उसे कुएँ के पाट पर एक पत्थर दिखाई पडा। उसने पत्थर उठाया और कुएँ मे पटक दिया। जो लोग पीछे आ रहे थे वे कुएँ को घेर कर खडे हो गए। उन्होंने समझा कि चोर कुएँ मे कूद पडा है। वह एक वृक्ष के नीचे खडा यह सब देखता रहा। उन्होंने कहा, अब तो वह अपने हाथ से मर गया। कुआँ बहुत गहरा है, अब सुबह देखेंगे। जिन्दा रहा तो ठीक, मर गया तो ठीक। वे वापस जाकर महल मे सो गए।

वह लडका अपने घर पहुँचा, देखा पिता कम्बल ओढकर सोए हुए है। उसने क्रोध मे कम्बल खीचा और कहा—"यह क्या मामला है? आपने मेरी जान ही ले ली थी!" उस बूढे न कहा, "अब गडबड मत करो, तुम आ गए, अब सुबह बातचीत करेगे। बस आ गए, ठीक है।" लडके ने कहा, "सुबह नही। हम तो एक अनुभव से गुजर गए, यह क्या किया आपने?" उसने कहा, "छोडो उस बात को, तुम आ गए खतम हो गई बात। कल तुम खुद भी चोरी करने जा सकते हो।"

चोर सफल होता है, चोरी की वजह से नही। चोर सफल होता है दूसरे

गुणो की वजह से और जब अचोर आदमी मे उतने गुण होते है तो उसकी सफलता का क्या कहना। वह महावीर बन जाता है, बुद्ध बन जाता है। बेईमान सफल होता है बेईमानी की वजह से नही, और दूसरे गुणा की वजह से और जब कभी ईमानदार आदमी उन गुणो को पैदा कर लेता है तो उसकी सफलता का क्या कहना, वह सुकरात बन जाता है, वह जीसस बन जाता है। आप हैरान हो जायँगे दुनियाँ के बुरे आदमियो की सफलता के पीछे वे ही गुण है जो दुनियाँ के अच्छे से अच्छे आदमियो की सफलता के पीछे थे। गुण वही हैं, सफलता के। असफलता के दुर्गुण भी समान है। लेकिन हमने एक झूठी व्याख्या पकड़ ली और उसके हिसाब मे हमने समझा कि हमने सब मामला हल कर लिया। उसका नुकसान भारी पडा। सारी धारणा बदल देने की जरूरत है ताकि नीचे से जड बदला जाय और आदमी के व्यक्तित्व को हम नई बुनियाद दे सके। इस सम्बन्ध मे मैं तीसरा सूत्र बताकर अपनी बात पूरी करूँगा।

एक बात ध्यान रखना जरूरी है कि हमारी पूर्व कर्म की धारणा जब यह कहती है कि अभी मैं कर्म करूँगा और आगे कभी भविष्य मे, कई जन्मो के बाद फल मिलेगा तो वह धारणा हमे गुलाम बना देती है क्योकि कर्म तो अभी कर दिया गया और फल भोगने के लिए मै बँध गया। नही मालूम कबतक बँधे रहना पडेगा उस फल से। अनन्त जन्म हो चुके है। अनन्त कर्म आदमी ने किए है। उन सबसे आदमी बँधा हुआ है क्योकि उनका फल अभी भोगना बाकी है। अभी फल भोगा नही गया। तो भारत मे बँधे हुए की धारणा, एक परतन्त्रता की धारणा विकसित हुई कि हर आदमी परतन्त्र है, आगे के लिए बँधा हुआ है, पीछे के कामो से बँधा हुआ है। भारत की प्रतिभा के भीतर स्वतन्त्रता का बोध कि मै स्वतन्त्र हू, यह मर गया। यह मर ही जायगा। जब मैं पीछे के इतने कर्मों से बँधा हुआ हूँ, जिनके फल मुझे अभी भोगने पडेगे और जिनको बदलने का कोई उपाय न रहा तो स्वाभाविक रूप से मेरी चेतना बँधी हुई है, बद्ध है, बधन मे है, यह धारणा पैदा हो गई। और फिर जहाँ इतने बधन मेरे भीतर है वहाँ एकाध और कोई बधन ऊपर से आ जाय, कोई दूसरा मुल्क हुकूमत जमा ले तो क्या फर्क पडता है? मैं तो बँधा ही हुआ हूँ, और थोडा-सा बँधन बढता है तो क्या फर्क पडता है। हम इतने बँधे हुए मालूम होने लगे कि और नई गुलामी आ जाय तो हमे कोई तकलीफ मालूम नही होती। हमने भारत मे गुलाम आदमी पैदा कर दिया है इस धारणा की वजह से। मैं

आपसे कहना चाहता हूँ, प्रत्येक कर्म का फल तत्क्षण मिल जाता है और फिर आप समग्ररूपेण मुक्त हो जाते हैं। कर्म भी निपट गया उसका फल भी उसके साथ निपट गया। आपकी चेतना फिर मुक्त है, आप फिर मुक्त हो गए हैं। हर घड़ी आप बाहर हो जाते हैं अपने बंधन से। बंधन जिन्दगी भर साथ नहीं ढोने पड़ते हैं। वह जो हमारी चेतना है वह हमेशा मुक्त हो जाती है। हमने काम किया, फल भोगा और हम उसके बाहर हो गए। काम के साथ ही फल निपट जाता है, इसलिए आप हमेशा स्वतंत्र हैं। मनुष्य की आत्मा मौलिक रूप से स्वतंत्र है। वह कभी बंधन में नहीं रह जाती। वह कहीं भी बँधी हुई नहीं है। मौलिक स्वतंत्रता की गरिमा एक-एक आदमी को मिलनी चाहिए, तब हम स्वतंत्रता का आदर कर सकेंगे, स्वतंत्रता के लिए लड़ सकेंगे, स्वतंत्रता को बचाने के लिए जीवन खो सकेंगे। बँधे-बँधाए लोग, बंधन में पड़े हुए लोग, जिनका चित्त इस जड़ता ने पकड़ लिया है कि हम तो बँधे ही हुए हैं, वे लोग स्वतंत्रता के मंत्री, स्वतंत्रता के मालिक, और स्वतंत्रता की घोषणा करनेवाली स्वतंत्र आत्माएँ नहीं हो सकते हैं। इसलिए भारत इतने दिन गुलाम रहा है। इस गुलामी में न मुसलमानों का हाथ है, न हूणों का, न तुर्कों का, न अंग्रेजों का। इस गुलामी में भारत के उन संत-महात्माओं का हाथ है जिन्होंने एक-एक आदमी की आंतरिक स्वतंत्रता को नष्ट करने की धारणा दे दी। गौरव चला गया, गरिमा चली गई। जो गरिमा एक-एक आदमी की होनी चाहिए, वह खत्म हो गई। बंधन में पड़े आदमी की कोई गरिमा होती है, कोई गौरव होता है? पैर में जंजीरें बँधी है, हाथ में जंजीरें बँधी हैं, गर्दन फाँसी पर लटकी है, ऐसे आदमी की कोई गरिमा होती है? कर्म के इस सिद्धांत ने आपके पैरों में हजारों जंजीरें डाल दी हैं, हाथों में जंजीरें डाल दी है और गर्दन फाँसी पर लटका दी है। आप चौबीस घंटे फाँसी पर लटके हैं, चौबीस घंटे बंधन में हैं। एक ही प्रार्थना कर रहे हैं कि किसी तरह मुक्ति मिल जाय, बंधन से छुटकारा हो जाय। इस तरह के आदमी की तस्वीर बहुत बेहूदी और कुरूप होती है। इस तरह के आदमी का आत्मिक सम्मान का भाव भी नष्ट हो जाता है।

तीसरा अंतिम सूत्र है। भारत ने एक तीसरी बीमारी हजारों साल से पोसी है, और वह बीमारी है अहंकेन्द्रीकरण (Egocentredness) की। यह बड़ी अजीब बात मालूम पड़ेगी। अहम् केन्द्रीकरण हो गया हमारा। हम दुनियाँ में

सबसे ज्यादा इस तरह की बात करनेवाले लोग है कि अहकार छोडो, लेकिन हमारा पूरा जीवन-दर्शन व्यक्ति को अहम् केन्द्रित बनाने वाला है यह बड़े आश्चर्य की घटना है। भारत मे इसीलिए समाज की कोई धारणा, राष्ट्र की कोई धारणा कभी भी विकसित नही हो सकी। भारत कभी भी राष्ट्र न था और न है और न अभी पुराने आधारो पर राष्ट्र होने की सभावना है। भारत मे न कभी समाज था, न है और न आगे कोई समाज की धारणा बन सकती है। भारत की धारणा अबतक यह रही है कि एक-एक व्यक्ति के अपने कर्म हैं, अपना फल है। एक एक व्यक्ति को अपना मोक्ष खोजना है, अपना स्वर्ग खोजना है। दूसरे व्यक्ति से लेना-देना क्या है! एक-एक व्यक्ति की आत्मा को अपनी-अपनी यात्रा पूरी करनी है। दूसरे से सम्बन्ध क्या है! इसलिए एक अतर सम्बन्ध कभी हमारे भीतर विकसित न हो सका।

सुनी होगी वाल्मीकि की कथा। वाल्मीकि तो डाकू था, लुटेरा था। एक दफा उसने जाते हुए ऋषियो को भी रास्ते मे लूटने के लिए रोक लिया। उन ऋषियो ने क्या कहा? उन ऋषियो ने कहा, "तू हमे लूटता है तो ठीक है, लूट ले, लेकिन किसके लिए लूटता है?" यह घटना थोडी समझ लेनी जरूरी है। उसने कहा, "अपनी पत्नी के लिए, अपने बच्चे के लिए, अपने बूढे बाप के लिए, अपनी माँ के लिए लूटता हूँ।" उन ऋषियो ने कहा "तू फिर एक काम कर, हम तू बाँध दे वृक्षो मे, और जाकर अपनी पत्नी, अपनी माँ, अपने बाप से पूछ आ कि लूटने मे जो पाप का फल मिलेगा वे उसमे भी भागीदार होगे कि नही। नर्क जायगा तू, इतनी लूट, इतनी हत्या करने मे तो तेरी पत्नी, तेरे बेटे, तेरे माँ-बाप नर्क जाने के लिए तेरे साथ होगे कि नही? यह तू पूछ कर आ जा। वाल्मीकि ने उन्हें बाँध दिया और अपनी माँ से पूछने गया। माँ ने कहा कि इससे हमे क्या मतलब, तुम बेटे हो, हमे बुढापे मे खाना देते हो उससे मतलब है। हमे इससे कोई प्रयोजन नही है कि तुम कहाँ जाओगे और कहाँ नही जाओगे, वह तुम समझो। अपने कर्म का फल, आदमी को स्वयं भोगना पडता है। वाल्मीकि तो बहुत चौंका। उसने अपनी पत्नी को पूछा। पत्नी ने कहा, "तुम्हारा कर्त्तव्य है, तुम मेरे पति हो, तो मेरा पालनपोषण करते हो। मुझे पता नही कि तुम कहाँ से पैसे लाते हो और क्या करते हो। वह तुम्हारा अपना जानना है। नर्क जाओगे तो तुम, स्वर्ग जाओगे तो तुम, मुझसे क्या लेना-देना है।" वाल्मीकि तो घबरा गया। उसको पहली दफा पता चला

कि कर्म मेरे हैं और फल मेरे हैं। किसीसे कोई मेरा सम्बन्ध नहीं है सिवा इसके कि एक मेरी पत्नी है, वह एक बाहरी सम्बन्ध है। एक मेरी माँ है वह भी एक बाहरी सम्बन्ध है। अतर सम्बन्ध कोई भी नही है, जहाँ मेरे व्यक्तित्व का पूरा भार लेने को कोई तैयार हो। वह आया और ऋषियों के चरणों मे गिर पडा और खुद भी ऋषि हो गया।

आमतौर से यह कथा यह बताने के लिए कही जाती है कि ऋषियो ने वाल्मीकि को ज्ञान दिया, पर मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि ऋषियो ने उसे अहकेन्द्रित बना दिया। उनकी शिक्षा का जो फल हुआ वह कुल इतना कि वाल्मीकि को यह दिखायी पडा कि मै अकेला हूँ और सब अकेले हैं। मुझे अपनी फिक्र करनी है, उन्हें अपनी फिक्र करनी है। हमारे बीच कोई सेतु नही, कोई सबध नही। एक-एक आदमी एक बद खिडकी वाला मकान है। दूसरे आदमी तक न कोई खिडकी खुलती है, न कोई द्वार खुलता है, दूसरे मे सबधित होने का उपाय नही। तो एक अजीब धारणा पैदा हुई कि एक-एक आदमी को अपनी फिक्र करनी है। इस धारणा के अनुकूल जो समाज विकसित हुआ उसमे प्रत्येक आदमी अपनी फिक्र कर रहा है। उसमे कोई आदमी किसी दूसरे की फिक्र मे नही है। जिस देश मे हर आदमी अपनी-अपनी फिक्र कर रहा हो उस देश मे सारे आदमी परेशानी मे पड जायँ तो आश्चर्य क्या? दूसरे का कोई मूल्य नही है, मेरा मूल्य है, तू का कोई भी मूल्य नही है क्योकि कोई संबध ही नही है। आप कहेंगे हमने तो अहिसा की धारणा विकसित की, दान की धारणा विकसित की, सेवा की धारणा भी विकसित की। तो मैं आपको कहना चाहूँगा और आप बहुत हैरान होगे इस बात को जानकर कि हिन्दुस्तान ने जिस अहिसा की धारणा विकसित की, वह धारणा भी अहकेन्द्रित ही है। हमने अहिसा शब्द का प्रयोग किया, प्रेम शब्द का प्रयोग नही किया। अहिसा का मतलब है—दूसरे की हिंसा नही करनी है। क्यो? इसलिए नही कि हिंसा मे दूसरे का दुःख पहुँचेगा बल्कि इसलिए कि हिंसा से कर्म-बध होगा और तुमको नर्क भोगना पडेगा। जो जोर है वह इस बात पर नही है कि दूसरे दुःख पायँगे, जोर इस बात पर है कि दूसरे को दुख देने से बुरा कर्म होता है और आदमी को नर्क भोगना पडता है। अगर नर्क से बचना चाहते हैं तो दूसरे को दुख मत देना। दूसरे को दुख देने के पीछे भी यही धारणा है कि मै कही आगे दुख मे न पड जाऊँ। अगर हमको यह पता चल जाय कि दूसरे को दुख देने से कोई नर्क

नहीं होता तो हम तत्क्षण दूसरे को दुख देने को राजी हो जायेंगे। हम कहते हैं गरीब को दान दो, इसलिए नही कि गरीब दुखी है, बल्कि इसलिए कि गरीब को दान देने से स्वर्ग मिलता है। हमारा जोर किस बात पर है? हमारा जोर इस बात पर है कि दान देने से स्वर्ग का रास्ता तय होता है गरीब की गरीबी से हमे कोई मतलब नही। एक सन्यासी ने तो मुझे यहाँ तक कहा कि दुनियाँ मे अगर गरीब मिट जायेंगे तो फिर दान कैसे हो सकेंगे और अगर दान नही हो सका तो मोक्ष का द्वार बन्द हो जायगा क्योकि बिना दानी हुए कोई आदमी मोक्ष नही पा सकता। इसलिए मोक्ष पाने के लिए दुनियाँ मे गरीबो को बनाए रखना बहुत जरूरी है! किसको दान देंगे फिर आप? कौन दान लेगा आपसे? आपके स्वर्ग के रास्ते पर कुछ गरीब भिखारियो का खडा होना हमेशा आवश्यक है ताकि आप दान देकर स्वर्ग जा सकें! हमारे दान मे दरिद्र पर दया नहीं है, हमारे दान मे दरिद्र की दरिद्रता का भी शोषण है क्योकि उसकी दरिद्रता भी आधार बनाई जा रही है अपने स्वर्ग के लिए।

एक बिलकुल ही अहम्केन्द्रित मनुष्य की चेतना हमने अबतक विकसित की है। इसलिए हमने प्रेम शब्द का उपयोग नही किया, क्योकि प्रेम मे दूसरा महत्त्वपूर्ण हो जाता है, अहिंसा मे मैं ही महत्त्वपूर्ण हूँ। अहिंसा नकारात्मक है—हिंसा नही करनी है। बस, इसके आगे नही बढना है। प्रेम कहता है हिंसा नही करनी है तो ठीक है लेकिन दूसरे को आनंदित भी करना है। प्रेम मे दूसरा महत्त्वपूर्ण है, और अहिंसा मे 'मैं' महत्त्वपूर्ण है। हमारा सारा धर्म स्व-केन्द्रित है, हमारी कौम का सारा मन अहकार-केन्द्रित है। एक आदमी तप भी कर रहा है—धूप मे खडा होकर, तो आप यह मत समझना कि किसी और के लिए कर रहा है। कर रहा है अपने लिए, उसे स्वर्ग जाना है, उसे मोक्ष जीतना है। मुल्क भूखा मर रहा है और एक आदमी अपने स्वर्ग जाने के उपाय कर रहा है। मुल्क दरिद्रता मे सड रहा है और एक आदमी अपने मोक्ष की आयोजना मे लगा हुआ है और हम सब इसको आदर दे रहे हैं। हम सब कह रहे है कि बहुत धन्य पुरुष है, मोक्ष जाने की कोशिश कर रहा है।

मैने सुना है जापान मे पहली दफा बुद्ध के ग्रथो का अनुवाद हुआ। जिस भिक्षु ने अनुवाद करने की कोशिश की वह बहुत गरीब भिक्षु था। एक हजार

साल पहले की बात है। बुद्ध के पूरे ग्रंथों का जापानी में अनुवाद करवाने में कम से कम दस हजार रुपए का खर्च था। उस भिक्षु ने गाँव-गाँव जाकर रुपए इकट्ठा किए। वह दस हजार रुपए इकट्ठे कर ही पाया था कि उस इलाके मे, जहाँ वह रहता था, अकाल पड गया। उसने वह दस हजार रुपए अकाल के गाँव मे दे दिए। उसके साथियों ने कहा, यह तुम क्या कर रहे हो ? पर वह कुछ भी नहीं बोला। उसने फिर रुपए माँगने शुरू कर दिए। फिर बेचारा दस साल मे मुश्किल से दस हजार रुपए इकट्ठा कर पाया और बाढ़ आ गई। उसने फिर वह दस हजार रुपए बाढ में दे दिए। अब वह ७० साल का हो गया था। उनके मित्रो ने कहा, तुम पागल हो गए हो ! ग्रन्थों का अनुवाद कब होगा ? लेकिन वह हँसा और उसने फिर भीख माँगनी शुरू कर दी। जब वह ९० साल का था तब फिर दस हजार रुपए इकट्ठे कर पाया। सयोग की बात कि न कोई अकाल पडा, न कोई बाढ आई। तब उन ग्रथो का अनुवाद हुआ और छपा। ग्र थ मे उसने लिखा 'तीसरा सस्करण'। दो सस्करण पहले निकल चुके, लेकिन वे अदृश्य हैं। एक उस समय निकला जब अकाल पडा था, एक उस समय, जब बाढ आई थी। अब यह तीसरा निकल रहा है। वे दो बहुत अद्भुत थे, उनके मुकाबले मे यह कुछ भी नही है।

यह धारणा भारत में विकसित नही हो सकी है और जबतक विकसित न हो तबतक कोई मुल्क नैतिक नही हो सकता, न धार्मिक हो सकता है। भारत का धर्म भी अहकारग्रस्त है। (एक नई दृष्टि इस देश में जरूरी है कि दूसरा भी मूल्यवान है, मुझसे ज्यादा मूल्यवान। चारो तरफ जो जीवन है वह मुझसे बहुत ज्यादा मूल्यवान है और अगर उस जीवन के लिए मैं मिट भी जाऊँ तो भी मैं काम आ गया। वह जो चारो तरफ जीवन है, उस जीवन की सेवा से बडी कोई प्रार्थना नहीं है, उस जीवन को प्रेम देने से बडा कोई परमात्मा नही है। वह जो विराट जीवन है उस विराट जीवन के हम अग हैं। इसकी फिक्र छोड दें कि 'मेरा मोक्ष', क्योंकि मेरा कोई मोक्ष नही होता है। जब "मैं" मिट जाता है तब आदमी मुक्त होता है और जो आदमी जितने विराटतर जीवन के चरणों मे अपने 'मैं' को समर्पित कर देता है वह उतना ही मिट जाता है और मुक्त हो जाता है।)

ये तीन सूत्र मैंने आपसे कहे। इनकी वजह से भारत दुर्भाग्य से भर गया है। अगर इन तीन सूत्रों पर हमारी जीवन-चिन्तना को बदला जा सके तो

कोई कारण नही है कि हम अपने देश की सोई हुई प्रतिभा को वापस न जगा ले, सोई हुई आत्मा फिर से न उठ जाय और हम उत्साह से भर जायें, हम जीवन की उत्फुल्लता से भर जायँ, हम कुछ करने की तीव्र प्रेरणा से भर जायें और भविष्य-निर्माण के सपने हमारी आँखो मे निवास करने लगे। काश! यह हो सके तो भारत का सौभाग्य उदय हो सकता है।

भारत का भविष्य

एक छोटी-सी कहानी से मैं अपनी बात शुरू करना चाहता हूँ।

बहुत पुराने दिनों की घटना है। एक छोटे-से गाँव मे एक बहुत संतुष्ट गरीब आदमी रहता था। वह संतुष्ट था इसलिए सुखी भी था। उसे पता भी नहीं था कि मैं गरीब हूँ। गरीबी केवल उन्हें ही पता चलती है जो असन्तुष्ट हो जाते हैं। सन्तुष्ट होने से बडी कोई सम्पदा नहीं है, कोई समृद्धि नही है। वह आदमी बहुत सन्तुष्ट था इसलिए बहुत सुखी था, बहुत समृद्ध था। लेकिन एक रात वह अचानक दरिद्र हो गया। न तो उसका घर जला, न उसकी फसल खराब हुई, न उसका दिवाला निकला। लेकिन एक रात अचानक बिना कारण

वह गरीब हो गया। आप पूछेंगे, कैसे गरीब हो गया ? उस रात एक सन्यासी उसके घर मेहमान हुआ और उस सन्यासी ने हीरो के खदानों की बात की और उसने कहा, "पागल तू कब तक खेतीबारी करता रहगा ? पृथ्वी मे हीरो की खदाने भरी पडी है। अपनी ताकत उन हीरों की खोज मे लगाओ, तो जमीन पर सबसे बडा समृद्ध तू हो सकता है"। समृद्ध होने के सपने ने उसकी रात खराब कर दी। वह आज तक ठीक से सोया था। आज रात ठीक से न सो पाया। रात भर जागता रहा और सुबह उसने अपने को दरिद्र पाया, क्योंकि वह असंतुष्ट हो गया था। उसने अपनी जमीन बेच दी, अपना मकान बेच दिया। सारे पैसे को इकट्ठा कर वह हीरे की खदान की खोज को निकल पडा। सुनते है बारह वर्षों तक जमीन के कोने-कोने मे उसने खोज की, और उसकी सम्पत्ति समाप्त हो गई। अक्सर यह होता है कि पराई सम्पत्ति की खोज मे लोग अपनी सम्पत्ति गँवा बैठते हैं। वह दर-दर का भिखारी हो गया। वह सडको पर भीख माँगने लगा और सुनते है एक बडे नगर मे एक दिन भूख के कारण उसकी मृत्यु हो गई। बारह वर्ष बाद वह सन्यासी उस गाँव मे फिर आया। वह उसके घर के पास पहुँचा और जाकर पूछा कि यहाँ अली हफीज नामक एक आदमी रहता था, वह कहाँ रहता है ? लोगो ने कहा, "वह तो बारह वर्ष हुए, जिस रात आपने यह घर छोडा उसके दूसरे दिन सुबह उसने भी घर छोड दिया। वह हीरो की खोज मे चला गया और अभी-अभी खबर आई है कि वह भिखमगा हो गया और भूखा एक महानगरी की सडक पर मर गया। यह जमीन और मकान हमने खरीद लिया है। हम इसके निवासी हो गए हैं।" उस सन्यासी ने उससे पीने के लिए पानी माँगा और थोडी देर उस झोपडी मे रुका। उसने देखा कि उस झोपडे के आले मे एक बहुत चमकदार पत्थर रखा हुआ है। उसने उस किसान से पूछा कि यह क्या है ? उसने कहा, "यह मेरे खेत पर था जो मैने अलीहफीज से खरीदा था, वहाँ पडा मिल गया।" उसने कहा, "यह तो हीरा है। क्या उसी जमीन पर मिल गया है जिस जमीन को बेचकर अलीहफीज चला गया है ?" उसने कहा, "हाँ उसी जमीन पर। लेकिन यह हीरा नही है, केवल चमकदार पत्थर है और हमने बच्चो को खेलने के लिए उठा लिया है।" उस सन्यासी ने उस पत्थर को उठाया। उसकी आँखें चमक उठी। वह हीरे को पहचानता था। उसने कहा, "चल अपने खेत पर।" वे खेत पर गए। वहाँ एक छोटा-सा नाला बहता था,

जिसपर सफेद रेत थी। उस रेत मे उन्होंने खोजबीन शुरू की और सांझ होते-होते कई हीरे उनके हाथ लग गए। वह अलीहफीज की जमीन थी जो दूसरे की जमीन पर हीरे खोजने चला गया था। वही अलीहफीज की जमीन गोलकुंडा बन गई। उसी जमीन पर कोहनूर हीरा मिला और अलीहफीज, जो उस जमीन का मालिक था, एक बड़ी नगरी मे भिखमगा हो गया। वह हीरे की खोज मे चला गया था, लेकिन उसे कल्पना भी नही हो सकती थी कि जो मेरी जमीन है वही हीरे की खदानें भी हो सकती है। वही से कोहनूर भी निकल सकता है।

भारत के भविष्य मे भी यह कहानी सार्थक होगी। या तो भारत अपनी जमीन पर हीरे खोज लेगा या दूसरे की जमीनों पर भिखमगा होकर मर जायगा। मैं आपको यह बात भी कह दूँ कि भारत ने भिखमगा होने की दौड शुरू कर दी है। भारत भिखारी की तरह दुनियाँ के सामने खड़ा हो गया है। हम भीख माँग रहे है और जो कौम भीख माँगने लगती है उस कौम का भीख माँगने के बजाय मर जाना बेहतर है। यह मुल्क बेशर्मी के लिए रोज तैयार होता जा रहा है और जिस कौम की शर्म मर जाती है और जिसे भीख माँगने की तरकीबे और आर्ट का पता हो जाता है उस कौम का कोई भविष्य नही। उसके भविष्य मे कोई सूरज नही उगेगा और उसकी बगिया मे कभी कोई फूल नही खिलेगा और उसके भीतर जो भी आत्मा है वह धीरे-धीरे विलुप्त हो जायगी और हम मुर्दा लोगो की तरह, मुर्दा कौम की तरह जमीन पर बोझ बनकर रह जायँगे। हमने यह शुरुआत कर दी है। यह दुर्भाग्य की कथा प्रारम्भ हो गई है।

पहली बात तो मुझे यह कहना है कि सम्मान से मर जाना भी बेहतर है अपमानपूर्ण जीने से। देश के कोने-कोने मे एक-एक आदमी से यह बात कह देने की जरूरत है कि भारत जीएगा तो सम्मान से, अन्यथा मर जायगा। हम मर जाना पसन्द करेंगे। लोग कम-से-कम यह तो कह सकेंगे कि एक कौम थी जिसने भीख नही माँगी, लेकिन मर गई। इतिहास मे कही एक काली बात न लिखी जाय कि एक कौम थी जो भीख माँगकर जीना सीख गई और जीती रही। भारत का भविष्य उसके भिखमगेपन के साथ जुडा हुआ है। हम क्या करते है, इस पर बहुत कुछ निर्भर करता है। कोई हर्ज नही कि बिहार के लोग भूखे मर जायँ, कोई हर्ज नही कि पचास करोड़ लोगो मे दस-पाँच करोड लोग न जीएँ। वे

कब्रिस्तान मे चले जायें कोई हर्ज नही। लेकिन घुटने टेक कर सारी दुनियाँ से भीख माँगना अत्यन्त आत्मग्लानिपूर्ण आत्मघाती है। हम अपनी आत्मा को बेच रहे हैं। और फिर जब देश का चरित्र नीचे गिरता है और जब देश के प्राण नीचे उतरने है तो हम चिल्लाते हैं कि चरित्र नीचे गिर रहा है। लोग नीचे होते जा रहे हैं। लेकिन जब पूरी कौम भीख माँगने पर उतारू हो जायगी तो मनुष्य का चरित्र ऊपर नही उठ सकता है। पूरे मुल्क का जब कोई गौरव नही होगा, कोई सम्मान नही होगा, कोई आत्मनिष्ठा नही होगी तो एक-एक व्यक्ति की आत्मनिष्ठा नीचे गिर जायगी। हमे पता है हमारे मुल्क मे बहुत लोग है जो भीख माँगते रहे हैं, लेकिन कभी उन भिखमगो ने यह न सोचा होगा कि धीरे-धीरे पूरा मुल्क ही भीख माँगने लग जायगा। जिस आदमी को आप भीख देते हैं वह आदमी कभी आपको क्षमा नही कर सकेगा। ऊपर से धन्यवाद देगा, लेकिन उसके प्राणो मे आपके प्रति अभिशाप ही होगा, निन्दा होगी, घृणा होगी, ईर्ष्या होगी, अपमान का भाव होगा। क्योकि भीख लेनेवाला कभी भी यह अनुभव नही करता है कि मैं अपमानित नही किया गया हूँ। भीख लेने वाला हमेशा अपमानित अनुभव करता है और उसका बदला लेता है। भारत आज सारी दुनियाँ के सामने हाथ जोडकर भीख माँग रहा है और इसका बदला वह ले रहा है सारी दुनियाँ से। एक तरफ भीख माँगता है और दूसरी तरफ कहता है हम जगतगुरु है। एक तरफ भीख माँगता है और दूसरी तरफ गाली देता है पश्चिम को—भौतिकवादी और मेटिरियलिस्ट कहता है उसको। एक तरफ भीख माँगता है, दूसरी तरफ अपने गौरव को बचाने का झूठा प्रयास करता है। भिखमगो की यह पुरानी आदत है। भिखमगे अक्सर यह कहते सुने जाते है कि हमारे बाप-दादा सम्राट् थे। जिनके पास कुछ भी नही बचता है वे फिर माँ-बाप की पुरानी कथाओ को खोजकर निकाल लेते है और उनका गुणगान करते हैं। जिस आदमी का वर्तमान नहीं होता है वही केवल अतीत की बातें करता है। और जिसका कोई भविष्य नही होता है वही केवल अतीत की पूजा और गुणगान मे समय व्यतीत करने लगता है। हम निरतर अतीत का ही गुणगान करते हैं।

क्या हमारा कोई भविष्य नहीं है? या हमारा कोई अभिमान नही है? क्या हम जी चुके और समाप्त हो गए? हमारा बीता हुआ ही क्या सब कुछ है? आगे हमारा कुछ भी नही है? छोटा बच्चा पैदा होता है तो उसका कोई

अतीत नहीं होता है, उसका भविष्य होता है। जवान के पास अतीत भी होता है, वर्तमान भी होता है और भविष्य भी होता है, लेकिन बूढे के पास सिवा अतीत के कुछ भी नहीं होता है, भविष्य नही होता, वर्तमान भी नही होता। यह कौम बूढी हो गई है क्या ? इसके पास सब बीती हुई कथाएँ है—गौरव-गाथाएँ। इसके पास अपना कोई वर्तमान नही। भविष्य की कोई योजना, आकांक्षा और कल्पना नहीं, कोई आशा नही। भविष्य की अगर कोई स्पष्ट प्राणो मे ऊर्जा, कल्पना और आकाक्षा न हो, भविष्य का कोई स्पष्ट सपना न हो तो देश बिखर जाते हैं, कौमे बिखर जाती हैं, खडित हो जाती है। हमारे पास भविष्य की कोई योजना नही है, भविष्य की कोई कल्पना नही है, कोई सपना नही है। भविष्य की कोई स्पष्ट रूपरेखा नही है और इधर बीस वर्षों मे हमने और भी सब अस्पष्ट कर दिया है। हम दुनियाँ मे तटस्थ कौम की तरह खडे हो गए हैं और हम कहते हैं कि हम तटस्थ खडे होनेवाले लोग हैं। लेकिन आपको पता है, जीवन मे तटस्थता का कोई अर्थ नही होता। जीवन तो प्रतिबद्धता (Commitment) मे है। जीवन है सम्मिलित होने में, किनारे पर खडे होने मे नहीं। और जो किनारे पर खडा होता है और कहता है कि हम तटस्थ हैं और जीवन की जो धारा है उसमे हम तटस्थ और किनारे पर खडे हैं वह किनारे पर ही खडा रह जायगा। जीवन की धारा उसे छोडकर आगे बढ जायगी। मेरी दृष्टि मे अगर भारत तटस्थता की बातें आगे भी कहे चला जाता है तो उसका कोई भविष्य नही हो सकता है। अपने भविष्य के निर्माण मे भारत को पक्षबद्ध होना ही चाहिए। उसके मत निश्चित, स्पष्ट होने चाहिए। जीवन की धारा मे उसकी प्रतिबद्धता, उसका कमिटमेन्ट होना चाहिए। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि वह समाजवाद लाना चाहता है या लोकतत्र। उसके सामने यह स्पष्ट होना चाहिए कि वह एक वैज्ञानिक जीवन-दृष्टि विकसित करना चाहता है या नही। उसके सामने स्पष्ट होना चाहिए कि धर्म की क्या कल्पना और क्या रूपरेखा है भविष्य मे। लेकिन धर्म को ध्यान मे रखकर भारत निरपेक्ष है और राजनीति को ध्यान मे रखकर तटस्थ है। समझ ले कि जीवन को ध्यान मे रखकर भारत को अगर मृत होना पडे, मर जाना पडे तो जिम्मा किसी और को मत देना। जो मुर्दे हैं वे ही केवल निरपेक्ष और तटस्थ हो सकते हैं। जीवित व्यक्ति को निरपेक्ष होने की सुविधा नही है। उसे निर्णय लेने होते है, उसे चुनाव करना

होना है, उसे मत में बद्ध होना होता है। उसे किसी चीज को ठीक और किसी चीज को गलत कहना होता है। जो लोग चीजो के गलत और ठीक होने का निर्णय लेना छोड देते हैं, धीरे-धीरे जीवन का रास्ता उनके लिए नही रह जाता है। उनके ऊपर केवल दूसरी कौमो के पैरो की उडी हुई धूल ही पड़ती है और कुछ भी नही। उनके पैर धीरे-धीरे निकम्मे हो जाते हैं, काहिल हो जाते हैं, सुस्त हो जाते हैं। तटस्थता के भ्रम ने भारत को बहुत धक्का पहुँचाया है। स्पष्ट निर्णय लेने जरूरी है। अगर सडक पर एक स्त्री की इज्जत लूटी जा रही हो और मै कहूँ कि मै तटस्थ हूँ, एक आदमी एक कमजोर आदमी को लूट रहा हो और मै कहूँ कि मै तटस्थ हूँ, मैं निरपेक्ष हूँ तो मेरी तटस्थता का क्या मतलब होगा? जब एक आदमी लूटा जा रहा है और मै कहता हू, मै तटस्थ हूँ तो मैं लूटने वाले का साथ दे रहा हूँ। जीवन मे विकल्प होते है, तटस्थता नही होती है। जीवन मे स्पष्ट निर्णय लेने होते है। सारा जगत एक बहुत बडे सकट से गुजर रहा है उसमे भारत कहता है, हम तटस्थ है, इतने बडे सकट मे, जिसके ऊपर निर्भर होगा सारे जगत का, सारे मानव का भविष्य। जिसके ऊपर निर्भर होगा कि मनुष्य बचेगा या नही बचेगा, उसमे भारत अगर सोचता हो कि हम तटस्थ खडे रहेगे तो वह गलती मे है। इधर बीस वर्षों मे हम कोई गति नही कर सके। उसका कुल कारण है कि हमारे पास कोई सुस्पष्ट जीवन-दर्शन नहीं है। हम तटस्थ हैं। तटस्थ की कोई फिलॉसफी नही होती, कोई जीवन-दर्शन नही होता। उसकी कोई प्रतिबद्धता नही होती। जीवन मे भागीदारी और साझीदारी होने का उसका भाव नही रहता और वह कहता है कि हम तो किनारे खडे रहेंगे। वह केवल देखने वाला रह जाता है—एक दर्शक मात्र। जीवन उनका है जो भोगते है। वसुन्धरा उनकी है जो भोगना जानते है। जो दर्शक की भाँति खडे रह जाते है, जीवन उनके द्वार नही आता, और न जीवन की विजय उन्हे उपलब्ध होती है।

मै दूसरी बात यह कहना चाहता हूँ कि भारत को एक सुस्पष्ट दर्शन की, एक सुस्पष्ट विचार की, एक सुस्पष्ट पथ की अत्यन्त आवश्यकता है। उसी विचार के इर्दगिर्द भारत की आत्मा इकट्ठी होगी। अन्यथा, भारत बिखर जायगा और बिखराव ऐसा होगा, जिसका कोई हिसाब नही। जब पूरे मुल्क के पास कोई जीवन-दिशा नही होती, कोई केन्द्रीय आत्मा नही होती तो उसका परिणाम यह होता है कि एक-एक प्रान्त, एक-एक जाति, एक-एक जिले की

अपनी आत्मा पैदा हो जाती है। तब हिन्दी बोलने वाले की आत्मा अलग, गुजराती बोलने वाले की आत्मा अलग, अंग्रेजी बोलने वाले की आत्मा अलग हो जाती है। तब मैसूर अलग, महाराष्ट्र अलग। कौम तब टूटती है टुकडो मे जब कौम को इकट्ठा करने के लिए कोई जीवन-दृष्टि नही होती। हम चिल्लाते हैं रोज कि मुल्क को इकट्ठा होना चाहिए लेकिन क्या मुल्क इकट्ठा कोई आसमान से होता है ? मुल्क इकट्ठा होता है जब मुल्क के सामने भविष्य के लिए कोई सपना होता है जिसे पूरा करना होता है। हमारे मुल्क के पास कोई सपना नही है, हमारी कोई प्रतिबद्धता नही है। हम चुपचाप राहगीरो की तरह तमाशा देख रहे हैं। दुनियाँ जी रही है, हम तमाशगीर हैं। तटस्थता का अर्थ तमाशगीर ही हो सकता है। हिन्दुस्तान के नेताओ ने पिछले बीस वर्षों मे हिन्दुस्तान को कोई बडा मसला, कोई बडी समस्या, नही दी है। उलटी हालत हो गई है यहाँ। दुनियाँ का इतिहास यह कहता है कि नेता वह है जो कौमो को कोई बडा मसला, कोई बडी समस्याएँ दे। यहाँ हालत उलटी है। यहाँ जनता समस्या देती है। नेता उनको हल करने मे लगे हैं। और जब नीचे का सामान्य जन समस्याएँ देने लगता है और ऊपर के नेता केवल उन समस्याओ को सुलझाकर काम चलाने की व्यवस्था करने लगते हैं तो मुल्क बिखर ही जायगा। बडा नेतृत्व उन लोगो से उपलब्ध होता है जो मुल्क को किसी जीवन्त समस्या के इर्दगिर्द इकट्ठा कर देते हैं। लेकिन हमारे पास मसला क्या है, पता है आपको ? दुनियाँ हँसती होगी। गोहत्या हमारी समस्या है। आदमी मर रहा है। आदमी के बचने तक की सम्भावना नहीं है। बहुत डर है कि पूरी मनुष्यता भी नष्ट हो जाय और हमारी समस्या क्या है ? गो-हत्या होनी चाहिए कि नही होनी चाहिए, भाषा कौन-सी बोली जानी चाहिए।

मैं एक घर मे ठहरा था। उस घर मे आग लग गई। घर के लोग चिल्लाने लगे। पडोस के लोगो को जगाया। मैने उनसे कहा कि पहले यह तो तय कर लो कि किस भाषा मे चिल्लाओगे। हिन्दी मे कि अंग्रेजी मे। क्योंकि अब तक एक राष्ट्रभाषा निश्चित नही हुई है। किस भाषा मे चिल्लाओगे। जब तक यह तय नही, तब तक चुपचाप बैठो। मकान जलने दो। दो कौडी के मसले हम देश के सामने उठाकर पूरे मुल्क के प्राणों को बिखेर रहे है। मुल्क के सामने कोई जीवन्त समस्या, कोई बडा मसला नही है। पता होना चाहिए आपको कि जगत मे केवल वे ही कौमे और वे ही राज्य और वे

ही मुल्क कुछ कर पाते है जिनके पास कोई जीवन्त मसला होता है, कोई बडी समस्या होती है। बडी समस्याओ के पास बडी आत्माएँ पैदा होती है। बीस साल मे हम चिल्ला रहे हैं। बीस साल पहले जब आजादी नहीं मिली थी तब हमारे मुल्क ने कितने बडे लोग पैदा किए। वे लोग किसी बडे मसले के इर्दगिर्द पैदा हुए थे। बीस साल मे आपमे कोई बडा मसला पैदा नहीं हुआ। बडे लोग कैसे पैदा हो सकते है? आजादी की बडी समस्या थी, बडा प्रश्न था, जीवन-मरण का प्रश्न था। उसके आसपास बडी आत्माएँ जगी और पैदा हुई। जीवन तो चुनौतियो से पैदा होता है। बीस साल से कौन-सा चैलेंज है आपके सामने? यही कि मैसूर का एक जिला महाराष्ट्र मे रहे कि मैसूर मे। बेवकूफिओ की भी सीमाएँ होती है लेकिन हम उनको भी पार कर गए हैं। गो-हत्या हो कि न हो और धर्मगुरु और राजनेता और समझदार इन मसलो पर बैठ कर विचार-विमर्श करते है इनको हल करने का। ऐसे लोगो के दिमाग के इलाज की व्यवस्था की जानी चाहिए। ये लोग सारे मुल्क को बर्बादी के रास्ते पर ले जाते हैं, मुल्क की चेतना को गलत मार्गों पर प्रवाहित करते हैं।

एक रात मैंने एक सपना देखा। मैंने देखा कि कुछ गौवे कनवेन्ट स्कूल से पढकर वापस लौट रही है और एक ऊँट के मकान के सामने ठहर गई हैं। वह ऊँट एक बडा चित्रकार है और उस ऊँट ने यह खबर घोषित कर दी है कि पिकासो और पश्चिम के सब माडर्न पेन्टर्स मेरे ही शिष्य है। मै जगतगुरु हूँ उन सबका। उसने घोडे का एक चित्र बनाया है। कनवेन्ट से लौटती हुई गौवो ने सोचा, जरा हम देख ले कि इसने कौन-से घोडे का चित्र बनाया है। वे भीतर गई। ऊँट बडा मुस्करा रहा था। उसने कहा—देखो। फिर गौवो ने कहा—इसका कुछ ओर छोर समझ मे नही आता है। यह कैसा घोडा है। उसने कहा यह माडर्न पेंटिग है। जिसका ओर-छोर समझ मे आ जाय, समझना वह चित्रकला ऊँची नही है। जिसका कोई ओर-छोर नही होता है उसको कुछ थोडे से चुने हुए लोग समझ सकते है। यह घोडे का चित्र है। गौवो ने कहा—किसी तरह हम मान ले कि यह घोडे का चित्र है? इसके कूबड क्यो निकले हुए है। उस ऊँट ने कहा—तुम्हे पता है। बिना कूबड के कोई कभी सुन्दर होता ही नही। क्योकि परमात्मा ने सुन्दरतम प्राणी—सर्वश्रेष्ठ प्राणी—तो ऊँट ही बनाया है और ८४ लाख योनियो मे भटकते जब आत्मा ऊँट की योनि मे आती है तभी मोक्ष मिलने का दरवाजा खुलता है।

उस ऊँट ने कहा कि मैंने ऊँटों की बाइबिल पढ़ी है। उसमें लिखा है कि ईश्वर ने ऊँट को अपनी ही शकल में बनाया है (God created camel in His own image)। गौवें खूब हँसने लगीं। उन्होंने कहा—"ऊँट अकल, तुम ठीक समझे नही बाइबिल को। बाइबिल मे लिखा है कि गाय को ईश्वर ने अपनी शकल मे बनाया है (God created cow in His own image)। तुम गलत समझते हो तो धर्म गुरुओं से पूछ लो। वह भी कहते हैं कि गौ माता है। आजतक ऊँट को किसने पिता कहा है? आदमी भी मानते हैं गौ माता है।" मेरी घबराहट मे नींद खुल गई। मैं तो अब तक नही सोच पाता कि गौवें भी हँसती हैं इन बातो पर कि आदमी यह विचार करते हैं कि गौ माता है या नही। वैसे गौवें भी पसन्द नही करेंगी इस बात का कहा जाना कि गौ माता हैं। गौवें सब कनवेन्ट में पढ़ती हैं तो पसन्द करेंगी कि गौ मम्मी है, माता तो पसन्द नही करेंगी। लेकिन ये हमारे मसले हैं। अगर जानवरो को पता होगा हमारे मसलो का तो वे बहुत हँसते होंगे अपनी बैठक मे बैठकर कि आदमी भी खूब है, गजब का है। हम तो आदमी के बाबत कभी विचार नही करते कि आदमी हमारा बेटा है या नही। लेकिन आदमियो के धर्मगुरु अनसन करते है, उपवास करते हैं और सारे मुल्क की चेतना को व्यथित करते है और भटकाते है। असल मसले से हटाने का एक ही रास्ता है कि नकली मसले पैदा कर दिए जायें। जीवन की असली समस्याओ से मनुष्य के मन को हटा लेने की पुरानी तरकीब है कि झूठी समस्याएँ खडी कर दी जायें। बीस साल मे हम मिथ्या मसले खडे करने मे बडे निष्णात हो गए है। मुल्क का भविष्य नही हो सकता है अगर हम इसी तरह के व्यर्थ के प्रश्न सामने खडे करते चले गए। स्मरण रहे कि हम जितनी बडी समस्या चुनते है, उतनी ही हमारे भीतर सोयी हुई आत्मा जागृत होती है और विकसित होती है। जो प्रश्न मनुष्य के भीतर उसकी चेतना को चुनौती नहीं देते उन प्रश्नो को बिदा कर देना चाहिए। निर्णय कर लेना चाहिए कि हम अपने से बडा प्रश्न चुनेंगे ताकि मुल्क की चेतना रोज-रोज विकसित हो।

हिटलर ने अपनी आत्म-कथा मे लिखा है कि अगर किसी कौम के सामने बडे प्रश्न न हो तो बडे प्रश्न पैदा करने की फिक्र करनी चाहिए। क्योकि जितने बडे प्रश्न खड़े होते हैं आदमी उनके उत्तर देने के लिए उतनी ही आतुरता से अपनी सोयी हुई शक्तियो को जगाना शुरू कर देता है। लेकिन हम

उलटा कर रहे है। हर छोटे से छोटे प्रश्न खड़े करते है और उनके साथ अगर मुल्क की आत्मा नीची होती चली जाती है तो जिम्मेदार कौन है, उत्तरदायी कौन है ? मै आपसे यह कहना चाहता हूँ कि मुल्क के सामने बड़े प्रश्न खड़े करने हैं और सबसे बड़ा प्रश्न क्या है ? सबसे बड़ा प्रश्न शायद आपको खयाल मे भी न हो। सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि क्या मुल्क को समाजवाद की दिशा मे जाना है ? समाजवाद (Socialism) या साम्यवाद (Communism) का इतना प्रचार किया गया है कि अब कोई आदमी सोचता ही नही कि यह भी कोई प्रश्न है। अब तो हम सभी मानते ही है कि जाना ही है उसी दिशा मे। समाजवाद की परिकल्पना मे ज्यादा घातक और खतरनाक कोई कल्पना नही हो सकती है। एकदम झूठी कल्पना है जिसके अन्तर्गत मनुष्य की सारी आत्मा बिक जायगी और जीवन मे जो भी श्रेष्ठ है, जो भी सुन्दर है और जो भी सत्य है, वह नष्ट हो जायगा। पहली बात, कोई दो आदमी समान नही है और न हो सकते है। समानता एकदम झूठी कल्पना है। इसका यह मतलब नही है कि एक आदमी नीचा और एक आदमी ऊँचा है। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक आदमी भिन्न, अद्वितीय और अपने जैसा है। एक-एक आदमी बेजोड़ है। कोई आदमी किसी से न छोटा है, न बड़ा। लेकिन कोई आदमी किसी के समान भी नही है। दुर्भाग्य होगा वह दिन, जिस दिन हम आदमियो को जबर्दस्ती समानता की मशीन मे ढालकर खड़ा कर देगे। उस दिन मशीनें रह जायँगी, मनुष्य नही। लेकिन सारी दुनियाँ मे यह कोशिश की जा रही है कि मनुष्य को सब भाँति समान कर दिया जाय। मनुष्य की चेतना और जीवन का विकास व्यक्ति की तरफ है। जीवन का लक्ष्य व्यक्ति है। अगर हम किसी पौधे के बीज लाएँ और पचास बीज यहाँ सामने रख दें तो बीज बिलकुल समान होगे। बीजो मे कोई फर्क नही होगा, लेकिन उन पचास बीजो को बगिया मे बो दे तो उनमे पचास तरह के पौधे पैदा होगे। वे पौधे सब भिन्न होगे। उनमे फूल लगेगे। वे फूल सब भिन्न होगे। बीज समान हो सकते है लेकिन विकास की अन्तिम स्थिति समान नही हो सकती। कम्यूनिज्म मनुष्य की आदिम अवस्था थी। मनुष्य जब बिलकुल बीज रूप मे था, जब उनमे कोई विकास नही था तब यह स्थिति थी। तब वे समान थे। लेकिन जितना मनुष्य मे विकास होगा उतना एक-एक व्यक्ति अलग, पृथक, भिन्न और अद्वितीय होता चला जायगा। जीवन की धारा अद्वितीय व्यक्तियो

को पैदा करने की ओर है, एक-सा समाज पैदा करने की ओर नही है, लेकिन सारी दुनियाँ मे इधर सौ वर्षों मे इतने जोर से साम्यवाद की बात की गई है कि अब तो कोई कहने का साहस भी नही कर सकता कि यह बात गलत भी हो सकती है। आज रूस मे यदि बुद्ध पैदा होना चाहें तो नही पैदा हो सकते। महावीर जन्म लेने के साथ ही मुश्किल में पड जायेंगे। महावीर और बुद्ध को छोड दें, अगर खुद मार्क्स भी पैदा होना चाहें तो रूस उसकी पैदाइश की जमीन नहीं हो सकती। अब तो अगर स्टेलिन भी पुनर्जन्म लेना चाहें तो रूस मे उनको जन्म नही दिया जा सकता है। क्योकि रूस की या साम्यवाद की सारी धारणा व्यक्ति-विरोधी है व्यक्ति वैशिष्ठ्य (Individuality) की विरोधी है। हम इकाइयाँ चाहते हैं, व्यक्ति नहीं चाहते और सभी व्यक्तियो को एक-सा कर देना है सब भाँति। निश्चित ही सभी व्यक्तियो को समान अवसर उपलब्ध होना चाहिए, लेकिन समान अवसर इसलिए नहीं कि सभी व्यक्ति समान हो जायें, बल्कि इसलिए कि प्रत्येक व्यक्ति असमान और भिन्न होने की समान सुविधा उपलब्ध कर सके। हिन्दुस्तान पर भी यह दुर्भाग्य उतर रहा है धीरे-धीरे। कौन लायगा इस दुर्भाग्य को, यह बात अलग है, कम्युनिस्ट लायेंगे, या कांग्रेस लायगी, या सोशलिस्ट लायेंगे। लेकिन यह दुर्भाग्य धीरे-धीरे उतर रहा है और हम भी इस कोशिश में लगे हैं कि एक यांत्रिक, एक समष्टिवादी (collective) समाज को निर्मित कर लें। लेकिन आपको पता होना चाहिए कि रोटी के मूल्य पर हम आत्मा को बेचने की कोशिश कर रहे है। याद होना चाहिए कि समानता की यह जबर्दस्त कोशिश मनुष्य के जीवन से स्वतंत्रता को नष्ट करती है, व्यक्तियो की विशिष्टता को नष्ट करती है, उनके बेजोड (unique) होने को नष्ट करती है। सारी दुनिया मे यह हो रहा है। हिन्दुस्तान मे भी होगा। हम पीछे शायद ही रहेंगे। ऐसी कौन-कौन सी बीमारी है जिसमे हम पीछे रह जायें। हम तो सबके साथ आगे होने के लिए अत्यन्त उत्सुक और आतुर हो उठते हैं। अगर भारत के भविष्य के लिए कोई कल्पना और कोई सपना हो सकता है तो वह यह कि भारत आने वाली दुनियाँ मे व्यक्तिवाद का परम पोषक स्पष्ट रूप से अपने को घोषित करेगा। व्यक्तियो के विकास का अर्थ यह नही हो सकता कि समाज दरिद्र होगा और लोग दीन-हीन होगे। व्यक्तियो की पूर्ण विकास की अवस्था मे कोई दीन-हीन होने की जरूरत नहीं रह जाती लेकिन असमानता

भिन्नता, वैशिष्ठ्य की स्वीकृति होती है। एक ऐसा समाज चाहिए जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को स्वय होने की स्वतन्त्रता हो। समाजवाद या साम्यवाद मे यह स्वतन्त्रता सम्भव नही है। वहाँ समाज होगा, व्यक्ति नही होंगे। व्यक्तियों की लेबलिंग की जायगी और रह जायगी एक कलेक्टिव भीड। मनुष्य की चेतनाओं को पोछ डालने की, उनके स्वतत्र चिन्तन को मिटा डालने की, जो हुकूमत कहे वही दोहराने की तथा उनको मशीन बनाने की पूरी कोशिश की जा रही है। चीन मे बडे जोर का प्रयोग चल रहा है कि प्रत्येक व्यक्ति मे जो विशिष्ट चेतना है उसे पोछकर कैसे अलग कर दिया जाय और पावलेव और कुछ दूसरे मनोवैज्ञानिको ने कोई यत्र उनके हाथ मे दे दिया है कि एक-एक आदमी के भीतर जो व्यक्तित्व है, जो विशिष्टता है, जो चिन्तन है, उसे पोछ डाला जाय और एक-एक आदमी एक कुशल मशीन हो जाय। निश्चित ही तब ज्यादा रोटी मिल सकेगी, ज्यादा अच्छे मकान मिल सकेंगे, ज्यादा अच्छे कपडे मिल सकेंगे। लेकिन किस कीमत पर ? आत्मा को खोकर। एक मकान मे आग लगी थी और मकान का मालिक बाहर आंसू बहा रहा था और खडा था। पडोस के लोग मकान मे दौडकर सामान निकाल रहे थे। सारा सामान निकाल लिया गया और मकान मे अन्तिम लपटें पकडने लगी तब लोगो ने आकर उस मकान–मालिक को कहा कि कुछ और भीतर रह गया हो तो हम देख ले जाकर, क्योकि इसके बाद दोबारा भीतर जाना सम्भव नही होगा। मकान अतिम लपटो मे जल रहा है। उस मकान-मालिक ने कहा—मुझे कुछ भी याद नही पडता। मेरी स्मृति ही खो गई है। फिर तुम भीतर जाकर देख लो, कुछ बचा हो तो ले आओ। उन्होने सब तिजोरियाँ बाहर निकाल ली थी, मकान के सब खाते-बही कपडे-बर्तन सब बाहर निकाल लिये थे। तभी एक आदमी भागा हुआ भीतर गया और वहाँ से छाती पीटता और रोता हुआ वापस आया। मकान-मालिक का इकलौता लडका भीतर ही जल गया था। वह बाहर आकर रोने लगा और कहा, 'हम सामान को बचाने मे लग गए और सामान का अकेला मालिक नष्ट हो गया।' क्या हम भी सामान को बचायेंगे या सामान के मालिक को बचायेंगे ? क्या हम आदमी को बचायेंगे या रोजी, रोटी और कपडे को ? जरूरी नही है कि आदमी को बचाने मे रोजी और रोटी न बचायी जा सके। आदमी के साथ उसे भी बचाया जा सकता है। भारत के लिए कोई जीवन-दर्शन अगर हो

सकता है तो वह यह हो सकता है कि भारत आने वाले जगत मे व्यक्तियों की गरिमा को बचाने की घोषणा करे और व्यक्ति कैसे बचाए जा सकें, उनकी स्वतन्त्रता, उनके प्राणों की ऊर्जा, उनकी गरिमा और गौरव कैसे बचाया जा सके, उन सबको मशीनो मे बदलने से कैसे बचाया जा सके। उसकी अपनी एक चुनौती, अपना एक आवाहन हो और इस आवाहन के ईर्दगिर्द न केवल सारे देश के प्राण जग सकते हैं, बल्कि सारे जगत मे एक मार्गदर्शन उपलब्ध हो सकता है।

चौथी बात मुझे यह कहनी है कि भारत को अपने आनेवाले भविष्य के निर्माण मे अपनी पिछली भूलो को ठीक से समझ लेना होगा ताकि फिर से वे न दोहराई जायें। भारत ने कुछ बुनियादी भूले तीन हजार वर्षों मे दोहराई हैं और यहाँ के विचारशील लोग इतने कमजोर, इतने सुस्त और शक्तिहीन है कि उन भूलो के बाबत चिन्तन करने की सामर्थ्य और साहस भी नही जुटा पाते। भारत ने एक बडी भूल दोहराई है और वह यह कि भारत ने आत्मा-परमात्मा की एकागी बाते की है। शरीर को और पदार्थ को बिलकुल छोड दिया है और भूल गया है। एक हजार वर्ष की गुलामी इसका परिणाम थी। आदमी आत्मा भी है और शरीर भी। जीवन चेतना भी है और पदार्थ भी। हिन्दुस्तान ने केवल चेतना और आत्मा की बातो मे अपने को भुलाए रखा और दरिद्र होता गया। शरीर क्षीण होता गया, शक्ति नष्ट होती गई। तर्क खोजने मे दुनिया मे हमारी कोई सानी नही, हमारा कोई मुकाबला नही। जब हम गुलाम हो गए तो हमने कहा कि मुसलमानो ने आकर हमको गुलाम कर दिया। जब अंग्रेजो ने हमको पराजित कर दिया और हमारे ऊपर हावी हो गए तो हमने कहा कि अंग्रेजो ने हमे गुलाम करके कमजोर कर दिया। सच्चाई उलटी है। जबतक कोई कौम कमजोर नही होती तबतक किसी को कोई गुलाम कैसे बना सकता है। गुलामी से कभी कोई कमजोर नही होता। कमजोर होने से जरूर कौमे गुलाम हो जाती है। अंग्रेजो की वजह से, मुसल-मानो की वजह से हम कमजोर नही हुए है। हम कमजोर थे। कमजोर हम क्यो हो गए? कमजोर किया हमारे एकागी धर्मों ने, कमजोर किया हमारे साधु-महात्माओ ने, कमजोर किया हमारे अधूरे सन्यासियो ने। न मुसलमानो ने, न अंग्रेजों ने, न हूणो ने, न मुगलो ने और न तुर्कों ने, किसी ने हमको कमजोर नही किया। कमजोरी आई हमारे भीतर से, अधूरेपन से।

हमने जीवन मे पदार्थ की महत्ता को अगीकार नहीं किया। शरीर के हम दुश्मन रहे। सम्पत्ति और शक्ति के हम विरोधी रहे। जो कौम सम्पत्ति, शक्ति और पदार्थ का विरोधी है फिर वह राम भजन करने योग्य रह जायगी ? कही और किसी के योग्य नही। फिर वह हरिकीर्तन कर सकती है—अखण्ड कीर्तन। लेकिन और कुछ भी उसमे नही हो सकता है। और मैं आपको स्मरण दिला दूं कि जिनके पास शक्ति नही उनके पास परमात्मा तक पहुँचने के मार्ग भी बन्द हो जाते हैं। कमजोर, नपु सक, ढीले और सुस्त लोगो के लिए वह मार्ग नही है। हिमालय की चोटियाँ जो नही चढ सकते, वे परमात्मा की चोटियो को क्या चढ सकेंगे। हिमालय की चोटियाँ चढ़ने के लिए बाहर से लोग आते हैं। एवरेस्ट को चढने के लिए बाहर से लोग आते हैं और हमारे बच्चे अँधेरे मे जाने मे डरते हैं। हम आत्मा की अमरता की बातें करते हैं पर हमसे ज्यादा मौत से डरने वाला जमीन पर कोई भी नही। बडी अजीब बात है। अगर भारत को कोई भविष्य बनाना है तो उसे पूरे धर्म को विकसित करना होगा। पूरे धर्म मे मेरा मतलब है जो शरीर को भी स्वीकार करता है और आत्मा को भी। एक दूसरी भूल पश्चिम ने की है। उन्होने आत्मा को अस्वीकार करके केवल शरीर को मान लिया है। एक अति की भूल उन्होंने की और एक अति की भूल हमने की। जीवन-सगीत इस तरह पैदा नही होता।

बुद्ध से एक युवा राजकुमार ने दीक्षा ली। वह अत्यन्त भोगी और विलासप्रिय था। बुद्ध से दीक्षा लेकर जब वह सन्यासी हुआ तो बुद्ध के दूसरे भिक्षुओ ने कहा कि यह इतना विलासी राजकुमार, जो कभी महलो से बाहर नही निकला, जिसने कभी खुले आसमान की धूप नही सही, जो चलता था रास्तो पर तो फूल और मखमल बिछाए जाते थे, मकान की सीढियो पर सहारा लेकर चढने के लिए नग्न स्त्रियो को खडा करता था, सन्यासी हो रहा है। बुद्ध ने कहा, "मनुष्य का मन हमेशा अति मे डोलता है। जो भोगी है वह योगी हो जाता है। जो योगी है वह भोगी हो जाता है।" अभी पश्चिम मे बहुत जोरो से धर्म का प्रभाव बढ रहा है। चर्च मे लोग जा रहे हैं। उनका दिमाग भोग से ऊब गया है, उनकी घडी का पेंडुलम धर्म की तरफ जा रहा है। हिन्दुस्तान के लोग धर्म से ऊब गए। उनका पेंडुलम भोग की तरफ, सिनेमा की तरफ जा रहा है। वहाँ उनकी भीड चर्च के सामने इकट्ठी हो रही है। यहाँ की भीड सिनेमा के पास इकट्ठी हो रही है। मनुष्य का जो बीमार

मन है वह हमेशा अति पर आता है। ज्यादा खाने वाले लोग उपवास करने लग जाते हैं। जिनके चित्त में स्त्रियों के चित्र बहुत चलते हैं वे ब्रह्मचारी हो जाते हैं। जीवन अति में चलता है और अति भूल है, एक्स्ट्रीम भूल है। बुद्ध ने कहा—श्रोण अति पर आ रहा है, और भिक्षुओं ने देखा कि वही हुआ। जिस दिन से राजकुमार श्रोण दीक्षित हुआ, वह काँटों वाली पगडंडी पर चलता था ताकि पैरो मे काँटे छिद जायँ और लहूलुहान हो जायँ। वह त्यागी-तपस्वी ठीक रास्ते पर कैसे चल सकता था। कल तक वह मखमलों पर चलता था और अब वह काँटों पर चलता है। बीच का कोई रास्ता था ही नही। दूसरे भिक्षु एकबार भोजन करते, वह एक दिन भोजन करता और एक दिन निराहार रहता। दूसरे भिक्षु वृक्षो की छाया मे बैठते, वह भरी दोपहरी धूप में खडा रहता। दूसरे भिक्षु वस्त्र ओढ़ते, लेकिन वह सर्दी मे भी नग्न पडा रहता। उसने सारे शरीर को सुखाकर काटा बना लिया। वह सुन्दर राजकुमार, उसकी सुन्दर काया सूखकर काली पड गई, कुरूप हो गई। उसके पैरों में छाले पड़ गए। उसके पैरो में लहू बहता रहता। मवाद पड गई। फोडे पड़ गए। बुद्ध एक वर्ष बाद उस राजकुमार के पास गए और कहा—राजकुमार श्रोण, मैंने सुना है कि जब तू भिक्षु नही हुआ था तो सितार बजाने मे, वीणा बजाने मे तेरी बडी कुशलता थी। क्या यह सच है? श्रोण ने कहा हाँ, यह सच है। लोग कहते थे—तेरे जैसा वीणा बजाने वाला कोई कुशलवादक नही है। तो बुद्ध ने कहा, मैं एक प्रश्न मे उलझ गया, उसे पूछने आया हूँ तुझसे। वीणा के तार अगर बहुत ढीले हो तो सगीत पैदा होगा? श्रोण ने कहा कि कसे तार ढीले हो गए तो टकार भी पैदा नही हो सक्ती, सगीत कैसे पैदा होगा। बुद्ध ने कहा—और अगर तार बहुत कसे हो तो सगीत पैदा होता है? श्रोण, ने कहा—नही, अगर तार बहुत कसे हो तो वे टूट जाते हैं फिर भी सगीत पैदा नही होता। तो बुद्ध ने कहा—सगीत पैदा कब होता है? सगीत के पैदा होने का राज और रहस्य क्या है? श्रोण ने कहा—वीणा के तार की एक ऐसी दशा भी है जब न तो हम कह सकते हैं कि वे ढीली हैं और न कह सकते है कि कसे हुए हैं। उस मध्य में, उस सतुलन मे, उस समता मे, उस बिन्दु पर सगीत का जन्म होता है। बुद्ध ने कहा—मैं जाता हूँ। इतना ही कहने आया था कि जो वीणा मे सगीत पैदा होने का नियम है, जीवन की वीणा पर भी संगीत पैदा होने का वही नियम है। जीवन की वीणा से सगीत वही पैदा होता है

जब न तो तार आत्मा की तरफ बहुत कसे होते हैं और न शरीर की तरफ बहुत ढीले होते हैं।

भारत ने शरीर के विरोध मे आत्मा की तरफ तारो को कस लिया। हमारी वीणा से सगीत उठना हजारो साल मे बन्द हो चुका है। पश्चिम मे जीवन की वीणा के तार शरीर की तरफ बिलकुल ढीले छोड दिए, उनपर टकार ही नही पैदा होती, उसमे भी सगीत उठना बन्द हो गया है। क्या हम जीवन की वीणा पर सगीत पैदा करना चाहते हैं? तो हमे पश्चिम और पूर्व की दोनो भूलो मे भारत के भविष्य को बचाना है। पूर्व के अतीत से और पश्चिम के वर्त्तमान से अपने को बचा लेना है, दोनो अतियो से बचा लेना है। अगर यह हो सके तो एक सौभाग्यशाली देश का जन्म हो सकता है। और हो सकता है यह भी कि दुनिया मे भारत इतनी तीव्रता से, इतनी ऊर्जा से उठे जिसका कोई हिसाब न लगा सके। डेढ-दो हजार वर्षों से भारत की चेतना की भूमि परती पडी है। उसपर कोई फसल नही बोई गई। यह हो सकता है कि अगर हमने कुशलता से, समझदारी मे, बुद्धिमत्ता से काम लिया तो दो हजार वर्ष का दुर्भाग्य हमारे वरदान मे फलित हो जाय और हमारे देश की चेतना और आत्मा की जो जमीन परती पडी है उसपर हम जीवन की कोई सुन्दर फसल काट सकें। यह हो सकता है, लेकिन यह आसमान से नही होगा और किसी भगवान की पूजा और प्रार्थना करने से नही होगा, और शास्त्रो और मदिरो के सामने सिर टेकने से नही होगा। बहुत हो चुकी ये सारी बातें और इनसे कुछ भी नही हुआ है। यह होगा, अगर हम कुछ करेंगे। यह हमारे सकल्प और हमारे भीतर सोई हुई शक्ति के जगाने से हो सकता है। भारत वही बनेगा जो हम उसे बना सकते हैं।

मैं कोई राजनीतिज्ञ नही हूँ। मुझे राजनीति से कुछ लेना-देना नही है। लेकिन मैं तटस्थ भी नही हो सकता। मुल्क के लिए चिंतन करना ही होगा, अन्यथा मुल्क भटक जायगा और हम सब उसके लिए अपराधी सिद्ध होगे। राजनीतिज्ञ ही नही, साधु और सन्यासी भी, जो चुपचाप खडे रहेंगे, अपराधी सिद्ध होगे और उनका अपराध राजनीतिज्ञो के अपराध से बडा होगा। उनका अपराध बहुत पुराना है। असल मे मनुष्य जाति को जिन लोगो ने सबसे ज्यादा नुकसान पहुँचाया है वे अच्छे लोग हैं, जो राजनीति की तरफ पीठ करके खडे हो जाते हैं और बुरे लोगो को मौका देते हैं कि वे राजनीति मे प्रविष्ट हो जायें।

बर्ट्रेंडरसल ने बहुत पहले एक वक्तव्य दिया था। वक्तव्य अद्‌भुत था। उस वक्तव्य का शीर्षक था, "वह नुकसान जो अच्छे लोग करते हैं।" (The harm that good men do)। अच्छे लोग कौन-सा नुकसान करते हैं ? अच्छे लोग तटस्थ हो जाते हैं। अच्छे लोग निरपेक्ष हो जाते है। अच्छे लोग कहते हैं, हमे कोई मतलब नही। अच्छे लोग कहते हैं, यह ससार की बातें हैं, हम सन्यासी हैं। अच्छे लोग बुरे लोगो के लिए जगह खाली करते हैं और फिर बुरे लोग जो करते हैं उससे यह दुनियाँ, जो हमारे सामने है, पैदा होती है। मैं अच्छे आदमियो को आमत्रण देता हूँ कि आप बुरे आदमियो को कही भी खाली जगह देते हैं, तो आपका अपराध है। इस अपराध से प्रत्येक को बचना है और अगर हम बच सकते हैं तो निराश होने का कोई कारण नही है।

क्या भारत को क्रांति की जरूरत है ?

क्या भारत को क्राति की जरूरत है ? यह प्रश्न वैसा ही है जैसे कोई किसी बीमार आदमी के पास खडा होकर पूछे कि क्या बीमार आदमी को औषधि की जरूरत है ? भारत को क्राति की जरूरत ऐसी नही है, जैसी और चीजो की जरूरत होती है, बल्कि भारत बिना क्राति के अब जी भी नही सकेगा। इस क्रांति की जरूरत कोई आज पैदा हो गई है, ऐसा भी नही है। भारत के पूरे इतिहास मे कोई क्राति कभी हुई ही नही। आश्चर्यजनक है यह घटना कि एक सभ्यता कोई पाँच हजार वर्षों से अस्तित्व मे है लेकिन वह क्राति से अपरिचित है। निश्चित ही जो सभ्यता पाँच हजार वर्षों से क्रांति

से अपरिचित है वह करीब-करीब मर चुकी होगी। हम केवल उसके मृत बोझ को ही ढो रहे हैं और हमारी अधिकतम समस्याएँ उस मृत बोझ को ढोने से ही पैदा हुई है। अगर हम मरे हुए लोगों की लाशें इकट्ठी करते चले जायें तो पाँच हजार वर्षों मे उस घर की जो हालत हो जायगी, वही हाल पूरे भारत की हो गई है। अगर एक घर मे मरे हुए लोगों की सारी लाशें इकट्ठी हो जायें तो क्या परिणाम होगा ? उस घर मे आनेवाले नए बच्चो का जीवन अत्यत सकटपूर्ण हो जायगा। लेकिन इस देश की स्थिति और भी बुरी है। घर मे लाशें इकट्ठी हो तो निश्चित ही घर*मरघट हो जायगा, लेकिन अगर किसी घर मे बूढे इकट्ठे हो जायें और पाँच हजार वर्षों तक मरे ही नही, तो उस घर की हालत और भी बदतर हो जायगी। लाशें कुछ परेशानी नही दे सकती है, मरा हुआ आदमी क्या तकलीफ दे सकता है ? अगर पाँच हजार वर्षो के बूढे इकट्ठे हो जायें किसी घर मे तो उस घर के बच्चे पागल ही पैदा होगे। उस घर मे स्वस्थ मस्तिष्क की कोई सभावना नही रह जायगी। और जब कोई सभ्यता क्राति को इनकार कर देती है तो उसकी स्थिति ऐसी ही हो जाती है। जो चीजें कभी की मर जानी चाहिए थी, वे जिंदा बनी रह गई और उनके जिंदा बने रहने के कारण जो पैदा होना चाहिए था, वह अवरुद्ध हो गया है वह पैदा नही हो पाया। बूढे मरते हैं इसलिए बच्चे पैदा होते हैं। जिस दिन बूढ़ो का मरना बद हो जायगा उस दिन बच्चो का पैदा होना भी बद हो जायगा। कठोर लगती है यह बात। निश्चित ही कहने मे अच्छी भी नही मालूम पडती लेकिन जीवन का नियम ऐसा ही है और उसे समझ लेना उचित है। किसी को विदा होना पडता है इसलिए किसी का स्वागत हो पाता है। कोई जाता है इसलिए कोई आ पाता है। लेकिन जो समाज क्राति को इनकार कर देता है वह चीजो के जाने से इनकार कर देता है और तब नई चीजे आनी बद हो जायें तो आश्चर्य नही। पुराने के अति मोह के कारण नए का जन्म अवरुद्ध हो जाता है। भारत मे नए का जन्म न मालूम कितनी सदियो से अवरुद्ध है।

एक छोटी-सी घटना से मैं इस बात को समझाने की कोशिश करूँगा। एक गाँव मे एक बहुत पुराना चर्च था। उस चर्च की दीवालें जीर्ण हो गई थी। उस चर्च के भीतर जाना भी खतरनाक था क्योंकि वह किसी भी क्षण गिर सकता था। हवाएँ चलती थी तो वह चर्च कँपता था। आकाश मे

बादल गरजते थे तो लगता था अब गिरा, अब गिरा। उस चर्च के भीतर प्रार्थना करनेवाले लोगो ने जाने की हिम्मत छोड दी। चर्च की जो कमीटी थी, आखिर वह कमीटी मिली। वह भी चर्च के भीतर नही, चर्च के बाहर। क्योकि चर्च के भीतर खड़ा होना तो मौत को आमन्त्रण देना था। वह कभी भी गिर सकता था। हालांकि वह गिरता भी नही था, अगर वह गिर जाता तो भी ठीक था। लेकिन वह न गिरता था और न यह सभावना मिटती थी कि वह कभी भी गिर सकता है। कमीटी के लोगो ने तय किया कि कुछ न कुछ करना जरूरी है। चर्च इतना पुराना हो गया है कि अब प्रार्थना करने-वाले लोग भी उसमे आते नही। पास से निकलने वाले लोग भी तेजी से गुजरते है कि वह किसी भी क्षण गिर सकता है। क्या करे ?

उन्होने चार प्रस्ताव स्वीकार किए। चर्च की कमीटी ने पहला प्रस्ताव यह स्वीकार किया कि यह चर्च इतना पुराना हो गया है कि अब उसे और आगे जिलाये रखना असभव है। सर्वसम्मति से उन्होने स्वीकार कर लिया कि पुराने चर्च को गिराना अवश्य है। फिर उन्होने दूसरा प्रस्ताव यह किया कि पुराना चर्च गिराना आवश्यक है तो उससे भी ज्यादा आवश्यक यह है कि हम नया चर्च निर्मित करे। एक नया चर्च बनाना आवश्यक है, इसे भी सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लिया गया। तीसरा प्रस्ताव उन्होने यह पास किया कि नया चर्च जो बनेगा उसमे पुराने चर्च की ही ईटे लगेगी। हम पुराने चर्च के दरवाजे ही लगायेग। पुराने चर्च के सामान से और चर्च की उसी जगह पर, और ठीक पुराने चर्च–जैसा ही नया चर्च हमे बनाना है। इसे भी उन्होने सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिया और चौथा प्रस्ताव यह पास किया कि जब तक नया चर्च न बन जाय तब तक पुराना चर्च नही गिराना है।

वह चर्च अब भी खडा है। वह चर्च कभी नही गिरेगा क्योकि जो लोग नए को निर्मित करना चाहते है उन्हें पुराने को विनष्ट करने का साहस जुटाना पडना है। पुराने को विनष्ट किए बिना नए का न कभी निर्माण हुआ है और न हो सकता है। पुराने के विध्वस पर ही नए का जन्म और सृजन होता है। क्राति का अर्थ है इस बात की तैयारी कि हम पुराने को हटाने की हिम्मत जुटाते है। निश्चित ही खतरनाक है यह तैयारी, क्योकि हो सकता है की हम पुराने को गिरा दें और नए को न बना पायें, यह सभावना हमेशा है। यह खतरा हमेशा है कि पुरानी सीढी पैर से छूट जाय और नयी सीढ़ी

पैर के लिए उपलब्ध न हो सके। यह खतरा है कि बूढ़े गुजर जायें और बच्चे न आयें। लेकिन खतरे की स्वीकृति का नाम ही क्रांतिकारी मन है। चूँकि पाँच हजार वर्षों से हमने इस खतरे मे कदम उठाने की हिम्मत नही की इसलिए हम क्रांति से नही गुजर सके। पुराने मे एक सुविधा है, एक सुरक्षा है। नए का पता नही, कैसा होगा, अपरिचित होगा, होगा भी या नही होगा, यह भी संदिग्ध है। हम बना पायँगे या नही बना पायेंगे, यह भी केवल आशा और सपना है। पुराना, वास्तविक है। नया संभावना है, नया होनेवाला भविष्य है। अतीत हो चुका है, वह है, वह कही खडा है। भविष्य अभी कही भी नही है, अंधकार मे है, अज्ञात मे है, हो सकता है, नही भी हो सकता है।

क्रांति की दृष्टि का अर्थ यह है कि हम अनिश्चित के लिए निश्चित को छोडने का साहस जुटाते हैं। हम अज्ञात के लिए ज्ञात से कदम उठा लेने का साहस जुटाते हैं। हम जो नही है उसके लिए उसको मिटाने का साहस जुटाते है जो है। क्रांतिकारी दृष्टि का और क्या अर्थ होता है? क्रांतिकारी दृष्टि का अर्थ है साहस, ज्ञात से अज्ञात मे जाने का, परिचित से अपरिचित मे जाने का। जो था, उससे उसमे जाने का जो हो सकता है और नही भी हो सकता है। लेकिन यही साहस किसी जाति को जवान बनाता है और जो जाति यह साहस खो देती है वह बूढी हो जाती है।

यह जाति बूढी हो चुकी है। यह जाति कभी की बूढी हो चुकी है। अब तो इस बात की स्मृति ही खो गई है कि यह जाति कभी जवान थी भी या नही। यह पुरानापन इतना पुराना हो गया है और इसके पीछे एक ही कारण है कि हम सुरक्षा के अति प्रेमी है। सुरक्षा का जितना ज्यादा मोह होता है, क्रांति की संभावना उतनी ही कम होती है। एक नदी हिमालय से निकलती है। गंगोत्री से गंगा बही चली जाती है। प्रति क्षण उसे पुराना किनारा छोड देना पडता है और प्रति पल पुरानी भूमि छोड देनी पडती है। अनजान, अज्ञात रास्तो पर उस सागर की खोज चलती है जिसका उसे कोई पता नही कि वह कहाँ है? होगा भी या नही होगा? अज्ञात, अनजान रास्ते पर प्रति पल पुराने को छोडते हुए नदी आगे बढती चली जाती है। नदी की जो दृष्टि है, वह क्रांति की जीवन-दृष्टि है। एक सरोवर है, वह पुराने को छोडता नहीं। वह कही आगे नही बढता है। वह घेरा बाँधकर वही डूबकर बैठा जाता है। उसकी कोई गति नही है, वह सुरक्षित है एक अर्थ मे। तट उसका

पुराना है, सदा वही जो कल था, परसो भी था। जो परिचित है, वह वहीं सुरक्षित है। उसे कही जाना नही है। सरिता की जिन्दगी मे कुछ जीवन्तता है, गति है और सागर से मिलन है, कोई उपलब्धि है। सरिता दौड रही है, नए को जान रही है, नई हो रही है रोज, नई धाराएँ मिल रही हैं। नया तट, नई भूमि और एक दिन वह पहुँच जायगी अपने प्रियतम तक, अपने सागर तक। अगर वह रुक जाय तो सागर कभी भी नही हो पायगी, रह जायगी एक छोटी-सी नदी, जिसकी सीमा थी, जिसका तट था। लेकिन तटहीन' असीम और अनत सागर से उसका मिलन नही हो सकता। वह कभी भी सागर नही हो पायगी। एक सरोवर है छोटा-सा, वह भी सरिता हो सकता था लेकिन उसने अनजान और अपरिचित मे जाने की हिम्मत नही जुटाई। उसने उचित माना कि वह बन्द हो जाय, एक जगह ठहर जाय, वही रहे। जीता है वह भी, लेकिन सागर से मिलने को नही, केवल सडने को। जीएगा और सडेगा। उसमे जीने का एक ही अर्थ है कि रोज सडेगा, रोज वाष्पीभूत होगा, कीचड इकट्ठी होगी, कचरा इकट्ठा होगा, डबरा बनेगा लेकिन उसका जीवन कही जाने वाला जीवन नही है। रुक गया, ठहर गया, कोई जीवन्तता उसके भीतर नही है।

भारत हजारो वर्षों से एक सरोवर बन गया है। उसकी गति अवरुद्ध हो गई है। वह ठहर गया है, सुरक्षा मे ठहर गया है, रुक गया है ज्ञात के साथ, जो जाना हुआ है। उससे आगे बढने की उसने हिम्मत खो दी है। उसे अपने घर की चार दीवारी के बाहर नही जाना है। अगर कभी बच्चे खिडकी से बाहर झाँकते हैं तो बूढे उन्हें वापस बुला लेते है कि घर के भीतर आ जाओ, बाहर खतरा है। कभी अगर बच्चे घर की सीढियाँ छलाग लगा लेते है और बाहर के विराट आँगन मे, जहाँ अनन्त तक फैला हुआ आकाश है, जाने की हिम्मत करते है तो बूढे उन्हें डराते है और कहते हैं, घरमे आ जाओ। बाहर वर्षा हो सकती है, धूप है, ताप है, फिर बाहर अज्ञात है, दुश्मन हो सकते हैं, घर आ जाओ। भीतर आ जाओ चार दीवारी मे, सब सुरक्षित है। आराम से यहाँ रहो, खाओ-पियो, सोओ और मरो। बाहर मत जाना। एक सरोवर बना लिया है जीवन को हमने। पर क्राति है जीवत। जीवन रोज बदलाहट है। जितना जीवत है व्यक्तित्व, उतना गतिशील है। गति और जीवन के एक ही अर्थ हैं। क्राति और जीवन के भी एक ही अर्थ है। जीवन मे क्राति की जरूरत

है। अगर इसे हम ठीक से समझें तो इसका अर्थ हुआ जीवन को जीवन की जरूरत है। क्रांति नही तो जीवन कहाँ है ? बदलाहट नही तो जीवन कहाँ है ? सिर्फ मरा हुआ आदमी बदलना बन्द कर देता हैं, फिर वह नही बदलता है, फिर वह ठहर जाता है। फिर उसका आगे कोई भविष्य नही है, फिर है सिर्फ अतीत, जो बीत गया वही। आगे कुछ भी नही है। आगे आ गया अंत। मरा हुआ आदमी बदलाहट बन्द कर देता है। जिन्दा आदमी बदलता है। बच्चे जोर से बदलते है क्योकि ज्यादा जीवित हैं, बूढ़े बदलना बन्द कर देते हैं क्योकि वे मृत्यु के करीब पहुँचने लगे। बदलाहट है जीवन का स्वरूप। अगर हम रोज बदल नही पाते हैं तो निश्चित ही हम रुक जाते है, जीवन के साथ बह नही पाते। हम कही ठहर जाते है और वही ठहराव जडता लाता है, वही ठहराव सडाँध लाता है, वही ठहराव मृत्यु लाता है।

भारत एक बडा मरघट है। वहाँ हम बहुत दिन पहले मर चुके हैं। मर जाने के बाद का अस्तित्व जो है, उसमे हम जीवित है। हम प्रेतात्माओ की भाँति है जो कभी की मर चुकी है लेकिन फिर भी हमे खयाल है कि हम जिन्दा है और जीए चले जा रहे है। क्या कभी हमने यह सोचा कि क्या कारण है इस अवरोध का ? यह क्रांतिविरोधी जीवन कैसे पैदा हो सका, यह जडता मे भरी हुई स्थिति कैसे पैदा हो सकी ? हमने कैसे खो दिया जीवन का स्फुरण ? हमने कैसे खो दिया सागर से मिलने की अनंत यात्रा का पथ ? हमने कैसे खो दिया नवीन और अज्ञात को जानने का साहस ? हम कैसे ठहर गए हैं ? जबतक हम यह नही समझ लें तबतक क्रांति की क्या रूपरेखा बनेगी ?

मैं चार बिन्दुओ पर विचार करना चाहता हूँ जिनकी वजह से भारत एक सरोवर बन गया है, सरिता नही। सरोवर हो जाय तो बहुत अपमानजक है। वह जीवन का अपमान है और परमात्मा का भी। क्योकि परमात्मा के जगत मे प्रतिपल परिवर्तन है। वहाँ कोई चीज ठहरी हुई नही है। एडिंग्टन कहता था कि मैंने सारा भाषाकोश खोजकर देखा। मुझे एक शब्द बिलकुल झूठ मालूम पडा और वह शब्द है,—ठहराव (rest)। एडिंग्टन ने कहा कि ठहराव-जैसी कोई चीज तो जगत मे होती ही नही। ठहराव-जैसी कोई घटना ही नही घटती। सारी चीज परिवर्तन मे है। प्रतिपल परिवर्तन है, प्रवाह है। जीवन का एक बहाव है, वहाँ ठहराव कहाँ ?

एडिंग्टन मर चुका है अन्यथा उससे हम कहते कि आ जाओ भारत और

तुम पाओगे कि ठहराव भी कहीं है। चलता होगा सारा जगत तुम्हारा, लेकिन भारत ठहरा हुआ है और न केवल ठहरा हुआ है बल्कि हम उस ठहराव का गुणगान करते हैं, यशगान करते है और कहते हैं कि यूनान न रहा, बेबिलोन न रहा, सीरिया न रहा, सारी दुनियाँ की सभ्यता आई और गई। मिश्र अब कहाँ है ? लेकिन भारत अब भी है। हम सोचते नही कि इसका मतलब क्या है। इसका मतलब यह है कि जो भी जीवत थे वे बदलते चले गए, उनकी सभ्यताएँ नई होती चली गई, उनके जीवन ने नई दिशाएँ ली, वे नए होते चले गए और जो नही बदले वे अब भी वही है। वे वही खडे हैं जहाँ वे कल भी थे, परसो भी थे, हमेशा थे। वे चलना ही भूल गए। लेकिन किन कारणो से भारत मे यह अवरोध आया, यह आज विचारणीय हो गया है क्योकि भारत मे क्राति अपेक्षित है, जरूरी है।

भारत क्यो ठहर गया ? ठहर जाना इतना जीवनविरोधी है कि जरूर कोई बहुत बडी तरकीब ईजाद की गई होगी तब हम ठहर पाए हैं, नही तो जीवन खुद तोड देता है सारे ठहराव को। हमने जरूर कोई बहुत होशियारी की होगी तब हम रुक पाए, अन्यथा रुकना बहुत कठिन है।

भारत ने कौन-सी तरकीब की जिससे आदमी अतीत मे ठहर गया और भविष्य मे उसकी गति बन्द हो गई। भविष्य के आकाश अनजान और अपरिचित के अपरिचित रह गए। हमने कौन-सी तरकीब की है ? चार बिन्दुओ पर मुझे यह तरकीब दिखायी पडती है।

पहला बिन्दु यह है कि जीवन की गति के लिए आत्यतिक रूप मे परलोकवादी दृष्टि अत्यन्त खतरनाक और घातक है। अगर कोई जाति निरतर परलोक के सबध मे विचार करती हो, मृत्यु के बाद जो है उसके सबध मे विचार करती हो तो जीवन अवरुद्ध हो जायगा, जीवन अर्थहीन हो जायगा, जीवन असार हो जायगा। अगर एक आदमी सदा यह सोचता हो कि मरने के बाद क्या होगा तो जीवन से उसकी दृष्टि छिटक जायगी। अगर एक कौम निरतर मोक्ष के सबध मे चिन्तन करती हो तो जीवन के सबध मे उपेक्षा हो जाना सुनिश्चित है और जीवन अगर उपेक्षित हो जाय तो जीवन की जड कट जाती है। और हम पाँच हजार वर्षो से जीवन की उपेक्षा करके जीने की चेष्टा कर रहे है। यह जीवन जो चारो तरफ दिखायी पडता है—फूलो का, पक्षियो का, मनुष्यों का—यह जीवन जो शरीर से प्रकट होता है यह निन्दित है, यह पाप

है, यह पाप का फल है। आप इसलिए पैदा नही हुए हैं कि परमात्मा आप पर प्रसन्न है, आप इसलिए पैदा हुए हैं कि आपने पाप किए हैं और आपको पाप की सजा दी जा रही है यहाँ भेजकर। जगत एक कारागृह है, जहाँ परमात्मा पापियों को सजा दे रहा है क्योंकि पुण्यात्मा फिर जीवन मे कभी वापस नही लौटते। उनकी आवागमन से मुक्ति हो जाती है। पापी वापस लौट आते है। हमने जो धारण बनाई है जीवन के बाबत, वह ऐसी है जैसी किसी ने कारागृह की धारणा की हो। परमात्मा ने इस पृथ्वी को जैसे चुन रखा हो, पापियो को सजा देता है, तो यहाँ भेजता है। यह जीवन एक पश्चात्ताप है। यह जीवन किसी पाप का पुरस्कार है। यह जीवन सजा है। यह जीवन एक दड है। तो जीवन जब एक दड है तो उसे झेल लेने की जरूरत है, उसको बदलने की क्या जरूरत है? मुझे अगर जेल भेज दिया जाय तो मै जल की दीवालो को सजाऊँगा, तस्वीरे लगाऊँगा, जीवन के फूल खिलाऊँगा? नही, मै चाहूँगा कि जितनी जल्दी कट जाय यह समय अच्छा और मैं जेल के बाहर निकल जाऊँ। मैं जेल की सजावट करूँगा? मै जेल को सुन्दर बनाने की कोशिश करूँगा? पागल हूँ मै जो जेल को सुन्दर बनाऊँ। जेल से मुझे छूटना है, निकल जाना है। जेल से मुझे क्या लेना-देना है?

भारत जीवन के साथ कारागृह-जैसा व्यवहार कर रहा है। हम यह सोच रहे है निरतर कि कैसे जीवन से मुक्त हो जायँ, कैसे आवागमन से छुटकारा हो जाय। मैं अभी भावनगर था। एक छोटी-सी बच्ची ने, जिसकी उम्र मुश्किल से दस या ग्यारह साल की होगी, आकर पूछा कि मुझे एक बात बताइए। जीवन से छुटकारा कैसे हो सकता है, मुक्ति कैसे हो सकती है? मै तो चौककर रह गया। ग्यारह वर्ष की, दस वर्ष की बच्ची यह पूछती है कि जीवन से छुटकारा कैसे हो सकता है! जो अभी जीवन के घाट पर भी पूरी तरह नही आई जिसने अभी जीवन की सरिता मे छलाग नही लगाई, जिसने अभी जीवन के वृक्षो की ऊँचाई नही देखी, जिसने अभी जीवन के पक्षियो को उडते नही जाना, जिसने अभी जीवन के सूरज की रोशनी की तरफ आँखें नही खोली, अभी वह बच्ची जीवन के मदिर की दीवार पर ही खडी है, मदिर मे प्रविष्ट भी नही हुई और वह सीढ़ियो पर ही पूछती है कि जीवन से छुटकारा कैसे हो सकता है? निश्चित ही किसी ने उसके मन को विषाक्त कर दिया है। अभी से जहर डाल दिया है उसके दिमाग मे। अब वह जीवन को जी भी नही पायगी। अब वह

जीवन को सुन्दर कैसे बनायगी ? जिस जीवन से छूटना है उसे हम सुन्दर क्यों बनावे ? जिस जीवन मे छूटना है उसे हम बदलें क्यो ?

इस परलोकवादी चिन्तन ने भारत की सारी क्रातिकारी प्रतिभा को छीन लिया है। यह मै नही कहता कि परलोक नही है, न मैं यह कहता हूँ कि जीवन के बाद और जीवन नही है पर मैं यह कहना चाहता हूँ कि जीवन के बाद जो भी जोवन है वह इसी जीवन से विकसित होता है, वह इसी जीवन का अतिम चरण है और अगर इस जीवन की उपेक्षा होगी तो उस जीवन को भी हम सँभाल नही सकते। उसे भी नष्ट कर देगे। वह इस जीवन पर ही खडा होगा। वह इसकी ही निष्पत्ति है। अगर कल है कोई, तो मेरे आज पर खडा होगा और अगर मेरा आज उपेक्षित है तो मेरा कल निर्मित होने वाला नही। कल के निर्माण के लिए भी यह जरूरी है कि आज पर मेरा ध्यान हो। कल की फिक्र छोड देनी चाहिए, फिक्र करनी है आज की। अगर मेरा आज ठीक निर्मित हुआ और आज की जिन्दगी मेरी आनद की जिन्दगी हुई तो कल मै फिर एक नए आनन्द से भरे दिवस मे जागूगा क्योकि मैने आज आनद मे जिया है। कल मेरी आँखे फिर एक नए आनद से भरे हुए जगत मे खुलेगी लेकिन अगर आज मैने नष्ट किया है तो कल भी मेरा नष्ट हो रहा है। क्योकि कल आज की ही निष्पत्ति है, आज का ही विकास है। इस जीवन की हमने उपेक्षा की है और इस भाँति हम परलोकवादी तो रहे है लेकिन परलोक भी हमने सुधारे हो, ऐसा मुझे नही मालूम पडता है। जो इस लोक को नही सुधार सकते, ऐसे कमजोर लोग परलोक को सुधार सकेंगे, इसकी उम्मीद नही की जा सकती।

तो मेरी दृष्टि मे परलोकवादी चिन्तन से छुटकारा चाहिए। वह अत्यतिक बल, परलोक पर नही, इस जीवन पर जरूरी है। यह जो जीवन हमे उपलब्ध हुआ है उसे हम सुन्दर बना सकें, इस जीवन का रस उपभोग कर सके, इस जीवन से आनद अवशोषित कर सके। यह जो अवसर मिला है जीवन का यह ऐसे ही न खो जाय। इस अवसर को भी हम जान सके, जी सके।

रवीन्द्रनाथ मरने के करीब थे तो किसी मित्र ने कहा, 'अब तुम परमात्मा से प्रार्थना कर लो कि दुबारा इस जीवन मे न भेजे।' उन्होने आँखे खोल दी, और कहा—"क्या कहते हो ? मैं परमात्मा से ऐसा कहूँ कि दोबारा मुझे इस जीवन मे न भेजो ? इससे बडी परमात्मा की और निन्दा क्या होगी क्योकि

उसने मुझे भेजा था ? मैं उससे ज्यादा समझदार हूँ कि कहूँ कि मुझे न भेजो ? नहीं, मेरे प्राणों के प्राण में एक ही गूँज है ! एक ही प्रार्थना है कि हे प्रभु ! तेरा जीवन तो बहुत सुन्दर था। अगर तूने मुझे योग्य पाया हो तो बार-बार वापस भेज देना और अगर तेरा जीवन मुझे सुन्दर नही मालूम पड़ा हो तो जिम्मा मेरा है। मेरे देखने के ढग मे भूल रही होगी। मेरे जीने के ढग गलत रहे होगे। मैं जीवन की कला नही जानता रहा होऊँगा। अगर तूने योग्य पाया हो तो वापस मुझे भेज देना। अगर मेरी पात्रता ठीक उतरी हो, अगर मैं तेरी कसौटी पर कस गया होऊँ तो मुझे बार-बार भेजना। तेरा जीवन बहुत सुन्दर है। तेरा चाँद सुन्दर था, तेरा सूरज सुन्दर था, तेरे लोग सुन्दर थे, सब सुन्दर था। अगर भूल कही हुई होगी तो मुझसे ही हुई होगी।

ऐसी जीवनदृष्टि चाहिए, जीवन से प्रेम करनेवाली। जीवन-विरोधी नही, जीवन के पक्ष मे। जीवन का स्वीकार चाहिए, अस्वीकार नही। लेकिन भारत कर रहा है जीवन को अस्वीकार। उस अस्वीकार का फल है कि हमने सैकड़ो वर्षों की गुलामी भोगी। उस अस्वीकार का फल है कि पृथ्वी पर सबसे ज्यादा धन-धान्यपूर्ण होते हुए भी हम सबसे ज्यादा दीन और दरिद्र हैं। उस अस्वीकार का फल है कि इतनी बडी विराट शक्ति की सम्पदा पास होते हुए भी हमसे ज्यादा शक्तिहीन और नपुंसक आज पृथ्वी पर कोई भी नही है। उस अस्वीकार का फल यह है, और इसका जिम्मा उन सारे लोगो के ऊपर है जिन्होने जीवन की अस्वीकृति हमे सिखाई, चाहे वे कितने ही बडे ऋषि हो, चाहे कितने ही बडे मुनि हो। लेकिन जिन्होंने हमें अस्वीकृति सिखाई है उन्होंने हमे आत्मघात भी सिखाया है, यह जान लेना। और जितनी जल्दी हम यह जान लें उतना अच्छा है।

एक रूसी यात्री ने भारत के सबध मे एक किताब लिखी है। मैं उस किताब को पढ रहा था तो मैंने समझा कि कोई मुद्रण की भूल हो गई होगी। उसमे उसने लिखा है कि भारत एक अमीर देश है जिसमे गरीब लोग रहते है। मैंने समझा कि जरूर कोई भूल हो गई, लेकिन फिर सोचने लगा तो खयाल आया कि बात तो शायद ठीक ही है। भारत गरीब नही है, लेकिन भारत के रहनेवाले दीन-हीन और गरीब हैं। उनकी दृष्टि ऐसी है जो उन्हे गरीब बना ही देगी। उनकी दृष्टि ऐसी है कि वे दीन-हीन हो ही जायँगे। अगर यही देश किसी और जीवन्त कौम को मिलता तो आज पृथ्वी पर इस देश से ज्यादा

धनी, इस देश से ज्यादा समर्थ और सुखी कोई हो सकता था ? हमने क्या किया इस देश के साथ ? जीवन के प्रति जो विरोधी है वे समृद्ध कैसे हो सकेंगे ? वे जीवन की सम्पदा की खोज ही नही करते । वे तो जीवन को ढोते है बोझ की तरह । वे जीवन को हंसकर स्वीकार नही करते, रोते हुए झेलते हैं । हमारे जो साधु-सत विचार हमे देते हैं उनकी शक्लें जरा आप देखें, वे सब रोते हुए, उदास और सूखे हुए लोग मालूम पडते है । ऐसे मालूम पडते हैं जैसे असमय मे कुँभला गया कोई फूल हो ! हँसता हुआ सत हमने पैदा ही नही किया । हँसते हुए आदमी हमने पैदा नहीं किए । जैसे रोते हुए दिखायी पडना भी कोई बहुत बडी आध्यात्मिक योग्यता है ! उदास और सूखा हुआ व्यक्तित्व हमे आध्यात्मिक मालूम पडता है ।

हिन्दुस्तान मे कुछ ऐसा समझा जाता है कि स्वस्थ होना गैरआध्यात्मिक होना है । यहाँ ऐसे साधुओ की परम्परा है जो कभी स्नान नही करते क्योकि वे कहते है कि स्नान करना शरीर को सजाना है । स्नान करना शरीर की सेवा करनी है । और शरीर ? शरीर है पाप का घर, शरीर से होना है मुक्त । यहाँ ऐसे ग्रन्थ है जिनमे लिखा है कि साधु के शरीर पर अगर मैल जम जाय तो उसे हाथ से निकालने की मनाही है । अगर वह निकालता है तो वह शरीर-वादी (materialist) है । उसे लगे हुए मैल को निकालना नही है क्योकि शरीर तो मैल का घर है, तुम्हारे निकालने से क्या होगा ? शरीर को सुन्दर बनाने की चेष्टा क्यो ? मजबूरी है कि शरीर को झेलना पड रहा है ।

जिनकी दृष्टि ऐसी होगी वे जीवन को कैसे सुन्दर बना पायेंगें, जीवन को कैसे गति दे पायँगे ? वे सगीत के नए-नए रूपो पर जीवन को कैसे गतिमान करेंगे ? कैसे नए शिखर खोजेगे जहाँ जीवन और ऊँचा हो जाय, जहाँ जीवन और प्रीतिकर हो जाय, जहाँ जीवन और प्रेम बन जाय, प्रकाश बन जाय ? नही, वे रुक जायँगे, ठहर जायँगे । जब जीवन ऐसा है, असार है, निन्दित है, छोड देने योग्य है तो उसे बदलने की क्या जरूरत है ? ढो लो बोझ को किसी तरह, आयगी मौत और छुटकारा हो जायगा । किसी तरह बोझ को राम-राम कहकर सह लेना है । उसे बदलने का कोई सवाल नही है । जबतक यहाँ यह दृष्टि है भारत कभी क्रातिकारी नही हो सकता ।

दूसरा बिन्दु यह है कि भारत की सारी चिन्तना, सारी विचारणा, सारी प्रतिभा अतीतोन्मुखी है। अतीतोन्मुखी देश कभी भी गतिमान नही होता ।

गतिमान वे होते हैं जो भविष्योन्मुखी हैं, जो आगे देख रहे हैं—आगे जहाँ अभी कुहासा छाया हुआ है और कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। आगे जहाँ अभी सब शून्य है और सब निर्मित करना है। हम देख रहे हैं पीछे जहाँ सब निर्मित हो चुका है और हमें कुछ भी करने को शेष नहीं रहा है। अतीत में हम क्या कर सकते हैं ? अतीत वह है जो हो चुका, जो बीत चुका, जो पूरा हो चुका। अतीत के फल पक गए। अब उनमे कुछ होना नहीं है। अब हम लाख उपाय करके अतीत के साथ कुछ भी नही कर सकते। अतीत के साथ सबधित भी नही हो सकते। अतीत जा चुका, वह मर चुका, बद्ध हो चुका। अब उसमें करने के लिए कुछ भी शेष नही रहा है, लेकिन हम अतीत की तरफ ही देख रहे है जो मृत और स्थिर हो गया है। ऐसी जाति की चेतना भी जो अतीत को देखती रहेगी, धीरे-धीरे उतनी ही स्थिर और मृत हो जायगी तो आश्चर्य नही। क्योकि जो हम देखते हैं और जिसे हम आत्मसात् करते हैं और जो हमारे प्राणो के दर्पण मे छवि बनाता है, धीरे-धीरे हमारे प्राण भी उसी रूप मे ढल जाते हैं और निर्मित हो जाते हैं।

भविष्य की तरफ देखना उस अनजान और अज्ञात की तरफ देखना है, जो अभी हुआ नही, होने वाला है, जिसके साथ अभी कुछ किया जा सकता है। अभी हजार विकल्प हैं जिनमे से एक चुनना है, जिनमे से हम कोई भी चुन सकते हैं। हमे स्वतन्त्रता है कि हम पूर्व जायें कि पश्चिम, हम क्या करें और क्या न करें। अभी भविष्य को बनाना है इसलिए जो भविष्य की तरफ देखते हैं वे स्रष्टा हो जाते है, वे निर्माता हो जाते हैं। और जो अतीत की तरफ देखते हैं वे केवल द्रष्टा रह जाते हैं, क्योकि अतीत को सिर्फ देखा जा सकता है और कुछ भी नही किया जा सकता। वे केवल दर्शक रह जाते हैं, तमाशबीन, जो देख रहे है अतीत के लम्बे इतिहास को कि राम हुए, कृष्ण हुए, महावीर हुए, बुद्ध हुए—और देखते चले जा रहे हैं और देखते चले जा रहे हैं। अतीत को देखने वाली कौम एक तमाशबीन कौम हो जाती है, भविष्य की तरफ देखने वाली कौम एक सर्जक कौम हो जाती है। तमाशबीन कैसे क्रातिकारी हो सकते है ? स्रष्टा ही हो सकते हैं क्रातिकारी। हमारी भविष्य की सारी चेतना अतीत मे थिर हो गई है, एक रुग्ण घाव बन गया है और हम वही लौटकर देखते हैं। हमारी स्थिति वैसी है जैसे कोई कार मे पीछे लाइट लगा ले। गाडी आगे चली और प्रकाश पीछे छूट गए रास्ते पर पडे। जिन्दगी की गाडी आगे ही

चल सकती है, पीछे जाने का कोई मार्ग नही है। जिन रास्तो को हम पारकर आए, वे गिर गए और समाप्त हो गए, शून्य हो गए। जिस क्षण से गुजर गए हैं वे नही हैं, उनमे वापस नही जाया जा सकता है, उनमे लौटने का कोई उपाय नही। जाना तो आगे ही पडेगा, यह मजबूरी है, उससे विपरीत जाना असम्भव है।

भारत ऐसे ही चल रहा है। हम देख रहे हैं पीछे और चल रहे है आगे। तो रोज गिरते हैं, रोज गिरते जाते है और जितने ही गिरते है उतने ही घबराकर और पीछे की तरफ देखने लगते हैं और कहते हैं—देखो, राम कितने अच्छे थे, वे कभी नही गिरते थे। देखो, रामराज्य कितना अच्छा था। रामराज्य चाहिए, सतयुग चाहिए, जो बीत गया स्वर्णयुग, वह चाहिए, क्योकि वे लोग कभी नही गिरते थे और हम गिर रहे है। इसका मतलब हुआ कि हम भ्रष्ट हो गए, हम पतित हो गए, इसलिए हम गिर रहे है। मैं आपसे कहना चाहता हूँ कि हम इसलिए नही गिर गए है कि हम भ्रष्ट और पतित हो गए, बल्कि हम इसलिए गिर गए हैं कि हम पीछे की तरफ देख रहे हैं। और अगर राम नही गिरे थे तो वे इस बात का सुबूत हैं कि वे आगे की तरफ देखने वाले लोग रहे होगे। हम पीछे की तरफ देख रहे हैं, इसलिए गिर रहे है। पीछे की तरफ देखने वाला कोई भी गिरेगा। जो भविष्य की तरफ देखता है वह वर्त्तमान को भी देखने लगता है क्योकि भविष्य प्रतिपल वर्त्तमान बन रहा हैं। जो अतीत की तरफ देखता है वह वर्त्तमान को भूल जाता है। जब वर्त्तमान अतीत बन जाता है तभी वह उसको देखता है। वर्त्तमान वह बिन्दु है जहाँ से भविष्य अतीत बनता है। अगर आप भविष्योन्मुखी है तो आप भविष्य को देखेंगे और बनते हुए भविष्य को देखेंगे जो वर्त्तमान मे आ रहा है। अगर आप अतीतोन्मुखी हैं तो आप अतीत को देखेगे और उस वर्त्तमान को देखेंगे जो अतीत बन गया है। लेकिन जो अतीत बन गया है वह हाथ के बाहर हो गया है। वे पक्षी उड चुके, अब कोई उपाय नही रहा। अब हम कुछ भी नही कर सकते। इसलिए भारत के मन मे एक भाव पैदा हो गया कि कुछ भी नही किया जा सकता। एक भाग्यवादी रुख पैदा हो गया है कि कुछ भी नहीं किया जा सकता। जो हो गया, वह हो गया, अब कुछ उपाय नही है। धीरे-धीरे यह बात हमारे प्राणो मे इतनी गहरी बैठ गई है कि कुछ भी नहीं हो सकता। जो भविष्य को देखेगा उसे लगेगा कि सब कुछ हो सकता है,

अभी कुछ भी हो नहीं गया है, अभी सब होने को है। अभी हाथ में है बात। अभी पैर उठाना है मुझे। मैं निर्णायक हूँ कि किस रास्ते पर पैर उठाऊँ। हजार रास्ते खुलते है और चुनाव मेरे हाथ मे है। मुझे तय करना है कि मैं किस रास्ते पर जाऊँ।

भविष्योन्मुखी व्यक्ति भाग्यवादी नही होता, वह पुरुषार्थवादी होता है। अतीतोन्मुखी भाग्यवादी हो जाता है। भाग्यवाद में क्रांति के लिए कोई संभावना नही। पुरुषार्थवादी दृष्टि हो तो क्रांति की संभावना है। इसलिए दूसरा सूत्र आपसे कहना चाहता हूँ कि जबतक हम अतीत से घिरे और बँधे हैं तबतक हम क्रांति के लिए मुक्त नही हो सकेंगे। जो जा चुका उस अतीत को जाने दें, अब उसे रोक कर मत पकडे। आपके रोकने से वह रुकेगा नही। वह तो जा चुका, वह बीत चुका, उसे बीत जाने दें। आपको जाना है आगे।

जिब्रान ने एक छोटी-सी बात कही है। किसी ने उससे पूछा कि हम अपने बच्चे को प्रेम करें या न करें ? तो जिब्रान ने कहा कि तुम अपने बच्चे को प्रेम करना, लेकिन कृपा करके अपना ज्ञान उन्हें मत देना। क्योंकि बच्चे उस जगत को जानेंगे जो तुमने नही जाना और तुमने जो जाना है उसको बच्चे अब कभी भी नही जानेंगे, वह जा चुका। तो उन्हें उससे मत बाँध लेना जो तुम्हारा ज्ञान है। अपना प्रेम देना और उन्हें मुक्त करना और उन्हें समर्थ बनाना कि वे अतीत से मुक्त हो सकें ताकि भविष्य का साक्षात्कार कर सकें।

और हम क्या कर रहे है हजारो वर्षों मे ? हम यह कर रहे हैं कि प्रेम हम चाहे बिलकुल न दे पाये लेकिन ज्ञान पूरी तरह दे देना है। प्रेम की झझट मे पडने की कोई जरूरत नही है लेकिन ज्ञान पूरा का पूरा दे देना है, रत्ती-रत्ती दे देना है। जो जाना है पिछली पीढी ने उसको पूरी तरह थोप देना है बच्चे के मन पर। उसके मन को ऐसा बना देना है कि वह कभी भी भविष्य के लिए ताजा और नया न रह सके और उसके पास की सब ताजगी, सब नयापन, नए के अनुभव की क्षमता और साहस—सब खो जाय।

शायद आपने सुना हो, लाओत्से नाम का एक आदमी चीन मे हुआ। लोग कहते है वह बूढा ही पैदा हुआ, अस्सी साल का ही पैदा हुआ। कहानी ऐसी है कि लाओत्से जब माँ के पेट मे था और नौ महीने पूरे हुए और पैदा होने का वक्त आया तो उसे बहुत डर लगा क्योंकि माँ का पेट परिचित था, नौ महीने तक वह उसमे बडी शांति से रहा था। सब सुविधा थी। पता नही

माँ के पेट के बाहर जो दुनियाँ हो वह कैसी हो ? मित्र हो कि शत्रु ? भोजन मिले न मिले ? लाओत्से डर गया और उसने पैदा होने से इन्कार कर दिया और वह ८० साल तक माँ के पेट मे ही बना रहा इस डर से कि जिन्दगी पता नही कैसी हो ! वह बूढा हो गया और उसके बाल सफेद हो गए। जब माँ मरने के करीब आई तो लाओत्से को पैदा होना पडा। फिर कोई उपाय न था। तो लाओत्से पैदा हुआ लेकिन सफेद दाढी वाला आदमी, बूढ़ा आदमी !

कहानी तो कहानी है। ऐसा हुआ तो नही होगा, लेकिन चेतना के तल पर ऐसी घटनाएँ घटती हैं। भारत मे कोई बच्चा, बच्चा पैदा नही होता। पैदा होते ही बूढा हो जाता है। उसे बूढा कर दिया जाता है, उसके बचपन को तोड दिया जाता है। उसे बुढापे की गभीरता दे दी जाती है, उसे बूढेपन के खयाल दे दिए जाते हैं। उसे बूढे का भय दे दिया जाता है, उसे बूढे की सुरक्षा दे दी जाती है। और फिर वह कभी न बच्चा होता है, न जवान होता है, वह करीब-करीब बूढा ही रहता है। यह जो बूढापा है, यह अतीत की तरफ देखने से पैदा हुआ है, भविष्य की तरफ हम देखेगे तो फिर हम बच्चे की तरह हो जायँगे। इस जाति की चेतना को फिर बालपन की जरूरत है, फिर बच्चे-जैसे हो जाने की जरूरत है। क्राति का यह अर्थ है कि हर पीढी फिर नई हो जाय और हर पीढी फिर जीवन का नया साक्षात् करने को निकल पडे—नई खोज मे, नई यात्रा मे, अज्ञात मे, खतरे को मोल लेने लगे और खतरे मे जीने लगे।

नीत्से कहता था, मैंने जीवन मे एक ही सूत्र पाया। (जिन्हे जीवित रहना है और जीवन का पूरी तरह अर्थ जानना है उनके लिए एक ही सूत्र है—खतरे मे जियो (live dangerously) ! एक फूल वह भी है जो आपके घर मे पैदा होता है, आप घर के कोने मे एक फूल लगा लेते हैं। एक फूल वह भी है जो पहाड के दरार मे पैदा होता है। आकाश के बादल उसे टक्कर मारते है और हवाओ के तूफान उसकी जडो को हिलाते हैं और वह एकात नीरव पहाड के कोने पर खडा होता है। वह प्रति पल मरने को तैयार है और उस प्रति पल मरने की तैयारी मे ही जीवन का रस है और आनन्द है। घर के कोने मे पैदा हुए फूलो को कुछ भी पता नही है कि पहाडो के किनारो पर जो फूल खिलते हैं उनका आनन्द क्या है, उनकी

खुशी क्या है, वे क्या जान पाते हैं ? घरों की सुरक्षा में बैठे हुए लोगों को कुछ भी पता नही है उन लोगों का, जो गौरीशंकर के शिखरों पर चढते हैं, जो प्रशांत समुद्र की गहराइयो को नापते हैं, जो उत्ताल तरगों मे जीवन और मौत से खेलते हैं। उन्हें कुछ भी पता नही कि जीवन के और भी अर्थ हैं, जीवन की और भी प्रेरणाएँ हैं, जीवन की और भी धन्यताएँ हैं। उन्हें कुछ भी पता नही। उन्हें पता हो भी कैसे सकता है ?

अकबर के दरबार मे एक दिन दो जवान राजपूत आ गए थे। नगी तलवारें उनके हाथ मे थी। दोनो जवान है, दोनो जुडवाँ भाई हैं। दोनो की सूरतें देखने-जैसी हैं। उनकी चमक, उनकी उत्फुल्ल जिन्दगी। वे अकबर के सामने खडे हो गए है। अकबर ने कहा, "तुम क्या चाहते हो ?" उन्होने कहा, "हम नौकरी की तलाश मे निकले हैं। हम बहादुर आदमी हैं, कोई बहादुरी की नौकरी चाहते हैं।" अकबर ने पूछा, "बहादुरी का कोई प्रमाणपत्र लाये हो ?" उन दोनो की आँखो मे जैसे आग चमक गई। उन्होने कहा, "आप पागल मालूम होते हैं। दूसरे के प्रमाण पत्र वे ले जाते है जो कायर हैं। हम किसका लायँगे ? बहादुरी का प्रमाण पत्र नही है, प्रमाण दे सकते हैं।" अकबर ने कहा, "दे दो, प्रमाण पत्र क्या है ?" और एक क्षण मे दो तलवारें चमकी और एक दूसरे की छाती मे घुस गईं। वे दोनो जवान नीचे पडे थे और खून के फव्वारे छूट रहे थे। उनके चेहरे कितने प्यारे थे ! अकबर तो एकदम घबरा गया। उसने तो यह सोचा भी नही था कि यह हो जायगा। उसने अपने राजपूत सेनापतियो को बुलाया और कहा कि बडी भूल हो गई। यह क्या हुआ ? उन सेनापतियो ने कहा, "आपको पता नही, राजपूत से बहादुरी का प्रमाण पूछते है ? राजपूत के पास बहादुरी का इसके सिवा क्या प्रमाण है कि वह प्रतिपल मौत के साथ जूझने को तैयार है ? और बहादुरी का प्रमाण हो भी क्या सकता है ? जिन्दगी का इसके सिवा और क्या प्रमाण है कि वह मौत से लडने को हर घडी राजी है ?"

भारत मर गया है। उसने मौत से लडने की तैयारी छोड दी है। तीसरी बात आपसे कहना चाहता हूँ—भारत ने मौत से लडने की तैयारी छोड दी है हजारो साल से और इसलिए जिन्दगी कुँभला गई और मर गई। जिन्दगी जीतती है मौत की चुनौती मे, जहाँ मौत प्रतिपल है वहाँ जिन्दगी विकसित होती है। मौत की चुनौती मे ही जिन्दगी का जन्म है। लेकिन हमने बहुत

पहले मौत से लड़ना छोड़ दिया और बड़ी तरकीब से लड़ना छोड़ा। हम बड़े चालाक लोग हैं। हमसे बुद्धिमत्ता और होशियारी मे दुनिया मे शायद कोई न जीते। हमे मौत का इतना डर है कि हमने यह सिद्धात बना लिया कि आत्मा अमर है, आत्मा मरती नही। इसमे आप यह न सोचें कि हमको पता चल गया है कि आत्मा अमर है। हमे कुछ पता नही है, हम मौत से इतने भयभीत है कि हम कोई सांत्वना चाहते है कि कोई सिद्ध कर दे कि आत्मा अमर है तो मौत का डर हमारे दिमाग से मिट जाय। यहाँ ये दोनो बातें एक साथ घटित हो गई। हमसे ज्यादा मौत से डरने वाला कोई है आज पृथ्वी पर? और हम हैं आत्मा की अमरता को माननेवाले लोग। इन दोनो मे आपको कोई सगति दीखती है? जो आत्मा को अमर मानते थे उनके लिए मौत तो खत्म हो गई थी, वे तो इस सारी दुनिया मे मौत को खोजते हुए घूम सकते थे। वे आमत्रण दे सकते थे कि मौत आ, लेकिन हम कही नही गए घर की दीवालो को छोडकर। हम हमेशा डरे हुए रहे है। हमारे प्राणो के गहरे से गहरे मे मौत का भय है। उस भय को मिटाने के लिए हम यह दोहराते है कि आत्मा अमर है, आत्मा अमर है। मैं यह नही कह रहा हूँ कि आत्मा अमर नही है, लेकिन आत्मा का पता उन्हे चलता है जो मौत से जूझते है और मौत से गुजरते हैं। घर मे बैठकर और किताबो से सूत्र निकालकर कि आत्मा अमर है, आत्मा अमर है, इसका जाप करने से आत्मा की अमरता का पता नही चलता। युद्ध के मैदानो मे शायद किसी-किसी को आत्मा की अमरता का पता चल जाता हो लेकिन घर के पूजागृहो मे दरवाजे बन्द करके, धूप-दीप जलाकर जो पाठ करते है कि आत्मा अमर है उनको कभी भी पता नही चलता। आत्मा की अमरता का अनुभव वही होता है जहाँ मौत चारो तरफ खडी हो। स्कूल मे अध्यापक बच्चे को पढाता है, तो सफेद दीवाल पर नही लिखता सफेद खल्ली से, क्योंकि सफेद दीवाल पर खल्ली मे लिखा हुआ कुछ भी दिखाई नही पडेगा। वह लिखता है काले तख्ते पर। क्यो? क्योंकि काले तख्ते पर ही सफेद रेखाएँ उभरती है और दिखाई पडती है। मौत से जूझने मे ही अमरता का पहला अनुभव होता है। मौत की पृष्ठभूमि मे ही अमरता के पहली बार दर्शन होते है। मौत की काली दीवारो मे ही अमरता की शुभ्र रेखाएँ चमकती हैं और पता चलता है कि मृत्यु नही है। लेकिन हम मृत्यु नहीं हैं, मृत्यु नहीं हैं, अमर हैं, अमर है—इसका जाप कर रहे हैं और

पूरे वक्त डर रहे हैं और उसी डर की वजह से जाप कर रहे हैं।

जो भीतर कायर बैठा है डरा हुआ आदमी, उसको पता चलता है कि रात अँधेरी है, मै अकेला चला जाता हूँ। इन्हे—जो कह रहे हैं आत्मा अमर है, आत्मा अमर है, आत्मा की अमरता का कोई पता नही है। ये डर को छिपाने की कोशिश कर रहे है, ये डर को दबाने की कोशिश कर रहे है। आत्मा की अमरता के सिद्धान्त मे ये छिपा लेना चाहते हैं उस भय को, जो जीवन के प्रतिपल मौत मे होने से प्रकट होता हे। लेकिन जो ऐसा मान लेंगे कि आत्मा अमर है, वे जिन्दगी का जो प्रतिपल बदलता हुआ रूप है, उसके रस को खो देगे। जिन्दगी तो प्रतिपल मृत्यु के किनारे खडी है, किसी भी क्षण मौत हो सकती है। एक पत्थर का टुकडा है, वह पडा हुआ है सैकडो वर्षों से आँगन के किनारे, और एक फूल आज सुबह ही खिला है। फूल और पत्थर मे कौन है प्रीतिकर आपको ? कौन खीच लेता है प्राणो को ? पत्थर नही, फूल। क्योंकि फूल प्रतिक्षण मृत्यु से जूझ रहा है, साँझ तक मौत आ जायगी और फूल का जीवन विलीन हो जायगा। पत्थर फिर भी पडा रहेगा। फूल का सौन्दर्य कहाँ से आ रहा है ? फूल का सौन्दर्य आ रहा है, पृष्ठभूमि मे खडी हुई मौत से उसके जूझने से। कितनी अद्भुत है यह दुनिया। एक छोटा-सा फूल भी चौबीस घटे मौत से लड पाता है। (छोटा-सा फूल, नाजुक और मौत से जूझ लेता है चौबीस घटे! उसी जूझने मे उसे पता चलता है कि मिट जायगी देह, गिर जायँगी पखुडियाँ, लेकिन मैं फिर भी रहूँगा क्योकि मौत मुझे कैसे मिटा सकती है ? उस जूझने से ही यह बल, उस जूझने से ही यह शक्ति और यह अनुभव आता है कि मौत मुझे नही मिटा सकती। गिर जायँगी पखुडियाँ, गिर जायगी देह, लेकिन मैं ? मैं फिर भी हूँ और फिर भी रहूँगा।)

मै आपसे कहना चाहता हूँ कि भारत को मौत का साक्षात्कार करना है। छोड देने है सिद्धान्त, अमर जिन्दगी को देखनी है और जिन्दगी जरूर वही है जहाँ मौत है। उससे जूझना है, लडना है। बीमारियो से लडना है, गरीबी से लडना है। आप गौर करें जरा, मौत से जो कौम नही लडती वह गरीबी से कैसे लडेगी ? बीमारी से कैसे लडेगी ? गरीबी और बीमारी मौत की शक्ले हैं। हम बडे होशियार लोग है। हम तो गरीब को कहते है, दरिद्रनारायण, तो नारायण को कैसे मिटायेंगे ? प्लेग नारायण, मलेरिया

नारायण, तो फिर उसको मिटायेंगे कैसे ? तो उनकी पूजा करो। वैसे देवी-देवताओ की कमी नही है यहाँ, और देवी-देवता बिठा लो। दरिद्रता है महामारी, गरीबी है बीमारी, गरीबी है मौत। उनको मिटा देना है, लेकिन जिन लोगो ने मौत को ही स्वीकार कर लिया है आत्मा की अमरता की बातें करके, गरीबी को भी स्वीकार कर लिया है बीमारी को भी स्वीकार कर लिया है, उन्होने लडाई छोड दी क्योकि लडाई मे डर है, लडाई मे मर जाने का भय है। कौन लडे, कौन जूझे ? अपने घर मे बैठो, चुपचाप रहो, शाति से जियो, जो होता है होने दो। मुल्क गुलाम बने, बनने दो, बीमारी आवे आने दो, गरीबी आवे आने दो, यह सब भाग्य है, लडने मे कुछ भी नही होगा ! अपने को बचा लो उतना ही काफी है। हम अपने को भी कहाँ बचा पाए ? वह सारी चिन्तना भ्रान्त सिद्ध हुई। लेकिन अब तक वह भ्रम हमारा टूटा नही है। मौत के जितने रूप है हमे उन सबसे लडाई लडनी है और अमरता के सिद्धात मे छिपकर बैठ नही जाना है। निश्चित ही जिन्दगी अमर है लेकिन उनको ही पता चलती है जो मौत से जूझते है और सघर्ष करते है।

चौथी बात आपसे कहना चाहता हूँ कि इस देश मे हमने अब तक आनन्द के लिए, खुशी के लिए, रस के लिए कोई उद्भावना खडी नही की। हमारा सारा चिन्तन दुखवादी है, निराशावादी है। इसके पहले कि कोई जिन्दगी मे चले, निराशा उसे पकड लेती है, घनघोर अधकार उसे घेर लेता है। पहले से ही हम जान लेते है कि जीत असम्भव है। जीवन दुख है, जन्म दुख है, जवानी दुख है, प्रेम दुख है, सुख यहाँ कही भी नही है।

मैने सुना है, एक दिन स्वर्ग के रेस्तराँ मे—वहाँ भी रेस्तराँ तो होगे ही—बुद्ध कफ्यूशियस और लाओत्से का मिलना हुआ। तीनो बैठकर गप-शप कर रहे है और तभी एक अप्सरा हाथ मे एक सुराही लिये हुए नाचती हुई आई और उसने कहा, "आप लोग जीवन का रस पियेगे ?" जीवन का रस ? बुद्ध ने तो सुनते ही आँखें बन्द कर ली, और कहा, "जीवन दुख है, असार है, कोई रस नही है जीवन मे।" लेकिन कफ्यूशियस आधी आँख खोलकर देखने लगा। उसने कहा, "जीवन का रस ? लेकिन बिना पिये मैं कैसे कुछ कहूँ ? थोडा चखना जरूरी है।" कफ्यूशियस हमेशा मध्यमार्गी था। आधी आँख खोलता था, आधी आँख बन्द रखता था। 'गोल्डेन मीन' का सिद्धान्त उसने ही विकसित

लिया दुनिया मे कि हमेशा बीच मे रहो, न इस तरफ, न उस तरफ। बुद्ध तो एकदम आँख ही बन्द कर लिये, कि नहीं, दुख है जीवन। उसमे क्या रहा ? कडवा और तिक्त। नही ! उसे नही पीना है। लेकिन लाओत्से पूरी आँख खोलकर उस अप्सरा को देखने लगा, वह बहुत सुन्दर थी। उसकी सुराही को देखने लगा उसपर बडे बेलबूटे खुदे थे। जरूर उसके भीतर कुछ रस होगा और वह खडा होकर नाचने लगा। कफ्यूशियस ने एक प्याली में थोडा-सा रस लिया और चखा और कहा, "नहीं, न बेस्वाद है, न स्वादपूर्ण है, मध्य मे है। वे भी ठीक हैं जो पीते है, वे भी ठीक है जो नही पीते हैं क्योंकि कोई खास बात नही।" लेकिन लाओत्से ने तो नाचते हुए पूरी सुराही हाथ मे ले ली और कहा कि सिर्फ स्वाद चखने से क्या पता चलता है जबतक कि पूरा न पी जाओ, और वह पूरी सुराही पी गया। बुद्ध आँख बन्द किए बैठे रहे, कफ्यूशियस आधी आँखे खोले रहा और लाओत्से नाचने लगा और गीत गाने लगा और कहने लगा—नासमझ हो तुम, जिन्दगी पूरी पीते तभी पता चल सकता कि क्या है। और अब मैने पूरी पी ली है लेकिन मैं कहने मे असमर्थ हूँ क्योंकि जीवन के स्वाद को चखा तो जा सकता है लेकिन कहा नही जा सकता।

भारत ने जीवन के स्वाद को चखा ही नही। हमने आनद की उद्भावना नही की, हमने दुख की उद्भावना की। हमने प्रकाश को अवतीर्ण करने की चेष्टा नही की, अधकार को स्वीकार किया। हमने कोई विधायक दृष्टि-कोण न लिया, केवल निषेधात्मक वृत्ति पकड ली। जो चलने के पहले जानती है कि हार जायंगे, लडने के पहले जानती है कि जीत असभव है, ऐसी कौम कैसे क्राति ला सकती है ?

जापान के एक छोटे-से राज्य पर एक बडे राज्य ने हमला बोल दिया था। राज्य था छोटा, सेनाएँ थी कम। सेनापति घबरा गया और उसने राजा को जाकर कहा कि युद्ध मे सेनाओ को ले जाना पागलपन है। दुश्मन दसगुनी ताकत का है, हार निश्चित है। लोगो को क्यो कटवाना है ले जाकर, व्यर्थ उनकी हत्या का दोष अपने ऊपर मै नही लूंगा। मुझे आप छुट्टी दे दें। मुझे यह नौकरी नही चाहिए, मैं नही ले जा सकता हूँ सेनाओ को युद्ध मे। यह सीधी हार है, न हमारे पास साधन है, न सामग्री है, न सैनिक हैं।

राजा भी जानता था कि बात सत्य है। फिर राजा को खयाल आया कि एक फकीर है उस गाँव मे। कई बार जब चीजें उलझ गई थी तो राजा उसके

पास गया था। आज शायद वह कोई रास्ता बता सके। सेनापति को लेकर उस फकीर के पास राजा गया। फकीर अपना तबूरा बजा रहा था और गीत गा रहा था। राजा ने कहा कि बन्द करो तबूरा। राज्य पर मुसीबत है और सेनापति कहता है कि जीत असभव है। क्या कोई रास्ता हो सकता है ?

उस फकीर ने कहा, "पहला रास्ता, सेनापति को छुट्टी दे दो क्योकि यह आदमी गलत है। जो आदमी पहले से कहता है कि जीत असभव है उसकी तो जीत कभी हो ही नही सकती। यह तो निराशावादी है, इसको तो जाने दो। इसको जितना जल्दी भगाओ उतना अच्छा है क्योकि बीमारियाँ सक्रामक होती है। कही सैनिको को पता न चल जाय कि सेनापति को बीमारी हो गई है निराशा की, नही तो फिर जीत सकना सच मे मुश्किल हो जायगा। इसको जाने दो। रह गई जगह सेनापति की, जगह मैं भर दूँगा। कल सुबह सेना कूच हो जायगी। सेना हम ले जायेंगे और जीत कर लौट आयेंगे।"

राजा तो बहुत डरा। यह समाधान उसने नही सोचा था। फकीर को तलवार भी पकडनी आती है, यह भी सदिग्ध था। वह तो तबूरा बजाता रहा था। तबूरा बजाने वाला तलवार कैसे पकडेगा ? तबूरा पकडने की आदते और होती है, तलवार की आदतें और होती है और अगर तबूरे की तरह कोई तलवार को पकड ले तो जीत नही हो सकती। लेकिन अब उस फकीर से कुछ कहना भी मुश्किल था और दूसरा कोई विकल्प भी नही था, मजबूरी थी।

उसकी बात मान लेनी पडी। सेनापति तो घबरा गया। उसने कहा, "मै होता तो थोडा ठीक भी था, दो-चार दिन हम लडते भी, जीत तो होनी नही थी लेकिन अब लडाई भी नही होनी है। सैनिक तो और घबरा जायेंगे, इस पगले को आप भेज रहे है सेनापति बनाकर।" लेकिन जब कोई बुद्धिमान सेनापति बनने को राजी न हो तो फिर पागल को चुनने के अतिरिक्त मार्ग क्या है ?

फकीर दूसरे दिन घोडे पर सवार हो गया और चल पडा। लेकिन घोडे पर बैठा वह तबूरा बजा रहा है और सैनिक बहुत हैरान हैं कि किस भाँति की युद्ध की यह कला है। अब क्या होगा ? लेकिन उन्हे पता नही था कि फकीर उनसे ज्यादा मनुष्य की आत्मा को जानता है। जीतते वे ही हैं जो गीत गाते हुए जाते है। यह उन सैनिको को पता नही था। वे सोचते थे कि तलवार से ही जीत होती है। उन्हे पता नही था कि एक और जीत भी है जो

तलवार से बडी है। हाथ मे तलवार हो और प्राणो मे गीत न हो तो जीत कभी नहीं होती और वैसी जीत हो भी जाय तो हार से बदतर होती है। जीत भी जाते हैं और जीत का कोई आनन्द भी प्राणो को स्पर्श नहीं कर पाता।

वे युद्धक्षेत्र के निकट पहुँच गए, सीमा की नदी आ गई। उस पार दुश्मन पडा है, इस पार वे पहुँच गए। सुबह के सूरज की रोशनी बरसती है और एक मदिर का कलश दिखाई पडता है। नदी के इसी पार मदिर है। वह फकीर रुक गया वहाँ और उसने सैनिको से कहा, 'रुको दो क्षण, मैं जरा इस मदिर के देवता से पूछ लूं। हमेशा की मेरी यह आदत रही है, जब भी किसी काम को करने जाता हूँ इससे पूछ लेता हूँ कि जीत होगी या हार ? कर पाऊँगा कि नही ? तो पूछ लें इससे। अगर यह कह देगा कि जीत होगी तो फिर दुनिया मे किसी की फिक्र नही। तुम चाहो न भी जाना, मैं अकेला ही चला जाऊँगा। लेकिन अगर इस देवता ने कह दिया कि जीत नही होगी तो नमस्कार ! न मैं जाने वाला हूँ, न तुम। सब वापस लौट चलेगे। क्योकि जब देवता राजी न हो तो क्या फायदा।" सैनिको ने कहा, "वह तो हम समझ गए, लेकिन हमे कैसे पता चलेगा कि देवता क्या कह रहा है ? आप ही व्याख्याकार रहेंगे। तो हमे कैसे पता चलेगा कि देवता जो कह रहे हैं वही आप हमे बता रहे हैं ?" उसने कहा, "नही, अकेले मे नही पूछूंगा, देवता से तुम्हारे सामने ही पूछूँगा।" उसने जेब से एक चमकता हुआ सोने का रुपया निकाला और कहा, "हे मदिर के देवता मैं यह रुपया फेकता हूँ। यह अगर सीधा गिरा तो हम युद्ध मे चले जायँगे, समझेंगे कि तूने कहा कि जीत होगी। अगर रुपया उलटा गिरा, तो हम वापस लौट जायँगे।" उन सैनिकों की आँखें टँगी रह गई। रुपया ऊपर गया, सूरज की रोशनी मे चमका। वे सब देख रहे हैं, उनकी साँसे रुक गई हैं, उनके जीवन-मरण का सवाल है। फिर रुपया नीचे गिरा और उनके प्राण भी चमक गए। रुपया सीधा गिरा और उस फकीर ने कहा, "अब हारने का सवाल नही, अब बात खत्म हो गई। अब बात तय हो चुकी।" रुपया उसने झोली मे डाल लिया और वे युद्ध के मैदान मे चले गए।

दस दिन बाद वे जीत कर दसगुनी ताकत से लौटे। जब मदिर के पास आ गए तो सैनिको ने कहा, "रुको, मदिर के देवता को धन्यवाद दे दें जिसने हमें जिताया।" उस फकीर ने कहा, "छोडो ! देवता का इसमे कोई हाथ नही है। अगर धन्यवाद देना है तो मुझी को दो।" लोगों ने कहा, "नही

नहीं ! ऐसा कैसे कहते हैं आप ? देवता ने ही तो हमको कहा था कि जाओ, जीत आओगे।" उसने कहा, "तुम्हें पता नहीं, देवता बेचारे का इससे सबध ही नही है।" उसने जेब से रुपया निकाला और सैनिको को हाथ मे दे दिया। वह सिक्का दोनो तरफ सीधा था।

भारत का पूरा इतिहास ऐसे सिक्के को पकडे हुए है जो दोनो तरफ उलटा है। इसलिए क्राति इस मुल्क मे नही हो पाती। लेकिन क्रान्ति हो सकती है, होनी चाहिए, इसके अतिरिक्त हमारा कोई भविष्य नही है, हमारा कोई भाग्य नही है। लेकिन जबतक हम इन बुनियादी सूत्रो पर भारत की आत्मा को न बदल ले तबतक हमारी कोई सामाजिक क्राति, कोई आर्थिक क्राति, कोई राजनीतिक क्राति कुछ मूल्य नहीं रखेगी। भारत मे क्राति की जरूरत है, लेकिन कैसी क्राति की ? आध्यात्मिक क्राति की ? अबतक जीवन के जो मूल्य रहे हैं वे गलत थे। नए मूल्य स्थापित करने हैं, उसके बाद ही राजनीतिक क्राति भी सार्थक होगी और आर्थिक क्राति भी सार्थक होगी, सामाजिक क्राति भी सार्थक होगी। लेकिन अगर हमने उन मूल्यो को नही बदला जिनपर हमारे प्राण अब तक रहे हैं तो हमारी और सारी क्रातियाँ पोच सिद्ध होगी, उनसे कुछ परिवतन होने वाला नहीं।

क्या ईश्वर मर गया है ?

एक सुबह की बात है। एक पहाड से एक व्यक्ति गीत गाता हुआ नीचे उतर रहा था। उसकी आँखो में किसी बात को खोज लेने का प्रकाश था, उसके हृदय मे किसी सत्य को जान लेने की खुशी थी, उसके कदमो मे उस सत्य को दूसरे लोगो तक पहुँचा देने की गति थी। वह बहुत उत्साह से और बहुत आनन्द से भरा हुआ प्रतीत हो रहा था। अकेला था पहाड के रास्ते पर और नीचे मैदान की तरफ उतर रहा था। बीच मे उसे एक बूढा आदमी मिला जो पहाड की तरफ ऊपर को चढ रहा था। उस व्यक्ति ने उस बूढे आदमी को पूछा कि तुम पहाड पर किसलिए जा रहे हो ? उस बूढे ने कहा

कि परमात्मा की खोज के लिए। और वह व्यक्ति जो पहाड से नीचे की तरफ उतरा आ रहा था यह सुनकर बहुत जोर से हँसने लगा और उसने कहा, क्या यह भी हो सकता है कि तुम्हें अभी तक वह दुखद समाचार नही मिला ? उस बूढे आदमी ने पूछा, कौन-सा समाचार ? तो उस व्यक्ति ने कहा कि क्या तुम्हें अभी तक पता नही कि ईश्वर मर चुका, तुम किसे खोजने जा रहे हो ? क्या जमीन पर और नीचे मैदानो मे अबतक यह खबर नही पहुँची कि ईश्वर मर चुका ? मै पहाड से आ रहा हूँ और मैं भी ईश्वर को खोजने गया था लेकिन वहाँ जाकर मैने भी ईश्वर को नही, ईश्वर की लाश को पाया। और क्या दुनिया तभी विश्वास करेगी जब उसे अपने से दफना देगी ? क्या यह खबर अबतक नही पहुँची ? मैं वही खबर लेकर नीचे उतर रहा हूँ कि मैदानो मे जाऊँ और लोगो को कह दूं कि पहाडो पर जो ईश्वर रहता था वह मर चुका है। लेकिन उस बूढे आदमी ने विश्वास नही किया। साधारणतया कोई मर जाय तो उसकी बात पर हम विश्वास नही, करते ईश्वर के मरने पर कौन विश्वास करता है ? उस बूढे आदमी ने समझा कि युवक पागल हो गया है। वह अपने रास्ते पर बिना कुछ कहे पहाड पर चढने लगा। उस युवक ने सोचा कि अजीब है यह आदमी, जिसे खोजने जा रहा है वह मर चुका है और फिर भी खोज को जारी रखना चाहता है, लेकिन वह नीचे की तरफ उतरता रहा। रास्ते मे और एक साधु मिला जो आँखे बन्द किए हुए किसी के ध्यान मे लीन था। उस युवक ने उसे झकझोरा और पूछा कि किसका चिन्तन करते हो किसका ध्यान करते हो ? उसने कहा कि परमात्मा का ध्यान करता हूँ। वह युवक हँसा और बोला, "मालूम होता है यह खबर ले जाने का दुखद काम मुझे ही करना पडेगा कि तुम जिसका ध्यान कर रहे हो वह बहुत समय हुआ मर चुका। उसके ध्यान करने से कुछ भी नही होगा। अब उसके स्मरण करने से कुछ भी नही होगा और अब उसके गीत और प्रार्थनाएँ कोई भी फल नही लायँगी, क्योकि मुर्दा आदमी कुछ नही कर सकता, मुर्दा परमात्मा भी क्या करेगा ?" वह युवक और नीचे उतरा। उसी पहाड पर मैं भी गया था और मेरी भी उससे मुलाकात हुई। वही मैं आपसे कहना चाहता हूँ। उस आदमी ने मुझसे भी पूछा कि कहाँ जाते हो ?। इसके पहले कि मैं उसको कोई उत्तर देता, मैंने भी पूछा, "तुम कहाँ जाते हो ?" उसने कहा, "एक खबर मेरे पास है। उसे दुनिया को मुझे कहना है।" उसने कहा ईश्वर मर गया है

तुम्हें पता चला ? मैंने उस आदमी से कहा कि मेरे पास भी एक खबर है और मुझे भी वह दुनियाँ से कहनी है। क्या तुम्हें पता है कि जो ईश्वर मरा है वह ईश्वर था ही नही, एक झूठा ईश्वर मर गया है ? कुछ लोग उस झूठे ईश्वर के जिन्दा होने के खयाल मे हैं और कुछ लोग उस झूठे ईश्वर के मर जाने के खयाल में हैं। लेकिन जो सच्चा ईश्वर था वह अब भी है और हमेशा रहेगा। तुम एक खबर दुनिया को देना चाहते हो और मैं भी एक खबर देना चाहता हूँ कि जो मर गया है वह सच्चा ईश्वर नहीं था क्योंकि जो मर सकता है वह जीवित ही न रहा होगा। जीवन का मृत्यु से कोई सम्बन्ध नही है। जहाँ जीवन है वहाँ मृत्यु नही है। और जहाँ मृत्यु हो, जानना कि जीवन भ्रामक था और झूठा था, कल्पित था, मृत्यु ही सत्य थी। वह जो मरा हुआ है वही केवल मरता है। जो जीवित है उसके मरने की कोई सम्भावना नही है। जीवन के मर जाने से ज्यादा असम्भव बात और कोई नहीं हो सकती। ईश्वर तो समग्र जीवन का नाम है।

वह आदमी दुनिया के कोने-कोने मे अपनी खबर कहता फिरता है। मुझको भी उसका पीछा करना पड रहा है। जहाँ वह जाता है, मुझे भी वहाँ जाना पडता है। जरूर आप से भी उसने यह बात आकर कही होगी कि ईश्वर मर गया। बहुत तरकीबें हैं उस बात के कहने की, बहुत से रास्ते हैं, बहुत-सी व्यवस्थाएं हैं। बहुत ढगो से आप तक भी यह खबर निश्चित ही पहुँच गई होगी कि ईश्वर मर चुका है।

मैं आप से दूसरी बात कहना चाहूँगा। वह यह कि जो ईश्वर मर चुका है वह जिन्दा ही नही था। कुछ लोगो ने उसे एक झूठा ही जीवन दे रखा था और अच्छा ही हुआ कि वह मर गया। अच्छा ही होता कि वह कभी पैदा ही न होता, और अच्छा हुआ होता कि वह बहुत पहले मर गया होता। तो यह खबर सुखद है, दुखद नहीं। लोगो ने आपसे बहुत रूपों मे कहा होगा—कि धर्म की मृत्यु हो गई है। यह बहुत अच्छा हुआ है। क्योंकि जो धर्म मर सकता है, उसे मर ही जाना चाहिए। उसे जिन्दा रखने की कोई जरूरत नहीं है और जब तक झूठा धर्म जिन्दा रहेगा और झूठा ईश्वर जीवित मालूम पडेगा तबतक सच्चे ईश्वर को खोजना अत्यन्त कठिन है। क्योंकि सच्चे ईश्वर और हमारे बीच मे झूठे ईश्वर के अतिरिक्त और कोई भी खडा नही है। मनुष्य और परमात्मा के बीच एक झूठा परमात्मा खडा हुआ है, मनुष्य

और धर्म के बीच अनेक झूठे धर्म खड़े हुए हैं। वे गिर जायँ, वे जल जायँ और नष्ट हो जायँ तो मनुष्य की आँखें उसकी तरफ उठ सकती हैं जो सत्य है और परमात्मा है।

कौन-सा ईश्वर झूठा ईश्वर है? मन्दिरो मे जो पूजा जाता है वह ईश्वर झूठा है, क्योकि उसका निर्माण मनुष्य ने किया है। मनुष्य ईश्वर को बनाये, इससे ज्यादा झूठी और कोई बात नही हो सकती। ईश्वर ने मनुष्य को बनाया होगा, यह तो हो भी सकता है, लेकिन यह कैसे हो सकता है कि मनुष्य ईश्वर को बना ले। लेकिन जितने प्रकार के मनुष्य है उतने प्रकार के ईश्वर हमने निर्मित कर लिये है और जितने प्रकार के मनुष्य है उतने ही प्रकार के मन्दिर है, उतने ही प्रकार की मस्जिदें है, उतने ही प्रकार के गिरजाघर हैं, और न मालूम क्या है। हम सबने मिलकर न मालूम कितने प्रकार के ईश्वर ईजाद कर लिये है, ये ईश्वर निश्चित ही झूठे है। ईश्वर ईजाद नही किया जा सकता, इनवेंट नही किया जा सकता। कोई न तो उसे पत्थर के द्वारा निर्मित कर सकता है और न शब्दो के द्वारा और न रगो के द्वारा और न रेखाओ के द्वारा। क्योकि जो भी हम निर्मित कर सकेगे वह हमसे भी ज्यादा कच्चा और हमसे भी ज्यादा झूठा और हमसे भी ज्यादा क्षणभगुर होगा।

मनुष्य ईश्वर का निर्माण नही कर सकता लेकिन ईश्वर को उपलब्ध कर सकता है। मनुष्य ईश्वर की ईजाद तो नही कर सकता लेकिन ईश्वर का आविष्कार कर सकता है, इनवेंट तो नही कर सकता, डिस्कवर कर सकता है। मनुष्य ने जितने भी ईश्वर ईजाद किए है सब झूठे हैं और इन्ही ईश्वरो के कारण और इन्ही धर्मों के कारण धर्म का दुनिया मे कही कोई पता भी नही मिलता। जहाँ भी मनुष्य जायगा कोई न कोई ईश्वर बीच मे आ जायगा और कोई न कोई धर्म। और धर्म से आपका कोई भी सम्बन्ध नही हो सकेगा, हिन्दू बीच मे आ जायगा, ईसाई, मुसलमान, जैन और बौद्ध कोई न कोई बीच मे आ जायगा, कोई न कोई दीवाल खडी हो जायगी, कोई न कोई पत्थर बीच मे अटक जायगा और द्वार बीच मे बन्द हो जायगा। ये द्वार परमात्मा से मनुष्य को तो तोडते ही है, मनुष्य से भी मनुष्य को तोड देते हैं। मनुष्य को मनुष्य से अलग करने वाले कौन हैं? एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच कौन-सी दीवाल है? पत्थर की, मकानो की? नही, मन्दिरो की, मस्जिदो की, धर्मों की, शास्त्रों की, विचारो की दीवालें हैं जो एक-एक मनुष्य को दूसरे

मनुष्य से अलग किए हुए हैं और स्मरण रहे कि जो दीवालें मनुष्य को मनुष्य से दूर कर देती हैं वे दीवालें मनुष्य को परमात्मा से मिलने देंगी, यह असम्भव है। अगर मैं आपसे दूर हो जाता हूँ तो यह कैसे सम्भव है कि जो चीज मुझे आपसे दूर कर देती हो वही मुझे उससे जोड़ दे जिसका नाम ईश्वर है ? यह सम्भव नही है। लेकिन इस तरह का ईश्वर, इस तरह का धर्म हजारो-हजारो वर्षों से मनुष्य के मन पर छाया हुआ है और यही कारण है कि पाँच-छह हजार वर्षों मे निरन्तर चिन्तन, मनन और ध्यान के बाद भी जीवन मे धर्म का कोई अवतरण नही हो सका। एक मिथ्या धर्म हमारे और धर्म के बीच खडा हुआ है। नास्तिक धर्म को नही रोक रहे है और न वैज्ञानिक रोक रहे हैं और न भौतिकवादी रोक रहे है। रोक रहे हैं वे लोग जिन्होने धर्मों की ईजाद कर ली है। हम किसी न किसी ईजाद किए हुए धर्म की दीवाल मे आबद्ध हो गए है, कारागार मे बन्द हो गए हैं और हमारे चित्त परतन्त्र हो गए है और उस स्वतन्त्रता को खो दिये हैं जो सत्य की खोज की पहली शर्त है। ऐसा ईश्वर मर गया है, मर जाना चाहिए। न मरा हो तो जिन लोगो को भी ईश्वर से प्रेम है उन्हे सहायता करनी चाहिए कि वह मर जाय। उसे दफना दिया जाना चाहिए। अगर समय रहते यह न हो सका तो सच्चे धर्म के अभाव मे मनुष्य जाति का क्या होगा, यह कहना बहुत कठिन है, और बहुत दुर्भाग्यपूर्ण भी होगी वह घोषणा। उस दिन की कल्पना भी मन को कँपा देने वाली है।

आज भी मनुष्य को क्या हो गया है, आज भी मनुष्य क्या है ? अगर पशु-पक्षियो मे होश होगा तो वे आदमी को देखकर जरूर हँसते होगे, उन्हे हँसी आती होगी। डार्विन ने कुछ वर्षों पहले लोगो को समझाया कि मनुष्य जो है वह बन्दर का विकास है। लेकिन एक बन्दर ने मुझे बताया है कि मनुष्य बन्दर का पतन है। डार्विन समझ नही पाया। बन्दर हँसते हैं आदमी पर और सोचते है कि यह उनका पतन है। कुछ बन्दर भटक गए है और आदमी हो गए हैं और डार्विन को खयाल था कि यह बन्दरो का विकास है। यह केवल आदमी के अहकार की भूल है, एक बन्दर ने मुझे बताया। आदमी की आज जो स्थिति है यह कल और क्या होगी और कौन इस स्थिति को ऐसा बनाये हुए है, स्मरण रखिए बीमारियो से ज्यादा घातक वे दवाइयाँ हो जाती है जो झूठी हैं। स्मरण रखिए, समस्याओ से भी ज्यादा खतरनाक वे

समाधान हो जाते हैं जो सच्चे न हों। क्योंकि समस्याएँ तो एक तरफ बनी रहती हैं और समाधान दूसरी समस्याएँ खडी कर देते हैं। इधर पाँच हजार वर्षों में धर्म के नाम पर जो कुछ हुआ है उससे जीवन की कोई समस्या हल नहीं हुई, बल्कि और नई समस्याएँ खडी हो गई। और हर समाधान अगर नई समस्याए खडी कर देता हो तो ऐसे समाधनो से विदा लेने का समय आ गया है। उन्हें विदा दे देनी जरूरी है, क्योंकि बहुत-सी व्यर्थ की समस्याए उनके कारण पैदा हुई हैं और समाधान तो कोई भी नही हुआ है। मनुष्य ईश्वर के कितने निकट पहुँचा है? मन्दिर तो बढते जाते हैं, मस्जिदे तो बढ़ती जाती हैं, गिरजे रोज नए-नए खडे होते जाते हैं और ऐसा मालूम होता है कि अगर यह विकास इसी भाँति चला तो आदमी के रहने के लायक मकान न बचेंगे, ईश्वर सब मकान घेर लेगा। लेकिन इन मन्दिरो मे, इन गिरजों मे, इन मस्जिदो मे होता क्या है? क्या मनुष्य के जीवन से कोई ईश्वर-सम्बन्ध वहाँ पैदा होता है? क्या मनुष्य के जीवन मे कोई क्रान्ति वहाँ घटित होती है? क्या मनुष्य के जीवन का दुख और अधकार वहाँ दूर होता है? क्या मनुष्य के जीवन की हिंसा और घृणा वहाँ समाप्त होती है? क्या मनुष्य के जीवन मे प्रेम और प्रार्थना के बीज वहाँ पैदा होते हैं? क्या कोई सौन्दर्य के फूल मनुष्य के हृदय पर वहाँ पैदा होते हैं, बनते हैं और निर्मित होते हैं? नही, बिलकुल नहीं। बल्कि वहाँ मनुष्य और मनुष्य के बीच घृणा पैदा होती है, क्रोध और हिंसा पैदा होती है। आज तक जितना सघर्ष और रक्तपात मन्दिरो और मूर्तियो के नाम पर हुआ है उतना और किसी चीज के नाम पर हुआ है? और मनुष्य की जितनी हत्या मनुष्यों के द्वारा निर्मित धर्मस्थानों को लेकर हुई है उतनी और किसी बात से हुई है? अगर हम अब भी इस बात को कहते चले गए कि हम इन्हीं स्थानों को धर्मस्थान मानते रहेंगे तो निश्चित मानिए कि धर्म के अवतरण की फिर कोई सम्भावना नही है।

एक चर्च के द्वार पर सुबह-सुबह एक आदमी ने आकर दस्तक लगाई। मैं तो उसे आदमी कह रहा हूँ लेकिन चर्च में जो लोग रहते थे वे उसे आदमी नहीं समझते थे। क्योंकि मन्दिरो ने आदमी और आदमी मे फर्क पैदा कर रखा है। वह आदमी काले रग का था और जिनका मन्दिर था और जिनका परमात्मा था वह सफेद रग के लोग थे। उस मन्दिर के पुरोहित ने उस काले आदमी से कहा, तुम यहाँ कैसे आए? उसने कहा, मैं परमात्मा की खोज मे

आया हूँ। पुरोहित ने उसे नीचे से ऊपर तक देखा। काला आदमी, और सफेद आदमी के मन्दिर मे आवे, यह समझ मे आने वाली बात नहीं थी। यदि पुराने दिन होते तो उसने तलवार निकाल ली होती और उससे कहा होता कि यहाँ से हट जाओ, तुम्हारी छाया पड़नी भी खतरनाक है। लेकिन दिन बदल गए हैं और भाषाएँ बदल गई हैं। उस पुरोहित ने बहुत प्रेम से कहा, "मेरे भाई मन्दिर मे आने से क्या होगा? जबतक तुम्हारा हृदय शांत न हो और तुम्हारा मन विकारो से मुक्त न हो तबतक मन्दिर मे आकर क्या करोगे? परमात्मा तो केवल उन्हें मिलता है जिनके हृदय शात होते हैं और विकार से मुक्त होते हैं। तो तुम जाओ, पहले हृदय को पवित्र करो और फिर आना।" उस पुरोहित ने सोचा होगा कि न हृदय पवित्र होगा और न यह वापस आयगा। लेकिन यह बात उसने सफेद चमडी के लोगों से कभी भी नहीं कही थी। यह तो उस आदमी को उस मदिर से दूर रखने का उपाय था। वह काला आदमी चला गया। कई महीने बाद रास्ते के चौराहे पर वह उस पुरोहित को दिखाई पडा। वह बहुत मग्न और बहुत आनन्दित था और उसकी आँखो मे रोशनी झलकती थी। उस पुरोहित ने पूछा कि तुम दोबारा नही आए। उसने कहा कि मैं क्या करूँ। मैंने मन को पवित्र करने की कोशिश की। मुझसे जो बन पडता था वह मैंने किया। मैं शान्त हुआ और मैंने एकान्त खोजा और एक रात परमात्मा ने मुझे स्वप्न मे दर्शन दिए और उसने कहा कि तू किसलिए पवित्र होने की कोशिश करता है। मैंने उससे कहा कि वह जो मदिर है हमारे गाँव मे, वह जो चर्च है, मै उसमें प्रवेश करना चाहता हूँ और उसके पुरोहित ने कहा है कि पहले पवित्र हो जाओ, तब आने के लिए द्वार खुलेगा। परमात्मा यह सुनकर हँसने लगा और उसने कहा कि तू बिलकुल पागल है। कोशिश छोड दे। दस साल से मैं खुद ही उस चर्च मे घुमने की कोशिश कर रहा हूँ। पुजारी मुझे भी नहीं घुसने देता। मै खुद ही सफल नही हो सका और निराश हो गया हूँ तो तू वहाँ कैसे प्रवेश पा सकेगा?

और यह बात एक मन्दिर की बावत नही सभी मदिरो की बाबत सच है। यह बात एक पुजारी के सम्बन्ध मे नही, सभी पुजारियो के सम्बन्ध में सच है। जहाँ भी मदिर है और जहाँ भी पुजारी हैं वहाँ उन्होंने परमात्मा को कभी प्रवेश नहीं पाने दिया और न वे पाने देंगे, क्योकि परमात्मा और पुजारी दोनों एक साथ नही चल सकते। परमात्मा प्रेम है, पुजारी व्यवसाय है। प्रेम

और व्यवसाय का क्या सम्बन्ध ! जहाँ पुजारी है वहाँ दूकान है, वहाँ मदिर कैसे हो सकता है ? अपनी उन दुकानो को उन्होने मदिर बना रखे हैं और उन दुकानो के ग्राहकों को दूसरी दुकानो के खिलाफ बहुत घृणा से भर रखा है ताकि वे उनकी दुकानो को छोडकर दूसरी दुकानो पर न चले जायें। एक मन्दिर दूसरे मदिर के विरोध मे है और एक मदिर का परमात्मा दूसरे मदिर के परमात्मा के विरोध मे है। क्या यह धर्म की स्थिति है ? और क्या इसके द्वारा धर्म को गति मिली है, प्राण मिले हैं ? नही, धर्म निष्प्राण हुआ है। इस भाँति का ईश्वर मर गया हो, इससे ज्यादा सुखद सुसमाचार दूसरा और नही हो सकता। लेकिन अगर वह मर भी गया हो तो पुजारी इसका पता आपको नही चलने देगे, क्योकि आपको यह पता चल जाना बहुत खतरनाक होगा। इसलिए वह उस मरे हुए ईश्वर के आसपास भी मन्त्र पढते रहेगे और पूजा करते रहेंगे। इसलिए नही कि परमात्मा से उन्हे बहुत प्रेम है, बल्कि इसलिए कि उनके जीवन का आधार वे ही पूजाएँ है, वे इसी से जीते हैं। यही उनकी आजीविका है।

जिन लोगो ने परमात्मा को आजीविका बनाया उन लोगो ने ही मनुष्य को परमात्मा से दूर करने के उपाय किए। जहाँ भी परमात्मा जीविका बन गया हो, जान लेना कि वहाँ परमात्मा नही हो सकता। परमात्मा प्रेम है और प्रेम का व्यवसाय नही हो सकता, उसकी आजीविका नही हो सकती। प्रार्थनाएँ बेची नही जा सकती और प्रार्थनाएँ दूसरो के लिए की भी नही जा सकती, प्रेम मे कोई मध्यस्थ नही होता और न कोई दलाल होता है। जहाँ दलाल हो और मध्यस्थ हो वहाँ प्रेम असम्भव है, वहाँ सौदा होगा, प्रेम नही हो सकता। प्रेम सीधा होता है। प्रेम के बीच मे कोई मौजूद नही होता। परमात्मा और मनुष्य के बीच जिस दिन से पुजारी मौजूद हुआ उसी दिन से सारी बात खराब हो गई। ऐसा परमात्मा मर जाय, इससे ज्यादा शुभ कुछ भी नही है। क्योकि ऐसा परमात्मा जिन्दा ही नही है और इसकी मृत्यु से उस परमात्मा के जीवन की तरफ हमारी आखे उठनी शुरू होगी जो वस्तुत जीवन है, महान जीवन है, परम जीवन है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, जैन और बौद्ध और इस तरह के सभी नाम दुनिया से बिदा होने चाहिए, तभी दुनिया मे धर्म का जन्म हो सकता है। इसी भाँति शास्त्रो, शब्दो और सिद्धान्तों का ईश्वर भी मर गया है। वह भी सच्चा ईश्वर नहीं है। शब्द,

शास्त्र और सिद्धान्त मनुष्य के चित्त और बुद्धि के अनुमानो से ज्यादा नहीं हैं वे अँधेरे मे फेंके गए उन तीरों की भाँति हैं जो लग भी जाता हो तो भी उनके लगने का कोई अर्थ नही होता। उनका लग जाना बिलकुल सायोगिक है। मनुष्य सोचता रहा, जीवन मे जहाँ-जहाँ अज्ञात और अँधेरा है, मनुष्य विचार करता रहा, अनुमान करता रहा। अनुमानों के बहुत शास्त्र सारी जमीन पर इकट्ठे हो गए। इन अनुमानो मे, इन कल्पनाओ मे, इन धारणाओ मे कोई सत्य नही है, कोई ईश्वर नही है क्योकि ईश्वर का अनुभव तो वहीं शुरू होता है जहाँ सब अनुमान, सब विचार, सब धारणाएँ शात हो जाती हैं। जहाँ चित्त मौन और निर्विचार को उपलब्ध होगा वहीं वह सत्य को जानने मे समर्थ होता है। जहाँ सारे शास्त्र शून्य हो जाते हैं वही उसका उद्घाटन होता है जो सत्य है। इसलिए शब्दो मे जो भटके हो, शब्दो को जिन्होने पकड रखा हो, शास्त्रो का जिन्होने अपनी आत्मा समझ रखा हो उनका सत्य से कोई सम्बन्ध नही हो सकेगा। अनुमान करने मे मनुष्य की बुद्धि प्रखर है, तीव्र है, और अनुमान के द्वारा अपने अज्ञान को ढँक लेने मे भी हम बहुत होशियार हैं। जहाँ-जहाँ अज्ञान है वहाँ-वहाँ हम कोई अनुमान कर लेते हैं, कोई कल्पना कर लेते है और धीरे-धीरे उस कल्पना पर विश्वास करने लगते है। क्यो ? क्योकि उस कल्पना पर विश्वास करने से हमारे अज्ञान का बोध नष्ट हो जाता है। हमे लगता है कि हम जानते है। जिस मनुष्य को यह लगता हो, मैं जानता हूँ ईश्वर को, वह ईश्वर को कभी नही जान सकेगा क्योकि उसका जानना, निश्चित ही कही शास्त्रो और सिद्धान्तो की पकड पर निर्भर होगा। कुछ उसने सीख लिया होगा, कुछ उसने समझ लिया होगा, कुछ उसने स्मरण कर लिया होगा, वही उसका ज्ञान बन गया होगा। ऐसा ज्ञान नही, बल्कि ऐसा अज्ञान कि मैं जीवन-सत्य के सम्बन्ध मे कुछ भी नही जानता हूँ, इस बात का बोध कि मुझे जीवन-सत्य के सम्बन्ध मे कुछ भी पता नही, कुछ भी ज्ञात नही, ऐसे अज्ञान (ignorance) का स्पष्ट एहसास, ऐसी प्रतीति कि मुझे पता नहीं, मनुष्य के चित्त को शब्दो के भार से मुक्त कर देती है और वह मौन पैदा होता है जो उसे जानने की तरफ ले जाता है।

किसी ने एथेंस मे यह घोषणा कर दी कि सुकरात सबसे बडा ज्ञानी है। लोग सुकरात के पास गए और उन्होने सुकरात से कहा कि लोगो ने घोषणा की है कि तुम सबसे बडे ज्ञानी हो। सुकरात हँसा और उसने कहा कि जाओ

उनसे कहना कि जब मैं युवा था तो मुझे ऐसा भ्रम था कि मैं ज्ञानी हूँ। फिर जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ी, मेरा ज्ञान बिखरता गया, पिघलता गया और बह गया। अब जब मैं मौत के करीब आ गया हूँ और अब जब मुझे किसी से कोई भी डर नहीं है, मैं एक सच्ची बात कह देना चाहता हूँ कि मैं कुछ भी नहीं जानता। उन लोगो से कह दो कि सुकरात तो कहता है कि वह महा अज्ञानी है। वे लोग गए और उन्होने जाकर, उन लोगो से इसकी घोषणा गाँव मे करते फिरते थे, कहा कि सुकरात तो स्वय कहता है कि वह महा अज्ञानी है। उन्होने कहा, इसीलिए तो हम कहते है कि उसको परम ज्ञान उपलब्ध हुआ है। तभी तो वह यह कहने मे समर्थ हो गया और इस सत्य को जानने मे समर्थ हो गया कि मै कुछ भी नही जानता हूँ। इस शान्त, मौन, और निर्दोष स्थिति मे ही जानने के द्वार खुल सकते है। जिसको यह खयाल हो कि मैने जान लिया है, उसका तो अहकार और मजबूत हो जायगा। ज्ञानियो के अहकार से ज्यादा बडा अहकार और किसी का नही होता। उनका तो 'मैं' भाव कि मैं कुछ हूँ और भी प्रबल हो जाता है। और जिसको यह वहम हो जाय कि मैं कुछ हूँ वह परमात्मा से नही मिल सकेगा, क्योकि परमात्मा से मिलने की पहली शर्त यह है—जैसे बूंद अपने को सागर मे खो देती है ऐसे ही कोई अपने अहकार को सर्व के साथ निमज्जित कर दे, सर्व के साथ खो दे, वह जो चारो तरफ फैला हुआ विस्तार है, वह जो असीम और अनन्त सत्ता है, चारो ओर उसमे अपने को डुबो दे और खो दे। सुकरात ने कहा कि मैं महान अज्ञानी हूँ। क्या आप भी किसी क्षण मे इस बात का अनुभव कर पाते है कि आप महान अज्ञानी हैं? अगर कर पाते है तो कही न कही परमात्मा वह क्षण निकट लायगा जब ज्ञान का जन्म हो सकता है। लेकिन यदि आप भी अपने मन मे यह दोहराते है कि मैं जानता हूँ तो स्मरण रखना, यह जानने का भ्रम कभी भी जानने नही देगा। ज्ञानियो का ईश्वर मर गया। पडितो का ईश्वर मर गया। अब तो उन लोगो के ईश्वर के लिए जगत मे जगह होगी जिनके हृदय बच्चो की तरह सरल हो और वह यह कह सकें कि हम नही जानते और उस न जानने के बिन्दु से जिनकी खोज शुरू हो सके, जो न जानने के स्थान की खोज कर सकें और यात्रा कर सकें। सच तो यह है कि कोई भी खोज तभी प्रारम्भ होती है जब न जानने का भाव गहरा और प्रबल हो जाय। जब जानने का भाव गहरा हो जाता है तो खोज

बन्द हो जाती है, टूट जाती है, समाप्त हो जाती है।

लेकिन हम सभी लोग कुछ न कुछ जानने के खयाल मे हैं। अगर हमने गीता या कुरान या बाइबिल या कोई और शास्त्र स्मरण कर ली है और अगर हमे वे शब्द पूरी तरह कंठस्थ हो गए हैं तो जीवन जब भी कोई समस्याएँ खडी करता है, हम उन सूत्रो को दोहराने मे सक्षम हो जाते हैं। अगर हमे इस भाँति ज्ञान पैदा हो गया है तो हम बहुत दुर्दिन की स्थिति मे हैं, बहुत दुर्भाग्य है। यह ज्ञान खतरनाक है। यह ज्ञान कभी सत्य को जानने नही देगा और कभी ईश्वर को भी जानने नही देगा। कभी ईश्वर से भी यह ज्ञान सम्बन्धित नही होने देगा। यह ज्ञान जो शब्दो से और शास्त्रो से आता है, ज्ञान ही नही है यह अज्ञान को छिपा लेने के उपाय मे ज्यादा नही है। हाँ, यह हो सकता है कि इस-अज्ञान मे भी कभी-कभी कोई तीर लग जाता हो। कभी-कभी पागल भी ठीक उत्तर दे देते है और कभी-कभी तो अनुमान से भी अँधेरे मे सच्चाइयाँ साबित हो जाती है। लेकिन उनपर कोई जीवन खडा नही हो सकता।

मैंने सुना है, एक गाँव मे स्कूल के निरीक्षण के लिए एक इंस्पेक्टर आया। खबर उसके पहले ही उस गाँव मे आ गई थी कि उस इंस्पेक्टर का दिमाग खराब हो गया है। वह पागल हो गया था, लेकिन अपने काम को जारी रखे हुए था, बल्कि और भी मुस्तैदी से। पागल काम करने मे बडे कर्मठ हो जाते है। वे जो भी करते हैं, पूरी ताकत से करते हैं। वह और भी जोर से निरीक्षण करने लगा। अब वह घर पर बैठता नही था। वह गाँव-गाँव निरीक्षण करता फिरता था और स्कूल के रजिस्टर मे उस स्कूल का रिकार्ड खराब करता था, क्योंकि उसके प्रश्नो के उत्तर देना बिलकुल असम्भव था। वह उस गाँव मे भी आया जिसकी मैं बात कर रहा हूँ। उस गाँव का अध्यापक डरा हुआ था। प्रधान अध्यापक डरा हुआ था, बच्चे डरे हुए थे कि क्या होगा। वह आया और सबसे बडी जो कक्षा थी उस स्कूल मे, उसमे जाकर उसने कुछ प्रश्न पूछे। सबसे पहले उसने यह कहा कि जो प्रश्न मैं पूछ रहा हूँ इसका कोई भी अब तक उत्तर नही दे पाया है। अगर तुम बच्चो मे से किसी ने भी इसका उत्तर दे दिया तो फिर मैं दूसरा प्रश्न नही पूछूँगा। अगर तुम इसका उत्तर नही दे सके तो मैं और भी प्रश्न पूछूँगा, लेकिन फिर वे इससे भी ज्यादा कठिन होगे। उसने प्रश्न पूछा। उसने पूछा कि दिल्ली से एक हवाई जहाज कलकत्ता की तरफ उडा। वह घंटे भर मे दो सौ मील चलता है तो

क्या तुम हिसाब लगाकर बता सकते हो कि मेरी उम्र क्या है ? सारे बच्चे घबरा गए। बच्चे क्या, बूढे होते तो वे भी घबरा जाते। प्रश्न बिलकुल असगत था। उसमे कोई सम्बन्ध ही नही था। दिल्ली से हवाई जहाज कलकत्ता किसी रफ्तार से जाय, उससे क्या सम्बन्ध था उसकी उम्र का ? लेकिन और बडी हैरानी की बात थी कि एक बच्चे ने उत्तर देने के लिए हाथ हिलाया। तब तो अध्यापक और प्रधान अध्यापक और भी हैरान हुए। उसका प्रश्न तो पागलपन का था, लेकिन एक बच्चा उत्तर देने को भी राजी था। जब उसने हाथ हिलाया था तब इस्पेक्टर बहुत खुश हुआ था। उसने कहा कि यह पहला मौका है कि ऐसा बुद्धिमान बच्चा मुझे मिला जिसने उत्तर देने के लिए हाथ हिलाया। उस बच्चे ने कहा कि यह उत्तर मै ही दे सकता हूँ और आप सारी जमीन पर घूम लेते तो भी उत्तर नही मिलता। जैसे आपका प्रश्न आप ही कर सकते है, यह उत्तर भी सिर्फ मैं ही दे सकता हूँ। इस्पेक्टर ने पूछा कि कितनी है उम्र मेरी ? उस लडके ने कहा कि आपकी उम्र ४४ वर्ष है। वह यह सुनकर हैरान हो गया। उसकी उम्र ४४ वर्ष थी। उसने कहा किस विधि से तुमने यह गणित हल किया। उसने कहा कि यह बहुत आसान है। मेरा बडा भाई आधा पागल है, उसकी उम्र बाइस वर्ष है। तो यह बिलकुल आसान सवाल है। आपकी उम्र ४४ वर्ष होनी ही चाहिए।

ईश्वर के सम्बन्ध मे, आत्माओ के सम्बन्ध मे, परलोक, स्वर्ग और नर्क और मोक्ष के सम्बन्ध मे जो प्रश्न पूछे गए हैं वह इस पागल के प्रश्न से भी ज्यादा असगत हैं। इनके उत्तर देने वाले भी मिल गए। यह कितनी असगत बात है कि हम पूछे ईश्वर कैसा है, कहाँ है, कहाँ रहता है। हम, जिन्हे अपना ही पता नही, ईश्वर के सम्बन्ध मे यह प्रश्न पूछे। हम, जिन्हें यह भी पता नही कि हम कहाँ है, कौन है, यह पूछे कि ईश्वर क्या है, कैसा है। यह बिल्कुल ही असगत है। लेकिन हमारे प्रश्न चाहे असगत हो, इनके उत्तर देने वाले लोग भी मौजूद है। वे बताते है कि ईश्वर कहाँ है। उन्होने नक्शे भी बनाए है और उन्होने किताबे भी छापी है और उसमे उसका सब पता ठिकाना भी दिया है। पुराने जमाने मे फोन नम्बर नही होते थे, इसलिए उन्होने फोन नम्बर भगवान का नही लिखा। अगर वे फिर से नए सस्करण निकालेंगे अपनी किताबो के तो उसमे फोन नम्बर भी होगा और फिर वहाँ जाने की जरूरत नही है, आप घर से ही बात कर लेंगे। उन्होंने फासला तक बताया है। स्वर्ग

के रास्ते और नर्क के रास्ते बताए हैं और नक्शे बनाये है और मंदिरो मे वे नक्शे टँगे हुए हैं। इन सारी बातों पर अगर नक्शा बनाने वालों में विरोध है, तो यह स्वाभाविक है, क्योंकि यह तय करना कठिन है कि किसका नक्शा ठीक है। इन सम्बन्धो मे कि ईश्वर की शक्ल कैसी है, चीनी और भारतीय मे झगडा होना स्वाभाविक है, क्योंकि चीनी जो शक्ल बनायगा वह चीन के आदमी-जैसी होगी और भारतीय जो शक्ल बनायगा वह भारतीय आदमी-जैसी होगी। नीग्रो जो शक्ल बनायगा उसमे वह पतला होठ नही लगा सकता। उसके बाल घुँघराले होगे। शक्ल काली होगी और होठ ऐसे होगे जैसे नीग्रो के होते हैं। तो झगडा होना स्वाभाविक है कि ईश्वर के होठ कैसे हैं। भारतीयो का उत्तर दूसरा होगा। नीग्रो का उत्तर दूसरा और चीनी का उत्तर दूसरा, यह बिलकुल स्वाभाविक है। और इन झगडो को तय करने का रास्ता फिर एक ही रह जाता है कि कौन कितनी जोर से तलवार चला सकता है और कितने जोर से लोगो को मार सकता है। जो जितना ज्यादा जोर से मार सकता है और मारने मे जीत सकता है, उसका उत्तर सही है। तो उस स्कूल के इस्पेक्टर पर मत हँसिए। सारी दुनियाँ के इतिहास पर हँसिए, पडितो पर हँसिए। उत्तर के सही होने का सबूत क्या है? सबूत यह है कि हम सात करोड हैं तो तुम बीस करोड हो। सबूत यह है कि अगर तुम लड़ोगे तो हम तुम्हारी हत्या कर देगे, तुम हमारी नहीं कर पाओगे। इसलिए हम सही है। इसीलिए तो सारी दुनिया के धर्म अपनी सख्या बढाने के लिए पागल है। क्योंकि सख्या बल है और सत्य की गवाही मे सख्या के सिवा और कौन-सा बल है? यह सारी दुनियाँ के धर्मपुरोहित राजाओ को दीक्षित करने के लिए दीवाने और पागल रहे हैं। वह इसलिए कि राजा के पास बल है और जो राजा जिस धर्म मे दीक्षित हो जायगा वह धर्म सत्य हो जायगा। लडकर जो लोग यह तय करना चाहते हो कि कुरान सही है कि बाइबिल, कि गीता, उनसे ज्यादा पागल और कौन होगा? लडाई क्या किसी बात की सच्चाई का सबूत है या कि जीत जाना कोई सच्चाई का सबूत है? लेकिन इन उत्तरो का भिन्न-भिन्न होना स्वाभाविक है क्योकि वे मनुष्य की कल्पना से निकले है और मनुष्य के अपने अनुभव से निकले है। अगर आप तिब्बतियो से पूछें कि नर्क मे क्या है तो वे कहेंगे कि नर्क बहुत ठडा है, बहुत शीतल है, क्योंकि तिब्बत ठढ से परेशान है, शीत से परेशान है। तो जो तिब्बत मे पाप करते हैं

उनको ठंडी जगह में भेजना स्वाभाविक है। यह बिलकुल अनुभव की बात है कि उनको ठडी जगह में भेज दो जो पाप करते हैं। लेकिन भारतीयो से पूछिए कि तुम्हारा नर्क कैसा है तो वहाँ पर आग की लपटें जल रही है, कड़ाहें जल रहे है और उन जलते हुए कडाहों में लोगो को डाला जा रहा है, क्योकि हम गरमी से परेशान हैं, सूरज तप रहा है। हमारा नर्क गर्म होगा, यह बिलकुल स्वाभाविक है, यह हमारा अनुमान बिलकुल स्वाभाविक है। हम अपने पापी को ठडी जगह नही भेज सकते, ठडी जगह तो हम अपने मिनिस्टरों को भेजते हैं। ठडी जगह तो हम अपनी राजधानियाँ बदलते है। पापियो को ठडी जगह भेजेंगे तब तो बडी गडबडी हो जायगी, पापियो को हम गरम जगह भेजेंगे। यह हमारी कामना गरम जगह भेजने की, उनको सताने की, हमारे नर्क का निर्माण बन जाती है। नर्क हमारा गरम हो जाता है। यह हमारा अनुमान है। इस अनुमान से नर्क के होने का न पता चलता है कि वह गरम है या ठडा या वह है भी या नही। इससे केवल एक बात का पता चलता है कि किस कौम ने और किस तरह के लोगो ने यह कल्पना की है।

तो हमारे शास्त्र यह नही बताते कि सत्य कैसा है। हमारे शास्त्र यह बताते हैं कि उनको बनाने वाले लोग कैसे है। हमारी कल्पनाएँ सत्य के सम्बन्ध मे यह नही बताती कि सत्य कैसा है। यह बताती हैं कि इनकी कल्पना करने वाले लोग किस स्थिति मे है, किस मनोदशा मे है। फिर हम इनपर लडाइयाँ लडते है, इन अनुमानो पर। इन अनुमानो और इन शास्त्रो पर सारी दुनिया विभाजित और खडी है। इन हवाई बातो पर हम एक दूसरे की हत्या करते रहे है। लेकिन हम लोगो को समझाते रहे है कि तुम मरो, फिक्र मत करो। जो धर्म के लिए मरता है, वह स्वर्ग जाता है। तब ऐसे नासमझ खोज लेना कठिन नही है जो स्वर्ग जाने की उन्मुकता मे जमीन को बर्बाद करने के लिए राजी हो जायँ। और जमीन पर ऐसे पागल काफी है जिन्हे शहीद होने मे बहुत मजा आ जाता है और यह सारा हमारा इतिहास ऐसे झूठे ईश्वरो के आसपास, इर्दगिर्द निर्मित हुआ है, शब्दों के आसपास, अनुमानों के आस-पास, सत्य के निकट नही। सत्य के निकट कोई संगठन खडा नही हो सकता। संगठन हमेशा झूठ के करीब ही खडे हो सकते है। सत्य के इर्दगिर्द कोई संगठन खडा नही हो सकता। नहीं हो सकता इसलिए कि सत्य का अनुभव अत्यन्त वैयक्तिक है। समूह से उसका कोई सम्बन्ध नही है। दस आदमी

इकट्ठे बैठकर सत्य का अनुभव नहीं कर सकते। भीड़ से उसका कोई वास्ता नही है। एक व्यक्ति अपने एकान्त मे, अकेलेपन में अपने भीतर डूबता है, शान्त होता है, मौन होता है और उसे जानता है। व्यक्ति और व्यक्ति ही केवल सत्य को जानते हैं समूह और समाज नही। इकट्ठे होकर सत्य को नही जाना जा सकता। इकट्ठे होकर सगठन बनाया जा सकता है, लेकिन इकट्ठे होकर धर्म को नही पाया जा सकता।

सगठनो का ईश्वर मर गया है, मर जाना चाहिए। लेकिन धर्म का ईश्वर, वह बात ही और है। वही अकेला जीवित है, वही अकेला जीवन है। उसके अतिरिक्त तो सब मृत्यु है, उसके अतिरिक्त तो कुछ है ही नही। उसको जानने के लिए सगठन मे नही, साधना से जाना जरूरी है। साधना अकेले की बात है, सगठन भीड और समूह की। और हम सारे लोग अब तक धर्म को समूह और सगठन की बात समझते रहे है। हम समझते है कि हिन्दू हो जाना धार्मिक हो जाना है, मुसलमान हो जाना, पारसी हो जाना, धार्मिक हो जाना है। कैसी पागलपन की बातें हैं! किसी एक सगठन के हिस्से हो जाने से कोई धार्मिक होता है? धार्मिक होने का अर्थ ही कुछ उलटा है इससे। सगठन का हिस्सा होकर तो कोई धार्मिक नही होता, बल्कि सगठनो से जो मुक्त हो जाता है वह धार्मिक हो जाता है। समाज का हिस्सा होकर कोई धार्मिक नही होता। लेकिन अपने चित्त मे जो समाज से पूर्णतया मुक्त हो जाता है, वही धार्मिक हो जाता है। समाज और सगठन मे तो हम किन्ही और कारणों से इकट्ठे होते हैं, किसी भय के कारण, किसी सुरक्षा के लिए, किसी घृणा के लिए, किसी से लडने के लिए इकट्ठा होते हैं। इस भय के कारण कि मैं अकेला बहुत कमजोर हूँ, मैं दस के साथ हो जाऊँ।

फकीर मसूर को फाँसी लगाई जा रही थी। लोग उसके हाथ काट रहे थे। लाखो लोग इकट्ठे हो रहे थे और उसपर पत्थर फेंक रहे थे। वे वह व्यवहार कर रहे थे जो ईश्वर के आदमी के साथ हमेशा तथाकथित धार्मिक लोग करते हैं। उसकी आँखें फोड डाली, उसके पैर काट डाले। लेकिन वह फकीर मुस्करा रहा था और परमात्मा से प्रार्थना कर रहा था। लेकिन तभी एक फकीर ने भी, जो उस भीड मे खडा था, एक मिट्टी का ढेला उठाकर उसकी तरफ फेंका। मंसूर अब तक मुस्करा रहा था। उसकी आँखे फोड दी गई थीं। उनसे खून बह रहे थे। उसके पैर काट लिये गए थे। वह मरने के

करीब था। उस पर पत्थर मारे जा रहे थे जो उसके शरीर को क्षत-विक्षत कर रहे थे लेकिन वह हँस रहा था और उसकी आँखो मे, उसके हृदय मे इस सारी पीडा और दुख के बीच भी प्रेम था। लेकिन उस मिट्टी का ढेला जो उस फकीर ने फेंका था, उसके लगने पर मसूर रोने लगा। लोग बडे हैरान हुए और एक आदमी ने पूछा कि तुम्हें इतना सताया गया, तुम नही रोए और एक छोटे-से मिट्टी के ढेले फेकने से इतने दुखी हो गए? उसने कहा, और सबको तो मैं सोचता था कि नासमझ हैं, इसलिए परमात्मा मे उनके लिए प्रार्थना करता था। मुझे कोई दुख नही था। लेकिन वह आदमी जो खडा है, वह फकीर है। वह वस्त्र पहने हुए है परमात्मा के और उसने भी मुझे ढेला मारा है। मुझे हैरानी हुई, तो मेरी आँखो मे आँसू आ गए। जब फकीर ही ढेला मारेगा तो दुनियाँ का क्या होगा। लेकिन फकीर तो बहुत दिनो से पत्थर मार रहे है और इसीलिए तो दुनियाँ का यह हाल हो गया है। भीड बिखर गई और वह आदमी मसूर तो मर गया और सुवास उड गई। उस फकीर से कुछ दूसरे फकीरो ने पूछा कि तुमने ढेला क्यो मारा, तो उसने कहा कि भीड का साथ देने के लिए। अगर मै भीड का साथ नही देता तो लोग समझते कि पता नही, यह भी मसूर को पसन्द करता है। उन फकीरो ने कहा, पागल, अगर साथ ही देना था तो उसका देना था जो अकेला था। साथ भी दिया उनका जो बहुत थे। उन फकीरो ने उससे कहा कि फकीरी के कपडे छोड दे, क्योकि जो भीड से डरता है, वह धार्मिक नही हो सकता। अगर भीड ही धार्मिक होती तो दुनिया मे अधर्म कैसे होता? अगर भीड धार्मिक होती तो फिर अधर्म और कहाँ होता? भीड तो अधार्मिक है, इसलिए जो भीड से भयभीत है और भीड का अग बना रहता है वह कभी भी धार्मिक नही हो पायगा। भीड से मन को मुक्त होना चाहिए। इसका यह मतलब नही कि मैं आपसे यह कह रहा हूँ कि आप भीड को छोड दें और जगल मे चले जायँ। जमीन बहुत छोटी है, अगर सारे लोग जगलो मे चले गए तो वहाँ बस्तियाँ बस जायँगी। उससे कोई फर्क नही पडेगा। यह मैं नही कह रहा हूँ कि आप गाँव छोड दें और जंगलो मे चले जायँ। कुछ लोगो ने यह गलती भी की है। जब उनसे यह कहा जाता है कि तुम भीड से मुक्त हो जाओ तो भीड को छोडकर भागने लगते है। भागने वाला कभी मुक्त नही होता। भागने वाला भी डरने वाला है। अगर

मुक्त होना है तो बीच में रहो और मुक्त हो जाओ। वह अभय का सुबूत होगा।

दो तरह के लोग हैं। भीड मे रहते हैं तो भीड से डरकर और दबकर रहते हैं। यही डरे हुए लोगो को जब कभी यह खयाल पैदा होता है कि मुक्त हो जायें तो ये जगल की तरफ भागते हैं, क्योकि वहाँ भीड ही नही रहेगी तो डराये कौन ? सवाल यह नही है कि डराने वाला न हो। सवाल यह है कि आप डरने वाले न रहें। इसलिए जगल जाने से कुछ भी नही होगा। जो जगल भागता है वह भयभीत है। जिन्दगी से भागने वाला धर्म सच्चा धर्म नही हो सकता। जिन्दगी के बीच, जहाँ जीवन चारो तरफ है, वही मुक्त हुआ जा सकता है। मुक्त होने का मतलब कोई शारीरिक और बाह्य मुक्ति नही है। मुक्त होने का मतलब है मानसिक स्वतत्रता, मुक्त होने का मतलब है मानसिक गुलामी को तोड देना। मुक्त होने का मतलब है भीड ने जो विश्वास दिए है, उनसे छूट जाना। भीड ने जो बातें पकडा दी हैं—हिन्दू होना, मुसलमान होना, इस मदिर को पवित्र मानना, उस मदिर को पवित्र नही मानना, ये जो बातें पकडा दी है, ये जो शब्द पकडा दिए है, ये जो सिद्धान्त पकडा दिए है इनसे मुक्त हो जाना। और मन की उस स्वतन्त्रता को पाकर ही सत्य की निजी वैयक्तिक खोज शुरू होती है। जो व्यक्ति दूसरे से उधार सत्यो को स्वीकार करके चुप हो जाता है उस आदमी की खोज सत्य के लिए नही है, क्योकि सत्य कभी भी उधार नही हो सकता। जो भी चीज उधार ली जा सकती है वह ससार की होगी। और जो चीज कभी उधार नही पाई जा सकती, वही केवल परमात्मा की हो सकती है। परमात्मा को उधार नही लिया जा सकता, परमात्मा कोई ऐसी चीज नही है जो हस्तान्तरणीय हो, जिसे मैंने आपको दे दिया और आपने किसी और को दे दिया। जीवन मे जो भी श्रेष्ठ, जो भी सत्य है, जीवन मे जो भी सुन्दर है, जीवन मे जो भी शिव है वह कुछ भी एक हाथ से दूसरे हाथ मे नही दिया जा सकता। उसे तो सीधे स्वय ही अपनी खोज, अपने प्राणो के आन्दोलन, अपने हृदय की प्रार्थनाओ, अपने जीवन की प्यास मे ही पाना होता है। वह निजी और वैयक्तिक खोज है।

समूह का ईश्वर मर गया है, मर जाने दें। सहारा दे कि वह मर जाय। सगठन का ईश्वर मर गया है। जाने दें। उसे रोकें न, घबरायें न कि उसके जाने से दुनिया का धर्म चला जायगा। उसके होने की वजह से दुनिया मे धर्म

नही आ सका है। उसे जाने दें और उस ईश्वर की आकाक्षा करें, उस ईश्वर की प्रतीक्षा करें, उस ईश्वर की प्रार्थना करे और प्रेम से भरें जो व्यक्ति का है, इकाई का है, समूह का और सगठन का नही है। मर जाने दें हिन्दू को, मुसलमान को, मर जाने दें बौद्ध को, बिदा हो जाने दें दुनिया से। कोई जरूरत नही है। समूह के ईश्वर मे बडी सुविधा है। आपको बिना खोजे धार्मिक हो जाने का मजा आ जाता है। बिना जाने जानने का सुख मिल जाता है। बिना धार्मिक हुए धार्मिक होने का अहकार तृप्त हो जाता है। रोज सुबह उठकर किसी मदिर मे हो आते हैं और अकड़कर चलते हैं कि मैं धार्मिक हूँ। रोज सुबह किसी किताब को उठाकर पढ लेते हैं और जानते हैं कि मैं धार्मिक हूँ। अगर यह रोज सुबह उठकर किसी किताब को पढनेवाले लोग धार्मिक हैं, अगर ये रोज मदिर मे जाने वाले लोग धार्मिक हैं, तो दुनिया मे इतना अधर्म क्यो हैं ? यह अधर्म कहाँ से आ रहा है ? सच तो यह है कि जो आदमी पचास वर्ष तक एक ही किताब को रोज-रोज पढता रहा है, मैं निवेदन करूँगा कि उसने उस किताब को एक-दो दिन मे नहीं पढा होगा, क्योकि अगर पढ लिया होता तो दोबारा दोहराने की जरूरत नही होती। अगर उसने जान-लिया होता तो दोबारा पढने का कोई सवाल नही होता, लेकिन उसे रोज दोहराता रहा है मशीन की भाँति, यत्र की भाँति। पहले दिन जब उसने पढा होगा तब शायद कुछ समझा भी होगा। पचास वर्ष पढने के बाद वह जो पढेगा कुछ भी नही समझेगा। क्योकि अब तो वह यत्र हो की भाँति दोहराने मे समर्थ हो गया है। अब उसे किताब पढने की जरूरत नही है। अब तो उसके पास शब्द इकट्ठे हो गए हैं जिसको वह दोहरा लेता है। हमारा धर्म इन शब्दो का और इन सगठनो का धर्म रह गया है। ऐसे धर्म से मनुष्य के लिए कोई भविष्य नही है। ऐसे धर्म को जाने दें।

मैंने उस आदमी से उस पहाड पर कहा था कि जरूर मर गया है ईश्वर, लेकिन यह चिन्ता की बात नही है। यह खुशी का अवसर है। यह स्वागत के योग्य घटना है, क्योकि इससे यह सम्भावना बनती है कि शायद हम उस ईश्वर को खोज सकें जो वस्तुत है। शायद हम उस धर्म को जान सकें, शायद हमारे प्राण उस धर्म की खोज मे गतिमान हो सकें जो जीवन को रूपान्तर कर देगा, जिसके द्वारा जीवन प्रेम से और आनन्द से और आलोक से भर जाय, तो हम कहेंगे कि वह धर्म है। जिसके द्वारा जीवन इन सारी बातों से न भरा

हो, अंधकार अपनी जगह रहा हो और धर्म की पूजाएँ और प्रार्थनाएँ एक तरफ चलती रही हो और दुनियाँ की दीनता और दरिद्रता और दुख और दुर्भाग्य, कुछ भी परिवर्तित न हुआ हो और मनुष्य वैसे का वैसा ही रहा हो जैसा हजारो साल पहले था, तो ऐसे धर्म को लेकर क्या करेंगे, ऐसे धर्म को जिन्दा रखकर क्या करेंगे ?

एक फकीर एक सुबह मस्जिद के पास से निकलता था। अधा था, आँखें नही थीं। उसने मस्जिद के द्वार पर हाथ फैलाए और कहा कि मुझे कुछ मिल जाय। किसी राह चलते ने कहा कि तू पागल है, यह तो मस्जिद है, यहाँ क्या मिलेगा ? यह तो परमात्मा का घर है, कही और माँग। वह फकीर भी अजीब रहा होगा। उसने कहा कि जब परमात्मा के घर कुछ नही मिलेगा तो फिर किस घर से मिलेगा। वह वही बैठ गया। उसने कहा कि अब तो यहाँ से तभी विदा होगे जब कुछ मिल जायगा, क्योकि यह तो आखिरी घर आ गया। जब इसके आगे घर कहाँ है ? और यदि यहाँ नही मिलने वाला है तो फिर हाथ फैलाए रखना व्यर्थ है ? फिर अब आगे कहाँ जाऊँगा ? यह तो अतिम घर आ गया। इसके बाद घर और कौन-सा है। वह वही रुक गया। आँखें उसकी जरूर अधी रही होगी, लेकिन हमसे ज्यादा देखने की उसमे ताकत रही होगी। उसने हाथ उठा लिये। एक वर्ष वह उस द्वार से नही हटा। दिन आए, गए, रातें आई, गई, वर्षा आई, बीती, मौसम आए और गए, चाँद उगे और ढले, लोग हैरान थे। वह फकीर वहाँ बैठा रहा। कोई आ जाता और दे जाता तो भोजन कर लेता। कोई पानी दे जाता तो वह पानी पी लेता। लेकिन उस द्वार से नही हटा। और बरस पूरे होते-होते एक दिन सुबह लोगो ने देखा कि वह नाच रहा है और उसकी अधी आँखो मे भी एक अद्भुत सौन्दर्य की झलक मालूम हो रही है और उसके मुर्झाये चेहरे मे कोई नया जीवन आ गया है। उसने लकडी फेक दी। वह नाच रहा है और कृतज्ञता के शब्द बोल रहा है। लोगो ने पूछा कि क्या हुआ है ? उसने कहा कि यह मुझमे मत पूछो, मुझे देखो और समझो। आप मुझसे यह मत पूछें कि क्या हुआ है ? अब मुझे देखें और समझे। मेरी अधी आँखो मे दिखाई पडने लगा है। अब मैं देख रहा हूँ। तुमको नही, बल्कि उसको जो तुम्हारे भीतर है। अब मैं देख रहा हूँ उसको, जिसकी खोज थी। और अब मैं देख रहा हूँ कि कही कोई मृत्यु नही, और अब मैं देख रहा हूँ कि कोई दुख नही

है। मैं देख रहा हूँ कि मैं तो मिट गया हूँ लेकिन मिटकर भी मैंने कुछ पा लिया है, जो उससे बहुत ज्यादा बहुमूल्य है जो मैंने खोया है। मैंने कुछ नही खोया पर मैंने सब कुछ पा लिया है। लेकिन यह मुझसे मत पूछो। और लोगो ने देखा कि उससे पूछने की कोई भी जरूरत नही। उसका आनन्द कह रहा था, उसका सगीत कह रहा था, उसका गीत कह रहा था, उसका नृत्य कह रहा था। अगर दुनिया में धर्म होगा तो लोगों का आनन्द कहेगा, लोगों का प्रेम कहेगा, लोगो के गीत कहेंगे। अभी तो लोगो के पास सिवा आँसुओ के कुछ भी नही है और उनके हृदय मे सिवा अधकार के कुछ भी नही है। उनके मस्तिष्क सिवा उलझन, तनाव और अशाति के किसी चीज से परिचित नही हैं। यह ससार के लोगो का हाल है। इस हालत मे कैसे धर्म हो सकता है?

इसलिए जो धर्म है, वह धर्म नही है। लोगो के आँसू इसके सबूत हैं। लोगो का अधकार इसका सबूत है। तो यह आँसुओ और अंधकारवाला ईश्वर मर गया है, यह अच्छा है।

मै युवक किसे कहता हूँ ?

(युवक से अर्थ है ऐसा मन जो सदा सीखने को तत्पर है—ऐसा मन जिसे यह भ्रम पैदा नही हो गया है कि जो भी जानने योग्य था वह जान लिया गया है, ऐसा मन जो बूढा नही हो गया है और स्वय को रूपातरित करने और बदलने को तैयार है। बूढे मन से अर्थ होता है ऐसा मन, जो अब आगे इतना लोचपूर्ण नही रहा है कि नए को ग्रहण कर सके, नए का स्वागत कर सके। बूढ़े मन का अर्थ है पुराना पड गया मन।) उम्र से उसका कोई भी सबध नही है। शरीर की उम्र होती है, मन की कोई उम्र नही होती। मन की दृष्टि होती है, धारणा होती है।

इस देश मे हजारो वर्षों से युवको का पैदा होना बन्द हो गया है। हर देश का बचपन आता है और बुढ़ापा आता है। युवक कभी भी पैदा नही होता। वह बीच की कडी है जो खो गई है, इसीलिए तो देश इतना पुराना पड गया है, इतना जरा-जीर्ण हो गया है, इतना बूढा हो गया है। जिस देश मे युवक होते है उस देश मे इतने बुढापे आने का कोई भी कारण नही है। इससे ज्यादा बूढा देश पृथ्वी पर और कही नही है। हमारी पूरी आत्मा बूढी और पुरानी पड गई है। हमारी सारी तकलीफ और पीडा के पीछे बुनियादी कारण यही है कि हमारे पास युवा चित्त, यग माइड नही है। युवा चित्त का अर्थ है जो सख्त नहीं हो गया, कठोर नही हो गया, पत्थर नही हो गया, अभी बदल सकता है, रूपान्तरित हो सकता है, अभी सीख सकता है। उमने सब कुछ सीख नही लिया।

स्वामी रामतीर्थ की उम्र केवल तीस वर्ष थी और वे हिन्दुस्तान के बाहर गए थे। पहली बार उन्होने जापान की यात्रा की। वे जिस जहाज पर सवार थे उस जहाज पर एक जापानी बूढ़ा, जिसकी उम्र कोई ९० वर्ष होगी, जिसके हाथ-पैर कँपते थे, जिसके चलने मे तकलीफ होती थी, जिसकी आँखें कमजोर पड गई थी, चीनी भाषा सीख रहा था। चीनी भाषा जमीन पर बोली जानेवाली कठिनतम भाषाओ मे से एक है। चीनी भाषा को सीखना सामान्यतया बहुत श्रम की बात है। कोई दस पन्द्रह बर्ष, बीस वर्ष ठीक से मेहनत करे तो चीनी भाषा मे ठीक से निष्णात हो सकता है। बीस वर्ष जिसके लिए मेहनत करनी पडे, ९० वर्ष का बूढा उसे अब सीखना शुरू कर रहा हो, अवश्य पागल है। कब सीखेगा वह ? कब सीख पायगा ? कौन-सी आशा है उसको बीस साल बच जाने की ? और अगर बीस साल बच भी जाय और निष्णात भी हो जाय चीनी भाषा मे, तो उसका उपयोग कब करेगा ? जिस चीज को सीखने मे पन्द्रह-बीस वर्ष खर्च करने पडे उसके लिए भी तो पच्चीस-पच्चास वर्ष हाथ मे चाहिए। यह उपयोग कब करेगा ? रामतीर्थ उसको देख-देखकर परेशान हो गए और वह सुबह से शाम तक सीखने मे लगा हुआ है। बरदास्त के बाहर हुआ तो उन्होने तीसरे दिन उससे पूछा कि क्षमा करें, आप इतने वृद्ध हैं, ९० वर्ष पार कर गए मालूम पड़ते हैं, आप यह भाषा सीख रहे हैं, यह कब सीख पायेंगे ? कितना बच पायेंगे आप सीखने के बाद, कब इसका उपयोग करेंगे ? उस बूढ़े आदमी ने

आँखें ऊपर उठाईं और उससे पूछा, तुम्हारी उम्र कितनी है ? रामतीर्थ ने कहा, मेरी उम्र कोई तीस वर्ष होगी। वह बूढा हँसने लगा और उसने कहा, मैं अब समझ पाता हूँ कि हिन्दुस्तान इतना कमजोर, इतना हारा हुआ क्यों हो गया है। जब तक मैं जिन्दा हूँ और मर नहीं गया हूँ तबतक कुछ न कुछ सीख ही लेना है, नही तो जीवन व्यर्थ हो जायगा। मरना तो एक दिन है। वह तो जिस दिन मैं पैदा हुआ उसी दिन से तय है, मरना एक दिन है। अगर मैं मृत्यु का ध्यान रखता तो शायद कुछ भी नही सीख पाता क्योकि एक दिन मरना है, लेकिन जबतक जिन्दा हूँ मैं पूरी तरह जिन्दा रहना चाहता हूँ और पूरी तरह जिन्दा वही रह सकता है जो जीते-जीते एक-एक पल का, एक-एक क्षण का नया कुछ सीखने मे उपयोग कर रहा है।

जीवन का अर्थ है नए का रोज-रोज अनुभव। जिसने नए का अनुभव बन्द कर दिया है वह मर चुका है, उसकी मृत्यु कभी की हो चुकी। उसका अस्तित्व बेकार है, मरने के बाद अब वह किसी तरह जी रहा है। उस बूढ़े आदमी ने कहा, मैं सीखूंगा, जबतक जीता हूँ और परमात्मा से एक ही प्रार्थना है कि जब मैं मरूँ तो मृत्यु के क्षण मे भी सीखता हुआ मरूँ ताकि मृत्यु, मृत्यु-जैसी न मालूम पड़े। वह भी जीवन प्रतीत हो।

सीखने की प्रक्रिया है जीवन। ज्ञान की उपलब्धि है जीवन, लेकिन इस देश का दुर्भाग्य है कि हमने सीखना तो हजारो साल से बन्द कर दिया है। हम नया कुछ भी सीखने को उत्सुक और आतुर नही है। हमारे प्राणो की प्यास ठडी पड गई है, हमारी चेतना की ज्योति ठडी पड गई है, हमे एक भ्रम पैदा हो गया है कि हमने सब सीख लिया है, हमने सब पा लिया, हमने सब जान लिया। जानने को अनत शेष है। आदमी का ज्ञान कितना ही ज्यादा हो जाय, उस विस्तार के सामने कुछ नही है जो सदा जानने को शेष रह जाता है। ज्ञान तो थोडा है, अज्ञान बहुत बडा है। उस अज्ञान को जिसे तोडना है उसे सीखते ही जाना होता है, सीखते ही जाना होगा। लेकिन भारत मे यह सीखने की प्रक्रिया और युवा होने की धारणा ही खो गई है। यहाँ हम बहुत जल्दी सख्त हो जाते है, कठोर हो जाते है, लोच खो देते हैं। बदलाहट की क्षमता, रिसेप्टीविटी की सामर्थ्य सब खो देते है। एक जवान आदमी से बातें करो तो वह इस तरह बात करता है जैसे उसने अपनी सारी धारणाएँ सुनिश्चित कर ली हैं। उसका सब 'ज्ञान ठहर गया है, उसकी आँखो मे इक्वायरि

नहीं मालूम होती, खोज नही मालूम होती। ऐसा लगता है उसने पा लिया है, जान लिया है, सब ठीक-ठीक है। आगे अब कुछ करने को शेष नहीं रह गया है। प्राण इस तरह बूढे हो जाते हैं, व्यक्तित्व इस तरह जराजीर्ण हो जाता है और हजार वर्षों से इस देश का व्यक्तित्व जराजीर्ण है।

युवा चेतना का दूसरा लक्षण है साहस। भारत से साहस भी खो गया है, सीखना भी खो गया है, जिज्ञासा भी खो गई। हम तो अँधेरे मे जाने से भी भयभीत होते है, अनजान रास्ते पर जाने से भयभीत होते हैं, सागर मे उतरने से भयभीत होते है। जो इन अनजान चीजो से भयभीत होता है वह चेतना के अनजाने लोको मे कैसे प्रवेश करेगा, वहाँ वह डरकर लौट आयगा, वही बैठा रहेगा जहाँ है। जीवन की कुछ अनजान गहराइयाँ, ऊँचाइयाँ हैं, उनकी यात्रा भी बन्द है। हमने कुछ सूत्र याद कर लिये हैं, हम उन्ही को याद करके चुप बैठे रह जाते हैं। व्यक्तित्व हमारी एक साहसपूर्ण खोज नही है, न बाहर का ही जगत है। हिमालय पर चढ़ने के लिए बाहर से यात्री आते रहे है, प्रतिवर्ष उनके दल के दल आते रहे हैं। वे मरते रहे, टूटते रहे, पहाडो से गिरते रहे, खोते रहे, लेकिन उनके दलो के आने मे कमी नही हुई, वे आते रहे। हिमालय पर चढना था, एक अज्ञात शिखर बाकी था जहाँ मनुष्य के पैर नही पहुँचे थे। लेकिन हम ? हम हँसते रहे कि कैसे पागल है, क्या जरूरत है एवरेस्ट पर जाने की, क्या प्रयोजन है ? क्यो अपनी जान जोखिम मे डालते हैं ? हम हँसते रहे कि ये पागल है, क्योंकि अपनी जान जोखिम मे डालते हैं। हमने, जिनका एवरेस्ट है, उसपर चढने की कोई तीव्र आकाक्षा पैदा नही की। यह सवाल एवरेस्ट पर चढने का और हिन्द महासागर की गहराइयो मे उतर जाने का ही नही है। इससे हमारे व्यक्तित्व का पता चलता है कि हम अज्ञात के प्रति आतुर हैं कि उसका पता उघाड लेंगे, उसे हम जानने मे लग जायँगे। फिर जीवन का बहुत-कुछ अज्ञात है, पदार्थ का अज्ञात लोक है, साइस उसे खोजती है। हमने कोई साइस विकसित नही की।

तीन हजार वर्ष के लवे इतिहास मे हमने कोई साइस विकसित नही की। क्यो ? एक ही उत्तर हो सकता है कि हमे अज्ञातता की पुकार सुनाई नही पडती। वह जो अज्ञात है, वह जो चारो तरफ से घेरे हुए है वह हमे बुलाता है लेकिन हमे सुनायी नही पडता। हम बहरे हो गए हैं, हमे तो जो ज्ञात

है, उसी के घर में बैठकर जी लेते है और समाप्त हो जाते हैं। क्यो हमे अज्ञात की पुकार सुनाई नहीं पड़ती ? अज्ञात का आवाहन हमारे प्राणो को आदोलित नहीं करता, क्यों ? इसलिये कि हमारे भीतर साहस नही है क्योकि अज्ञात को जानने के लिए साहस चाहिए। ज्ञात को जानने के लिए किसी साहस की जरूरत नही है। इसीलिए तो भारत ने कभी भारतवासियो के बाहर जाकर अभियान नहीं किए। उन्होने कोई लबी यात्राएँ नही की, उन्होने पृथ्वी की कोई खोज-बीन नहीं की। वे दूर-दूर उत्तर ध्रुवो तक नही गए, नहीं दक्षिण ध्रुव तक। न ही वे आज चाँद-तारो पर जाने की आकाक्षा से भरे है। साहस नही है। साहस की कमी होती है तो हम वही रहना चाहते हैं जहाँ परिचित लोग हैं, जहाँ जाना-माना है, उसी रास्ते पर चलते हैं जिसपर बहुत बार चल-चुके है क्योकि अनजान रास्ते पर काँटे हो सकते हैं, गड्ढे हो सकते हैं, भटकना हो सकता है। अनजान रास्ते पर भूल हो सकती है, अनजान रास्ते पर हम खो सकते है। इन सारे भयो ने हमें इतना पकड लिया है कि हम ज्ञात पर ही चलते हैं कोल्हू के बैल की तरह चक्कर लगाते रहते है। लकीर है जानी हुई, वह पीटते रहते हैं।

इस प्रकार कभी इस देश की आत्मा का उदय होगा ? ऐसे भयभीत होकर कभी इस देश के प्राण जागरूक हो सकेंगे ? ऐसे डरे-डरे हम जगत की दौड़ मे साथ खडे हो सकेंगे जहाँ चेतनाएँ दूर-दूर की यात्रा कर रही हो, जहाँ रोज अज्ञात की पुकार सुनी जाती हो, जहाँ रोज अज्ञात की दिशा मे कदम रखे जाते हो, जहाँ जीवन के एक-एक रहस्य में प्रवेश करने की सारी चेष्टा की जा रही हो ? सारी दुनिया के युवको के सामने हमारा बूढ़ा और पुराना देश खडा रह सकेगा ? हम जी सकेंगे उनके सामने ? नही, हम नही जी सकेंगे। और फिर हमारे नेता कहते हैं कि हमारा युवक सिर्फ नकल करता है। नकल नही करेगा तो क्या करेगा ? अपनी तो कोई खोज नही कर सकता है, इसलिए जो खोज करते हैं उनकी नकल करने के सिवा हमारे पास कुछ भी नही बचा है, हमारा पूरा व्यक्तित्व इमीटेशन है, पश्चिम का। हम पश्चिम की नकल कर रहे हैं। करगे हम, क्योकि उनके साथ खडे होने का इसके अतिरिक्त कोई उपाय नही है। हमारी तो अपना कोई खोज नही है, हमारा तो अपना कोई उद्घाटन नही, अन्वेषण नही, हमारा तो अपना कोई शोध नहीं, हमारे तो अपने कोई रास्ते नही। हमे उनकी नकल करनी ही पडेगी। और ध्यान रहे, एक-

दो बार जब हम बाहर के जगत मे नकल करना शुरू करते हैं तो भीतर हमारी आत्मा मरनी शुरू हो जाती है। क्यो ? क्योकि आत्मा कभी भी नकल नही बन सकती। आत्मा कार्बन कापी नहीं बन सकती। आत्मा का अपना व्यक्तित्व है, अनूठा, यूनिक। और जब भी हम बाहर से नकल करना शुरू करते हैं तभी भीतर हमारे प्राण सिकुड जाते हैं, मुर्झा जाते हैं, क्योकि उन प्राणो को अपनी प्रतिमा का अपना मार्ग होता है। बाहर से नकल करने वाले लोग भीतर से मर जाते है, लेकिन हम हमेशा नकल करते रहे हैं।

आप कहेगे कि पश्चिम की नकल तो हमने अभी शुरू की है। पहले ? पहले हम अतीत की नकल करते थे। अब पश्चिम की नकल कर रहे है। इतना फर्क पडा है और कोई फर्क नही पडा। पहले हम जो बीत चुका था उसकी नकल करते थे, जो हो चुका था, जा चुका था, उस इतिहास की, जो पीछे था। उसकी हम नकल करते थे क्योकि कटेम्परेरी जगत का हमे पता ही नही था। हमारे सामने एक ही बीता हुआ जगत था और हम थे, तो बीते की नकल करते थे। राम की, कृष्ण की, बुद्ध की, महावीर की हम नकल करते थे। हम अतीत की नकल करके जीते थे। अब हमारे सामने कटेम्परेरी वर्ल्ड खुल गया है। अब इतिहास धुँधला मालूम होता है। चारो तरफ फैली हुई दुनिया हमे ज्यादा स्पष्ट दिखाई पडती है। हम उसकी नकल कर रहे हैं। लेकिन हम हजारो साल से नकल ही कर रहे है चाहे बीते हुए लोगो की और चाहे हमसे दूर जो आसपास खडा हुआ जगत है उसकी। लेकिन हमने अपनी आत्मा को विकसित करने की हिम्मत खो दी।

युवक साहस को पुनरुज्जीवित करना चाहता है बाहर के जगत-जीवन मे भी और अतस् के जगत और जीवन मे भी। साहस जूट सके, वह कारा टूट सके, दीवाले टूट सके और भीतर से साहस की धारा बह सके उसकी फिक्र करनी है। लेकिन हमारी सारी धारणाएँ साहस के विरोध मे है। अगर साहस करना है तो सदेह करना पडेगा और अगर साहस नही करना है तो विश्वास कर लेना हमेशा अच्छा है। साहस करना है तो डाउट चाहिए और अगर साहस नही करना है तो फेथ, श्रद्धा, विश्वास। हमारा सारा देश विश्वास करनेवाला देश है। हमे जो कहा जाता है मान लेना है, उसपर सोचना नही है, विचार नही करना है क्योकि सोचने और विचार करने में फिर खतरा है। हो सकता है मानी हुई मान्यताओ से विपरीत हमे जाना पडे। शुतुर्मुर्ग निकलता

है और अगर दुश्मन उसका आ जाय तो वह रेत में मुँह गडा कर खड़ा हो जाता है। आँखें बन्द हो जाती हैं रेत मे तो शुतुर्मुर्ग को दिखाई नही पडता है। दुश्मन खुश हो जाता है। वह मान लेता है कि जो दिखाई नही पडता वह नही है। शुतुर्मुग को क्षमा किया जा सकता है, आदमी को क्षमा नही किया जा सकता। लेकिन भारत शुतुर्मुर्ग के तर्क का उपयोग कर रहा है आजतक। वह कहता है, जो चीज नही दिखाई पडती वह नही है, इसलिए विश्वास का अधापन ओढ लेता है और जीवन को देखना बन्द कर देता है। आँख बन्द कर लेने से हम अधे हो सकते है लेकिन तथ्य बदल नही जाते। हम सारे तथ्यो को छिपाकर जी रहे हैं, क्योकि विश्वास की एक गैर साहसपूर्ण धारणा हमने पकड ली है। सन्देह की साहसपूर्ण यात्रा हमारी नही है। इस वजह से कि साहस कम हो गया है, अकेले होने की हिम्मत हमारी समाप्त हो गई है। और ध्यान रहे, युवक का अनिवार्य लक्षण है अकेले होने की हिम्मत। यह युवक होने का एक अनिवार्य लक्षण है। हम भीड के साथ खडे हो सकते है। जहाँ सारे लोग जाते है वहाँ हम जा सकते हैं। हम वहाँ नही जा सकते जहाँ आदमी को अकेला जाना पडता है। नई जगह तो आदमी को सदा अकेला जाना पडता है। किसी एक व्यक्ति को अकेले चलने की हिम्मत करनी पडती है, क्योकि भीड तो पहले प्रतीक्षा करेगी कि पता नही रास्ता कैसा है। अकेले आदमी को हिम्मत जुटानी पडती है। हमने अकेले होने की हिम्मत कब खो दी, पता नही। फिर वह जो यग माइंड है वह हममे पैदा नही हो पाता।

अकेले होने का साहस एक-एक युवक मे पैदा होना चाहिए। जिस दिन एक-एक युवक अकेला खडे होने की हिम्मत करता है उसी दिन पहली बार उसकी आत्मा प्रकट होनी शुरू होती है। जब वह कहता है कि चाहे सारी दुनिया यह कहती हो लेकिन जबतक मेरा विवेक नही मानता, मैं अकेला खडा रहूँगा। मैं सारी दुनिया के प्रवाह के विपरीत तैरूँगा। नदी जाती है पूरब। मुझे नही प्रतीत होता। मुझे विवेक नही कहता कि मै पूरब जाऊँ। मैं पश्चिम की तरफ जाऊँगा और टूट जाऊँगा, नदी की धार मे। लेकिन कोई फिक्र नही। धार के साथ तभी तैरूँगा जब मेरा विवेक मेरे साथ होगा। जिस दिन कोई व्यक्ति जीवन की धारा के विपरीत अपने विवेक के अनुकूल तैरने की कोशिश करता है पहली बार उसके जीवन मे वह चैलेन्ज आती है, वह सघर्ष आता है, वह स्ट्रगल आती है जिसमे सघर्ष और चुनौती मे गुजर कर उसकी आत्मा

निखरती है, साफ होती है। आग से गुजर कर पहली दफा उसकी आत्मा कुन्दन बनती है, स्वर्ण बनती है। लेकिन वह साहस हमने खो दिया। अकेले होने की हिम्मत हमने खो दी।

मैंने सुना है, एक स्कूल मे एक पादरी कुछ बच्चो को समझाने गया था। वह उन्हे नैतिक साहस की बाबत समझाता था। उस पादरी से एक बच्चे ने पूछा कि आप कोई छोटी कहानी से समझा दें तो शायद हमे समझ मे आ जाय। तो उस पादरी ने कहा कि तुम–जैसे तीस बच्चे अगर पहाड पर घूमने गए हों और दिनभर के थके–माँदे वापस लौटे हो, ठडी हो रात, थकान हो, हाथ-पैर टूटते हो, बिस्तर आमत्रण देता हो, बढिया बिस्तर हो, अच्छे कम्बल हो, उनमे सोने का मन होता हो, उन्तीस लडके शीघ्र जाकर अपने-अपने बिस्तरो पर सो गए है, सर्दी की रात मे। लेकिन एक बच्चा एक कोने मे बैठकर घुटने टेक कर रात्रि की अतिम प्रार्थना कर रहा है। तो उस पादरी ने कहा कि उस बच्चे को मै कहता हूँ कि उसमे साहस है, जबकि उन्तीस बच्चे सोने के लिए चले गए हैं। उन्तीस बच्चो का टेम्पटेशन है। भीड के साथ होने की सुविधा है। कोई कुछ कहेगा नही, कुछ कहने की बात नही है, लेकिन नही, वह अपनी रात्रि की अतिम प्रार्थना पूरी करता है और वह भी सर्द रात मे थके हुए। इसे मै साहस कहता हूँ—नैतिक साहस, अकेले होने का साहस। महीने भर बाद वह फिर आया उस स्कूल मे और उसने कहा कि पिछली बार मैने नैतिक साहस के बारे मे बात कही थी। क्या तुम कोई नैतिक साहस की कहानी सुना सकते हो? एक बच्चा खडा हुआ। उसने कहा कि मैंने बहुत सोचा और मुझे याद आया कि उससे भी बडा नैतिक साहस की एक घटना हो सकती है। उस बच्चे ने कहा—मान लीजिए आप-जैसे ३० पादरी पहाड पर गए हुए है दिन भर के थके-माँदे, भूखे-प्यासे। रात सर्द है, वापस लौटे हैं। तीसो पादरी है, दिन भर की थकान, ठण्डी रात आधी रात। २९ पादरी प्रार्थना करने बैठ गए है और एक पादरी बिस्तर पर जाकर सो गया है। उस बच्चे ने कहा, यह पहले साहस से ज्यादा बडा साहस है, क्योकि हो सकता है कि पहला बच्चा यह सोच रहा हो कि मै धार्मिक हूँ और ये सब नास्तिक, अधार्मिक सो रहे है। सो जाओ, नर्क मे सडोगे, यह सोच सकता है वह बच्चा। अक्सर धार्मिक और प्रार्थना करनेवाले लोग इसी भाषा मे सोचते हैं कि दूसरे को कैसे नर्क मे सडवा दें। जो चिंतन या प्रार्थना करते है, उपवास करते हैं उतना ही क्रोध

उनका दुनिया के ऊपर बढ़ता चला जाता है। वे कहते हैं, एक-एक को नर्क में डलवा देंगे। सड़क पर जिसको भी देखते हैं कि कुछ चमकदार और रंगीन, खूबसूरत कपड़े पहने हुए हैं, मन ही मे सोचते हैं, नर्क में सड़ोगे। किसी को थोड़ा मुस्कराते देखते हैं तो सोचते हैं सड़ोगे नर्क मे। वह अपनी गमगीन और रोती हुई आत्मा का बदला तो लेंगे किसी से। उस बच्चे ने कहा कि वह बच्चा यह मजा ले रहा हो कि कोई फिक्र नही, आज मै अकेला हूँ तो कोई फिक्र नहीं है, नर्क की अग्नि मे सड़ोगे तो मै अकेले खड़ा देखूंगा, २९ सड़ते होगे। इसलिए, वह साहस बहुत बड़ा नही भी हो सकता है, लेकिन दूसरा साहस, उसने कहा, बहुत बड़ा है। २९ पादरी जब स्वर्ग जाने की व्यवस्था कर रहे है, तब एक बेचारा नर्क जाने की तैयारी कर रहा है, तब उसे कोई सात्वना भी नही है कि इनको नर्क भेज दूंगा, टेम्पटेशन बड़ा है तब उसे यह भी पता है कि यह २९ दुनिया मे जाकर कल सुबह क्या कहेगे। हो सकता है रात भी न सो पाये। धार्मिक आदमी बड़े खतरनाक होते है। हो सकता है, आधी रात मे पड़ोसी को जगा कर कह आयें कि पता है, उस पादरी की अब फिक्र मत करना, वह आदमी भ्रष्ट हो गया है, उसने आज प्रार्थना नही की। चाहे पहला साहस रहा हो या दूसरा, लेकिन साहस का अर्थ हमेशा अकेले होने का साहस है।

क्या आप युवक है? अगर युवक है तो ध्यान रहे जीवन मे अकेले खड़ा होने की हिम्मत जुटानी पड़ती है। अकेले खड़ा होने का अर्थ होता है विवेक को जगाना, क्योकि जो विवेक को नही जगा सके वह अकेला खड़ा नही हो सकता। इसलिए तीसरी बात युवक चाहता है कि इस देश मे व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर विवेक, बोध, समझ को जगाने की कोशिश होनी चाहिए, क्योकि अकेला आदमी तभी अकेला हो सकता है, चाहे दुनिया उसके साथ न हो, पर उसके साथ विवेक है। उसकी आँखो मे स्पष्ट दिखाई पड रहा है कि जो वह कर रहा है वह ठीक है। उसका तर्क, उसके प्राण उससे कह रहे है कि वह जो कर रहा है वह ठीक है चाहे सारी दुनिया विपरीत हो।

जीसस जिस दिन शूली पर लटकाया होगा, वह जवान आदमी रहा होगा। उम्र से भी वह जवान था, ३३ वर्ष की उम्र थी लेकिन वह ७० वर्ष का भी होता तो कोई फर्क नही पड़ता। जीसस युवा आदमी था। सारी दुनिया उसके विपरीत थी। एक लाख आदमी इकट्ठे थे उसे शूली पर लटकाने को।

वह चाहता तो माफी माँग सकता था, माफी उसे जरूर मिल जाती। वह चाहता तो कह सकता था कि मुझसे गलती हो गई, यह मैंने क्या पागलपन कर दिया? वह मुक्त हो जाता। एक गाँव मे बैठकर बढ़ईगीरी का काम करता। उसकी शादी होती, उसके बच्चे पैदा होते और वह मजे से मर जाता, लेकिन नही, उस आदमी ने अकेले खड़े होने की हिम्मत शूली पर भी की। लेकिन वह अकेला खड़ा होकर किसी को नर्क नही भेज रहा है, अकेला खड़ा होकर किसी को सड़ाने का आयोजन नही कर रहा है, किसी के प्रति क्रोध नहीं है उसके मन मे, अकेला खड़ा है अपने विवेक के कारण, किसी के प्रति क्रोध के कारण नही। शूली पर लटकते हुए उसने अंतिम प्रार्थना की और कहा, हे परमात्मा, इन लोगो को माफ कर देना क्योकि इन्हें पता नही कि ये क्या कर रहे है। इसलिए तीसरी बात—युवक चाहता है, विवेक कैसे विकसित हो, बुद्धिमत्ता कैसे विकसित हो।

ज्ञान विकसित हो जाना एक बात है और बुद्धिमत्ता विकसित होनी बिलकुल दूसरी बात है। नौलेज आना एक बात है और विजडम आनी बिलकुल दूसरी बात है। नौलेज और ज्ञान तो स्कूल, कालेज और विद्यालय देते है लेकिन विजडम कौन देगा? सूचनाएँ तो कालेज और विश्वविद्यालय युवको को देते है और जवानी मे ही उनको बूढ़ा कर देते है। जितना उनको भ्रम पैदा हो जाता है कि हम जानते हैं, उतनी ही जानने की जिज्ञासा कम हो जाती है। विद्यालय के मंदिर से निकलने के वक्त युवक को ऐसा नही लगता कि वह जानने की एक नई यात्रा पर जा रहा है। उसे ऐसा लगता है, जैसे जानने का काम बन्द हुआ। यह सर्टिफिकेट मिल गई है, बात हो गई समाप्त। अब मुझे जानना नही है। अब जानने की तो बात ही खत्म हो गई। ठीक विश्वविद्यालय तो तब होगा जब वह हमे विद्या का मंदिर नही मालूम पड़े। विद्या के मंदिर की सिर्फ सीढियाँ मालूम पड़ेगी। विश्वविद्यालय वहाँ छोड़ता है, जहाँ सीढियाँ समाप्त होती है और असली ज्ञान का मंदिर शुरू होता है। लेकिन उस ज्ञान का नाम नौलेज नही है। उस ज्ञान का नाम विजडम है, उसका नाम है समझ, उसका नाम है बुद्धिमत्ता। युवक बुद्धिमत्ता पैदा करने के प्रयोग करना चाहता है और इसलिए भी कि सारे जगत मे ही ऐसा लगता है कि बुद्धिमत्ता पैदा ही नही हो पा रही है। वह जो भी कर रहा है, बुद्धिहीन है। उसका सारा उपक्रम बुद्धि-

हीन है, उसका विद्रोह बुद्धिहीन है, उसकी बगावत बुद्धिहीन है। मैं बगावत का विरोधी नहीं हूँ। मुझसे ज्यादा बगावत का प्रेमी खोजना मुश्किल है। मैं विद्रोह का विरोधी नही हूँ। मैं तो विद्रोह को धार्मिक कृत्य मानता हूँ। रिबेलियन को मनुष्य का अधिकार मानता हूँ। लेकिन जब विद्रोह बुद्धिहीन हो जाता है तो विद्रोह से किसी का कोई हित नही होता और तब विद्रोह अर्थहीन हो जाता है। वह दूसरे को तो नुकसान कम पहुँचाता है, विद्रोह को ही नष्ट कर डालता है।

हिन्दुस्तान का युवक एक विद्रोह की गति पर जा रहा है, एक दिशा पर जहाँ बुद्धिमत्ता बिलकुल नही है। आज का युवक बुद्धिमत्ता जगाने की चेष्टा करना चाहता है। बुद्धिमत्ता जगाने के उपाय हैं। बुद्धिमत्ता जगाने की विधि है जिससे ज्ञान पैदा होता है। एक-एक युवक के पास ध्यान की क्षमता होनी चाहिए, एक-एक युवक के पास मेडिटेशन की विधि होनी चाहिए। वह जब चाहे तब अपने को गहरे से गहरे कामो मे प्रविष्ट कर सके। वह जब चाहे तब अन्दर के द्वार खोल सके और अन्दर के मंदिर मे प्रविष्ट हो सके। जिस दिन व्यक्ति अपनी आत्मा के जितने निकट पहुँच जाता है उतना ही बुद्धिमान हो जाता है। कोई व्यक्ति अपनी आत्मा के जितना निकट है उतनी ही बुद्धि उसके पास होती है। जो आदमी अपनी आत्मा से जितना दूर है उतना ही कम बुद्धिमान होता है। बुद्धिमत्ता आती है ध्यान से। जैसे ज्ञान आता है अध्ययन से, मनन से, शिक्षण से, उसी तरह बुद्धिमत्ता आती है ध्यान से। इस देश के युवक को ध्यान की प्रक्रिया मे ले जाने का एक आन्दोलन सारे देश के कोने-कोने मे बच्चे-बच्चे तक करना है और ध्यान की प्रक्रिया पहुँचानी है। ध्यान उपलब्ध हो तो व्यक्ति शान्त हो जाता है और जितना शान्त व्यक्ति होगा उतने सुन्दर समाज के सृजन का घटक बन जाता है। जितना शान्त व्यक्ति होगा, उतने सत्य, उतने साहस, उतने अकेले होने की हिम्मत, उतने अज्ञात की तरफ जाने की कामना और उतनी जोखिम उठाने की मजबूती आ जाती है। जितना शान्त व्यक्ति होगा उतना कम भयभीत होगा, जितना शान्त व्यक्ति होगा उतना स्वस्थ होगा। जितना शान्त व्यक्ति होगा उतना जीवन को झेलने और जीवन का सामना करने की शक्ति उसके पास होगी। हमारा युवक जीवन के सामने दिवालिया की तरह खडा हो जाता है। उसके पास कुछ भी नही है। कुछ सर्टिफिकेट हैं, कागज के कुछ ढेर हैं। उनका पुलिन्दा बाँधकर वह जिन्दगी के

सामने खड़ा हो जाता है। उसके पास भीतर और कुछ भी नही है। यह बडी दयनीय अवस्था है। यह बहुत दुखद है और फिर इस स्थिति मे फ्रस्ट्रेशन पैदा होता है, विषाद पैदा होता है, तनाव पैदा होता है, क्रोध पैदा होता है। और इस क्रोध मे वह समाज को तोडने मे लग जाता है, चीजें नष्ट करने मे लग जाता है। आज सारे मुल्क का बच्चा-बच्चा क्रोध से भरा है। क्रोध मे वह कुर्सियाँ तोड रहा है, बसें जला रहा है। मुल्क के नेता कहते है, कुर्सियाँ मत तोडो, बसें मत जलाओ, लेकिन वे भी जानते है कि कुर्सियाँ तोड कर, बसे जला कर और शीशे फोड कर वे नेता हो गए है। उनकी सारी नेतागिरी इसी तरह की तोड-फोड पर खडी हो गई है। बच्चे भी जानते है कि नेता होने की तरकीब यही है कि कुर्सियाँ तोडो, मकान तोडो, आग लगाओ। इसलिए वे पुराने नेता जो कल यही करते रहे थे आज वही दूसरे को समझायेगे। वह समझ मे आने वाली बात नही है। फिर उन नेताओ को यह भी पता नही है कि कुर्सियाँ तोडी जा रही हैं, यह सिर्फ सिम्बालिक है। कुर्सियो से बच्चो को क्या मतलब हो सकता है? किसी आदमी को कुर्सी तोडने या बस जलाने से क्या मतलब हो सकता है? बस से किसी की दुश्मनी है? ऐसा पागल आदमी खोजना मुश्किल है जिसकी बस से दुश्मनी हो। यह .सवाल नही है। यह बिलकुल असगत है। इससे कोई सम्बन्ध नही है। युवक है भीतर अशान्त, पीडित और परेशान। आदमी कुछ भी तोड लेता है तो थोडी-सी राहत मिल जाती है।

एक मनोवैज्ञानिक के पास एक बीमार को लाया गया। वह एक दफ्तर मे नौकर था। उस दफ्तर मे उसका मालिक उसे कभी बुरा शब्द बोलता, कभी अपमानित कर देता। मालिक के खिलाफ वह कुछ कर नही सकता था। लेकिन भीतर क्रोध तो आता था। क्रोध आता था तो घर जाकर पत्नी पर टूट पडता था। क्रोध आता था तो कभी गुस्से मे अपनी चीजें तोड देता था। लेकिन फिर खयाल मे आता था, यह क्या पागलपन है। क्रोध बढता चला गया। फिर उसके मन मे ऐसा होने लगा कि जो कुछ हो, एक दिन जूता निकालकर मालिक की सेवा कर दी जाय। हाथ उसके जूते पर जाने लगे तो वह बहुत घबराया कि यह तो बहुत खतरनाक बात हुई जा रही है। अगर जूता मैंने मार दिया तो मुश्किल मे पड जाऊँगा। फिर वह जूता घर छोडकर आने लगा, क्योंकि किसी भी दिन खतरा हो सकता था। वह जूता तो केवल

प्रतीक था। वह स्याही की दावात उठाकर फेंकने का खयाल करने लगा। तब उसे घबराहट हुई और उसने घर आकर मित्रो को कहा कि मैं बडी मुश्किल मे पड गया हूँ। जो कुछ भी मिल जाय, मैं मालिक को मारना चाहता हूँ। एक मनोवैज्ञानिक के पास उसे लाया गया। मनोवैज्ञानिक ने कहा, "कुछ मत करो। मालिक की एक तस्वीर घर मे बना लो और रोज सुबह पाँच जूते बिलकुल रिलीजसली तसवीर को मारो। इसमे भूल-चूक न हो। पुजारी पूजा करता है और माला फेरनेवाले माला फेरते हैं—ऐसी रिलीजसली। उसको बिलकुल पाँच जूते मारो फिर दफ्तर जाओ। दफ्तर से लौटकर पहला काम उसको पाँच जूते मारो, तब दूसरा काम करो।" वह आदमी हँसा। यह सुनकर ही उसके चेहरे पर जो भाव आया वह एक शाति का था। रात मे कई दफा उसकी नीद खुली कि जल्दी सुबह हो जाय। सुबह हुई। उसने पाँच जूते मारे। पाँच जूते मारकर वह बडा हैरान हुआ। मन उसका बडा हल्का-सा लगा। वह दफ्तर गया। उस दिन उसका व्यवहार बडा भिन्न था। पन्द्रह दिन रोज जूते मारता रहा और दफ्तर मे वह दूसरा आदमी हो गया। उसका मालिक उससे पूछने लगा, "क्या हो गया है तुम्हें? तुम बिलकुल बदल गए। तुम कितने शान्त हो गए हो, इतनी कुशलता से काम करते हो!" उसने कहा, "मालिक, यह पूछें ही मत कि किस तरकीब से काम कर रहे हैं। इसमे नौकरी जाने का खतरा है।" इस आदमी को क्या हुआ? इसके भीतर तोडने-फोडने की, किसी को मिटाने की, किसी को नीचा दिखाने की तीव्र भावना काम कर रही थी। वह भावना किसी भी रूप मे निकल सकती थी। वह टेबुल तोड सकती थी, शीशे तोड सकती थी। घर मे पत्नियाँ जानती है भलीभाँति कि पति से झगडा होता है, बर्तन बेचारे टूट जाते हैं। माताएँ भलीभाँति जानती है कि पिता से झगडा होता है, बच्चे पिट जाते है। क्रोध यहाँ-वहाँ से निकलना शुरू होता है। युवको के पास क्रोध तो बहुत है, शान्ति बिलकुल नही है। इसलिए सारा उपद्रव हो रहा है। उपद्रव बढेगा, उपद्रव गहरा होगा। अभी वे मकान तोड रहे हैं, कल वह मकान जलाएँगे। अभी वे बसें जला रहे हैं कल वे आदमियो को जलाएँगे।

हालैण्ड मे मेरे एक मित्र हैं। उन्होंने मुझे वहाँ से लिखा कि यहाँ एक अजीब बात हो गई है। युवको और विद्यार्थियो का एक नया आन्दोलन है जिसका नाम सटर्डे नाइट मूवमेन्ट है। शनिवार की रात को सड़को पर वे

अकारण पत्थर फेंकते हैं, शोरगुल करते है। सत्य से कोई सम्बन्ध नही है। सडको पर नाचते हैं, गालियाँ बकते हैं, शराब पीते है, और फिर, चौहट्टो पर इकट्ठे होकर विचार करते हैं कि हम आज ऐसा क्या करें कि पुलिस हमे जेल भेज सके। कोई कारण नही है, कोई झगडा नही है, कोई फीस कम नही करवानी है, कुछ और मामला नही है, लेकिन क्रोध इतना इकट्ठा है कि उसको निकालना चाहिए। यहाँ भी यही बात है। नेता चिल्लाते रहते हैं, कुछ नही होता है, क्योकि नेता खुद अशान्त और परेशान है। राजनीतिज्ञो से ज्यादा अशान्त आदमी पृथ्वी पर और कौन हो सकता है? वे बेचारे कहते है शाति रखो, शाति रखो। लेकिन उनके भीतर भी अशाति चलती है, उनकी शाति का कोई अर्थ नही। उन्हे पता भी नही है कि क्या हो रहा है मनुष्य की चेतना मे। मनुष्य की चेतना ने ज्ञान तो अर्जित कर लिया है, बुद्धिमत्ता अर्जित नही की। मनुष्य की चेतना ने सूचनाएँ तो इकट्ठी कर ली है, लेकिन चेतना ज्ञानवान नही हो पाई। मनुष्य ने महत्वाकाक्षा तो सीख ली है और सारी शिक्षा का एक ही फल हुआ है कि आदमी को महत्वाकाँक्षी बना दिया है। लेकिन शाति उसके पास बिलकुल नही है। व्यक्ति को चाहिए शाति और समाज को चाहिए क्राति। व्यक्ति को इतना शात होना चाहिए कि उसके भीतर कोई पीडा, कोई दुख, कोई क्रोध न रह जाय। हमारा समाज है गलत, समाज है रुग्ण, समाज है कुरूप। हजारो साल की बेवकूफियो के आधार पर हमारा समाज निर्मित है। उन सब बेवकूफियो को आग लगा देना है। आज हिन्दुस्तान मे शूद्र है। आज भी बीसवी शती मे, मनु महाराज ने तीन हजार वर्ष पहले जिन शूद्रो को खडा किया था, वे अब भी खडे हैं। करोडो लोगो को आज भी जीव-स्थिति उपलब्ध नही है। उसे तोड देना पडेगा। हजारो वर्षों मे स्त्रियो को गुलाम की तरह खडा किया गया है। आज नाम को वे स्वतत्र मालूम पडती हैं लेकिन आज भी वे स्वतत्र नही है। आज भी शिष्ट से शिष्ट नगर मे किसी लडकी का रात अकेले निकलना असम्भव है। यह कोई स्वतत्रता है? सोचना है फिर से कि इन तीन हजार वर्षों मे जो हमने किया है उसमे हमारे जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण है वह गलत रहा होगा, अन्यथा स्त्री और पुरुष के बीच ऐसा दुर्भाव नही हो सकता था जैसा दुर्भाव है। स्त्री और पुरुष दो अलग जाति के प्राणी मालूम होते है, एक ही जाति के प्राणी नही मालूम होते। ऐसा मालूम होता है कि ये अलग ही दो तरह की

कौमे हैं। ये साथ-साथ किसी तरह जीती हैं। इतनी लम्बी दीवाल खडी की है आदमी और औरत के बीच। मर्द और औरत के बीच जितनी बडी दीवाल उठायी गई है उतनी ही मुश्किल होती चली गई है, क्योकि जितनी बडी रुकावट डाली जाती है उतना ही आकर्षण तीव्र हो जाता है। स्त्री और पुरुष के बीच जितना फासला पैदा किया गया है, उनको उतना ही कामुक बनाया गया है। वे सारे फासले तोडे जाने जरूरी हैं। स्त्री और पुरुष को निकट लाना जरूरी है ताकि यह सम्भव न रह जाय कि कोई स्त्री को धक्का दे। उन्हें साथ खेलना है बचपन से, साथ पढना है बचपन से। *

समाज को क्राति चाहिए। काम के प्रति एक क्रातिकारी दृष्टिकोण और परिवर्तन चाहिए, तभी हम स्वस्थ हो सकेंगे। अर्थ के प्रति एक क्राति से गुजरने की जरूरत है। यह क्या बात है, इतना बडा मुल्क गरीब होता चला जाय और थोडे से लोगो के पास पैसे इकट्ठे होते चले जायें? बरदाश्त करने के बाहर है कि सारी सम्पदा एक तरफ इकट्ठी हो जाय और सारा मुल्क नगा, दीनहीन, दुखी और पीडित हो जाय। नही, मुल्क मे आर्थिक क्राति की जरूरत है। सपत्ति का समान वितरण जरूरी है। सपत्ति सबतक पहुँचनी चाहिए, सबकी है, जैसे आकाश सबका है, पृथ्वी सबकी हैं, सपत्ति भी सबकी है। सपत्ति राष्ट्र की हो, समाज की हो, व्यक्ति की नहीं। व्यक्तिगत सपत्ति से मुक्त हुए बिना इस देश के जीवन मे कभी सुख का उदय नही हो सकता—कितना ही हम चिल्लायें कि भ्रष्टाचार न हो, चोरी न हो, बेईमानी न हो। वह होगी, क्योकि जबतक सपदा एक तरफ इकट्ठी होगी, एक तरफ शोषक होंगे और दूसरी तरफ शोषितो का बडा समाज होगा, तबतक चोरी कैसे बन्द होगी, बेईमानी कैसे बन्द होगी, भ्रष्टाचार कैसे बन्द होगा? नही, बन्द न होगा। चाहे ऋषि-मुनि कितना ही समझाये, ऋषि-मुनि कितना ही कहें कि धैर्य रखो, सतोष रखो, चोरी मत करो, कितना ही समझाये, कोई सुनेगा नही। उनके चिल्लाने से कुछ भी नही होगा। वे चिल्लाते रहेंगे और कुछ भी नहीं होगा। उनके चिल्लाने से सिर्फ एक फर्क पडता है, वे सच्चा आदमी तो पैदा नही कर पाते, पाखडी जरूर पैदा कर देते हैं। पाखडी आदमी का मतलब यह कि वह कहेगा कि मैं कहाँ चोरी करता हूँ? मैं तो अणुव्रती हूँ, मैं तो अणुव्रत का पालन करता हूँ, मैं तो मानता हूँ कि कम से कम मे सतोष रख लेना चाहिए। मै तो धार्मिक आदमी हूँ, मै कहाँ चोरी करता हूँ? ऊपर से वह एक चेहरा बनायेगा

जिसपर तिलक लगा हुआ है, चोटी बँधी हुई और पीछे एक दूसरा ही आदमी होगा जो दिखाई पड़ जाय तो आप पहचान नहीं सकेंगे कि क्या यह वही सज्जन हैं ? वह भीतर जो आदमी छिपा हुआ है वह बिलकुल दूसरा है। रोशनी मे वह दूसरा दिखाई पडता है, अँधेरे मे वह आदमी बिलकुल दूसरा है। रौशनी में वह बड़ा धार्मिक मालूम पड़ता है। मदिर मे पूजा करना दिखाई पडता है, अँधेरे मे लोगों की जेबें काट रहा है, उनकी गर्दनें काट रहा है। पाखडी आदमी पैदा हो गया है, यह हिपौक्रिटिकल ह्यूमैनिटी पैदा हो गयी है।

यह कैसे पैदा हो गई है ? यह इससे पैदा हो गई है कि जहाँ जिन्दगी का असली सवाल है वहाँ हम उनको बदलना नहीं चाहते और झूठी बातें बदलने की बातें करते हैं। कहते हैं भ्रष्टाचार मिटायेंगे। जब तक शोषण है तबतक कुछ भी नहीं मिट सकता। शोषण मिटेगा तो यह सब मिट जायगा। शोषण के मिटते ही चोरी समाप्त हो जाती है। जबतक व्यक्तिगत सपत्ति है दुनिया मे तबतक चोरी रहेगी। न अदालतें रोक सकती हैं, न जज रोक सकते हैं, न पुलिस रोक सकती है। सिर्फ इतना ही होगा कि पुलिस भी चोरी करेगी, अदालत भी चोरी करेगी, जज भी चोरी करेगा, नेता भी चोरी करेंगे। कुछ भी नही रुकने वाला है। व्यक्तिगत सपत्ति के जाते ही चोरी जायगी क्योकि व्यक्तिगत सपत्ति की बाई-प्रोडेक्ट है चोरी। वह उससे पैदा हुई है, वह उसके साथ ही जा सकती है, उसके बिना नही जा सकती।

देश को और बहुत तलो पर क्राति की जरूरत है, पारिवारिक क्राति की जरूरत है, शैक्षणिक क्राति की जरूरत है। देश को आमूल क्राति की जरूरत है, पूरी जड़ें बदलने की जरूरत है। युवक समाज मे एक क्राति लाना चाहता है, खबर पहुँचाना चाहता है गाँव-गाँव तक, एक-एक व्यक्ति तक कि सोचो, विचार करो, जिन्दगी कहाँ-कहाँ बदलने-जैसी है उसे बदलना है। व्यक्ति को चाहिए शाति और समाज को चाहिए क्राति। एक वैचारिक वातावरण, एक पुनर्जागरण पैदा करने की जरूरत है। युवको का कोई आज राजनीतिक सवाल नही है, न कोई लक्ष्य है। राजनीति से उन्हे कुछ सीधा लेना नही है। इस मुल्क मे अभी तो जरूरत है एक मानसिक परिवर्तन की। मुल्क की आत्मा को क्राति के लिए तैयार करने की आवश्यकता है। उससे अपने आप राजनीति भी बदल जायगी, अपने आप उसे बदलना पडेगा। अभी तो देश की आत्मा को सब पहलुओं पर क्राति की दृष्टि, सिर्फ दृष्टि काफी है, अभी तो एक

विचार काफी है। जो युवक आज विश्वविद्यालय मे पढ़ते हैं, स्कूल मे पढने हैं, कल वे जिन्दगी में जायेंगे, राजनीति मे जायेंगे, वे अधिकार के पद पर होगे, तब आज जो उनके चित्त मे हवा पैदा हो जायगी, कल जब उनके हाथ मे सत्ता होगी, वे समाज को आमूल बदलने मे समर्थ हो सकेंगे। भीतर वे शात हो जायें और उनका मस्तिष्क जीवन को बदलने की तेज आग से भर जाय, जीवन को बदलने की तीव्र पीडा उन्हें पकड ले, तो कल, जो आज युवक है, युवा हैं, उनके हाथ मे होगा देश। हम चाहें तो बीस साल मे इस देश की पूरी काया पलट सकते है क्योंकि बीस साल मे एक पीढी बदल जाती है। बीस साल मे नई पीढी के हाथ मे ताकत आ जाती है। यदि युवको ने इस पर नही सोचा तो यह देश रोज-रोज अँधेरे मे अँधेरे मे उतरता चला जायगा। इसे बचाने का और कोई उपाय नही है। इसे न कोई नेता बचा सकता है, न कोई गुरु और न परमात्मा से की गई प्रार्थनाएँ। यदि इसे बचाना हो तो देश मे 'यग माइड' को जन्म देना ही होगा। युवको की आत्मा ही इस देश का उद्धार कर सकती है।

जीवन और मृत्यु

जीवन क्या है, मनुष्य इसे नही जानता। और चूंकि वह जीवन को ही नहीं जानता, इसलिए मृत्यु को जानने की कोई सम्भावना शेष नही रह जाती। जीवन ही अपरिचित और अज्ञात हो तो मृत्यु परिचित और ज्ञात नही हो सकती। सच तो यह है कि चूंकि हमे जीवन का पता नही, इसलिए ही मृत्यु घटित होती है। जो जीवन को जानते है उनके लिए मृत्यु असम्भव शब्द है—जो न कभी था, न है और न होगा। जगत् मे कुछ शब्द बिलकुल झूठे है—उन शब्दो मे कुछ भी सत्य नही है। उन्ही शब्दों मे 'मृत्यु' भी एक शब्द है जो नितान्त असत्य है। मृत्यु जैसी घटना कभी भी नही घटती। लेकिन हम लोगो

को रोज मरते देखते हैं, चारों तरफ मृत्यु घटती हुई मालूम होती है। गाँव-गाँव में मरघट हैं और ठीक से हम समझें तो ज्ञात होगा कि जहाँ-जहाँ हम खड़े हैं वहाँ-वहाँ न मालूम कितने मनुष्यो की अर्थी जल चुकी होगी! भूमि के वे सभी स्थल जहाँ हमारे घर बने हैं, कभी मरघट रह चुके हैं! करोडो लोग मर चुके हैं, करोडो रोज मर रहे हैं और रोज मरेंगे। इसलिए यदि मैं यह कहूँ कि मृत्यु जैसा झूठा शब्द नहीं है मनुष्य की भाषा मे तो आश्चर्य होगा ही।

एक फकीर था तिब्बत में। उस फकीर के पास कोई गया और कहने लगा कि मैं जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध मे कुछ पूछने आया हूँ। फकीर हँसने लगा—'अगर जीवन के सम्बन्ध मे पूछना हो तो जरूर पूछो, क्योकि जीवन का मुझे पता है। रही मृत्यु, तो मृत्यु मे आज तक मेरा कोई मिलन नही हुआ, उसमे मेरी कोई पहचान नही। मृत्यु के सम्बन्ध मे पूछना हो तो उन्हें पूछो जो मरे ही हुए हैं या मर चुके हैं। मैं तो जीवन हूँ, मैं जीवन के सम्बन्ध मे बोल सकता हूँ, बता सकता हूँ। मृत्यु से मेरा कोई परिचय नही।

यह बात वैसी है जैसी कि एक बार अधकार ने भगवान से जाकर प्रार्थना की थी कि तुम्हारा यह सूरज मेरे पीछे बहुत बुरी तरह पडा हुआ है। मैं बहुत थक गया हूँ। सुबह से पीछा करता है तो साँझ में मुश्किल से छोडता है। मेरा कसूर क्या है? दुश्मनी कैसी है यह, यह सूरज क्यो मेरे पीछे पडा है? दिन भर पीछे दौडता रहता है और रात भर मैं दिन भर की थकान से विश्राम भी नही कर पाता हूँ कि फिर सुबह सूरज ऊपर आकर द्वार पर खडा हो जाता है। फिर भागो! फिर बचो! यह अनंत काल से चल रहा है। अब मेरी धैर्य की सीमाएँ आ गई और मैं प्रार्थना करता हूँ, इस सूरज को समझा दें। सुनते हैं, भगवान ने सूरज को बुलाया और कहा कि तुम अँधेरे के पीछे क्यों पडे हो? क्या बिगाडा है अँधेरे ने तुम्हारा? क्या है शत्रुता, क्या है शिकायत? सूरज कहने लगा, अँधेरा! अनत काल हो गया मुझे विश्व का परिभ्रमण करते हुए लेकिन अबतक अँधेरे से मेरी कोई मुलाकात नही हुई। अँधेरे को मैं जानता ही नही। कहाँ है अँधेरा? आप उसे मेरे सामने बुला दें तो मैं क्षमा भी माँग लूँ और आगे के लिए पहचान लूँ कि वह कौन है ताकि उसके प्रति कोई भूल न हो सके।

इस बात को हुए अनत काल हो गए। भगवान की फाइल मे वह बात वहीं की वही पडी है। वह अबतक अँधेरे को सूरज के सामने नही बुला सके,

नही बुला सकेंगे । यह मामला हल होने का नहीं है । सूरज के सामने अधकार कैसे बुलाया जा सकता है ? अधकार की कोई सत्ता ही नही है । अधकार की कोई विधायक स्थिति नही है । अधकार तो सिर्फ प्रकाश के अभाव का नाम है। वह प्रकाश की गैर मौजूदगी है, अनुपस्थिति है । तो सूरज के सामने ही सूरज की अनुपस्थिति को कैसे बुलाया जा सकता है ? नही, अधकार को सूरज के सामने नही लाया जा सकता । सूरज तो बहुत बडा है, एक छोटे से दीए के सामने भी अधकार को लाना असम्भव है । दीए के प्रकाश के घेरे मे अधकार का प्रवेश असभव है । प्रकाश है जहाँ, वहाँ अधकार कैसे आ सकता है ! जीवन है जहाँ, वहाँ मृत्यु कैसे आ सकती है ! या तो जीवन है ही नही, या फिर मृत्यु नही है । दोनो बाते एक साथ नही हो सकती ।

हम जीवित है, लेकिन हमे पता नही कि जीवन क्या है । इस अज्ञान के कारण ही हमे ज्ञात होता है कि मृत्यु घटती है । मृत्यु एक अज्ञान है । जीवन का अज्ञान ही मृत्यु की घटना बन जाती है । काश, हम उस जीवन से परिचित हो सके जो भीतर है ! उसके परिचय की एक किरण भी सदा-सदा के लिए इस अज्ञान को तोड देती है कि मैं मर सकता हूँ या कभी मरा हूँ या कभी मर जाऊँगा । लेकिन उस प्रकाश को हम जानते नही है, जो हम हैं और उस अधकार से भयभीत होते है, जो हम नही है । उसके प्रकाश से हम परिचित नही हो पाते जो हमारा प्राण है, हमारा जीवन है, जो हमारी सत्ता है और उस अधकार से हम भयभीत होते है जो हम नही हे ।

मनुष्य मृत्यु नही, अमृत है । हमारा समस्त जीवन अमृत है लेकिन हम अमृत की ओर आँख ही नही उठाते । हम जीवन की दिशा मे कोई खोज ही नही करते, एक कदम भी नही उठाते । जीवन से रह जाते है अपरिचित और इसलिए मृत्यु मे भयभीत प्रतीत होते है । इसलिए प्रश्न जीवन और मृत्यु का नही है, प्रश्न है सिर्फ जीवन का । मुझे कहा गया है कि मैं जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध मे बोलू । यह असभव बात है । प्रश्न तो है सिर्फ जीवन का, मृत्यु-जैसी कोई चीज ही नही है । जीवन ज्ञात होता है तो जीवन रह जाता है और जीवन ज्ञात नहीं होता तो सिर्फ मृत्यु रह जाती है । जीवन और मृत्यु दोनो एक साथ कभी भी समस्या की तरह खडे नही होते । या तो हमे पता है कि हम जीवन है, तो फिर मृत्यु नही है और अगर हमे पता नही है कि हम जीवन हैं तो फिर मृत्यु ही है, जीवन नही है । ये दोनो बातें एक साथ मौजूद

नहीं होती हैं, नहीं हो सकती हैं। लेकिन हम सारे लोग तो मृत्यु से भयभीत हैं। मृत्यु का भय बताता है कि हम जीवन से अपरिचित हैं। मृत्यु के भय का एक ही अर्थ है—जीवन से अपरिचय। जो हमारे भीतर प्रतिपल प्रवाहित हो रहा है, श्वांस-श्वांस मे, कण-कण मे चारो ओर, भीतर-बाहर सब तरफ, उससे ही हम अपरिचित हैं। इसका एक ही अर्थ हो सकता है कि आदमी किसी गहरी नींद मे है। नींद मे ही हो सकती है यह सभावना कि जो हम हैं उससे भी अपरिचित हों। हम किसी गहरी मूर्छा मे हैं। हमारे प्राणो की पूरी शक्ति सचेतन नही है, अचेतन है, बेहोश है। आदमी सोया हो तो उसे फिर भी पता नही रह जाता कि मैं कौन हूँ? क्या हूँ? कहाँ से हूँ? नींद के अधकार मे सब डूब जाता है और उसे कुछ पता नही रह जाता कि मैं हूँ भी या नही हूँ? नीद का पता भी उसे तब चलता है जब वह जागता है।

जरूर कोई बहुत गहरी आध्यात्मिक नींद, कोई आध्यात्मिक सम्मोहन की तद्रा (Spiritual Hypnotic Sleep) मनुष्य को घेरे हुए है इसलिए उसे जीवन का ही पता नही चलता कि जीवन क्या है। लेकिन हम कहेंगे, आप कैसी बात करते हैं, हमे पूरी तरह पता है कि जीवन क्या है। हम जीते हैं, चलते हैं, उठते हैं, बैठते हैं, सोते हैं। एक शराबी भी तो चलता है, उठता है, बैठता है, सोता है श्वांस लेता है, आंख खोलता है, बात करता है। एक पागल भी तो उठता है, बैठता है, श्वांस लेता है, बात करता है, जीता है। लेकिन इससे न तो शराबी होश मे कहा जा सकता है और न पागल सचेतन है, यह कहा जा सकता है।

एक सम्राट् की सवारी निकली। एक आदमी चौराहे पर खड़ा होकर पत्थर फेंकने लगा और अपशब्द बोलने लगा और गालियाँ बकने लगा। सम्राट् की शोभायात्रा थी। उस आदमी को तत्काल सैनिको ने पकड़ लिया और कारागृह में डाल दिया। लेकिन जब वह गालियाँ बकता था और अपशब्द बोलता था तो सम्राट् हँसता था। उसके सैनिक हैरान हुए। उसके वजीर ने कहा, "आप हँसते क्यो हैं?" सम्राट् ने कहा, "जहाँ तक मैं समझता हूँ, उस आदमी को पता नही है कि वह क्या कर रहा है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, वह आदमी नशे मे है। खैर, कल सुबह उसे मेरे सामने ले आओ।" सुबह वह आदमी सम्राट् के सामने लाया गया। सम्राट् उससे पूछने लगा, "कल तुम मुझे गाली देते थे, अपशब्द बोलते थे? क्या कारण था?" उस आदमी ने कहा, "मैं!

और अपशब्द बोलता था ! नहीं महाराज, मैं नहीं रहा होऊँगा, इसलिए अपशब्द बोले गए होंगे। मैं शराब मे था, मैं बेहोश था, मैं था ही नही, मुझे कुछ पता नही कि मैं क्या बोला।"

हम भी नही है। नीद मे हम चल रहे हैं, बोल रहे है, बात कर रहे हैं, प्रेम कर रहे हैं, घृणा कर रहे है, युद्ध कर रहे हैं। अगर कोई दूर तारे से मनुष्य-जाति को देखे तो वह यही समझेगा कि सारी मनुष्य-जाति इस भाँति व्यवहार कर रही है जिस भाँति नीद मे, बेहोशी मे, कोई व्यवहार करता है। तीन हजार वर्षों मे मनुष्य-जाति ने १५ हजार युद्ध किए। यह जागे हुए मनुष्य का लक्षण नही है। जन्म से लेकर मृत्यु तक सारी कथा मृत्यु की, चिंता की, दु ख की, पीडा की कथा है। आनन्द का एक क्षण भी उपलब्ध नही होता, आनन्द का एक कण भी नही मिलता। खबर भी नही मिलती कि आनन्द क्या है। जीवन बीत जाता है और आनन्द की झलक भी नही मिलती। ऐसा आदमी होश मे नही कहा जा सकता। दुख, चिन्ता, पीडा, उदासी और पागलपन—जन्म से लेकर मृत्यु तक की कथा है, लेकिन शायद हमे पता नही चलता क्योंकि हमारे चारो तरफ भी हमारे-जैसे ही सोए हुए लोग है। कभी अगर एकाध जागा हुआ आदमी पैदा हो जाता है तो हम सोए हुए लोगो को इतना क्रोध आता है उस जागे हुए आदमी पर कि हम जल्दी ही उस आदमी की हत्या कर देते हैं। हम ज्यादा देर उसे बरदाश्त नही करते। जीसस क्राइस्ट को हम इसलिए सूली पर लटका देते हैं कि तुम्हारा कसूर यह है कि तुम जागे हुए आदमी हो। हम सोए हुए लोगो को तुम्हें देखकर बहुत अपमानित होना पडता है। हम सोए हुए आदमियो के लिए तुम एक अपमानजनक चिह्न बन जाते हो। तुम जागे हुए हो—तुम्हारी मौजूदगी हमारी नीद मे बाधा डालती है। हम सुकरात को जहर पिलाकर मार डालते हैं, हम जागे हुए आदमियो के साथ वही व्यवहार करते हैं जो पागलो की बस्ती मे उस आदमी के साथ होगा जो पागल नही है।

मेरे एक मित्र पागल थे। वे एक पागलखाने मे बन्द कर दिए गए। पागलपन मे उन्होने फिनाइल की एक बाल्टी, जो पागलखाने मे रखी थी, पी ली। उसके पी जाने से उनको इतनी उल्टियाँ हुईं, इतने दस्त लगे कि पन्द्रह दिन मे सारा शरीर रूपान्तरित हो गया। उनकी सारी गर्मी जैसे शरीर से निकल गई और वे ठीक हो गए। लेकिन उन्हें तो छह महीने के लिए पागल-

खाने में भेजा गया था। ठीक हालत मे भी तीन माह उन्हें और रहना पड़ा। बाद मे उन्होंने मुझसे कहा कि तीन महीने तक ठीक होकर जब मैं पागलखाने मे रहा तब जो पीडा मैंने अनुभव की उसका हिसाब लगाना बहुत मुश्किल है। जबतक मैं पागल था तबतक कोई कठिनाई नही थी क्योंकि और भी सब मेरे जैसे लोग थे। जब मैं ठीक हो गया तब मुझे लगा कि मैं कहाँ हूँ। मैं सो रहा हूँ और दो आदमी मेरी छाती पर सवार हो गए हैं। मैं चल रहा हूँ और कोई मुझे धक्के मार रहा है। मुझे पहले कुछ भी पता नही चलता था क्योंकि मैं भी पागल था। मुझे यह भी पता नही चलता था कि ये लोग पागल हैं जबतक मैं पागल था।

हमारे चारो तरफ सोए हुए लोगों की भीड है। इसलिए हमे पता नही चलता कि हम सोए हुए आदमी है। जागे हुए आदमी की हम जल्दी से हत्या कर देते हैं क्योंकि वह आदमी हमे बहुत कष्टपूर्ण मालूम होने लगता है, बहुत विघ्नकारक मालूम होने लगता है। चूंकि हमारी नीद सार्वजनिक है, सार्वभौमिक है और हम जन्म से ही सोए हुए है, इसलिए हमे पता नही चलता। इस नीद मे हम जीवन को समझ नही पाते। शरीर को ही जीवन समझ लेते है और शरीर के भीतर जरा प्रवेश नही हो पाता। यह समझ वैसी ही है जैसे किसी राजमहल के बाहर दीवाल के आस-पास कोई घूमता हो और समझता हो कि यह राजमहल है। दीवाल पर, बाहर की दीवाल पर, चारदीवारी पर, परकोटे पर कोई घूमता हो और सोचता हो कि राजमहल है और परकोटे की दीवाल पर टिक कर सो जाता हो और सोचता हो कि महलो मे विश्राम कर रहा हूँ। शरीर के आसपास जिसको जीवन का बोध है वह उसी नासमझ आदमी की तरह है जो महल की दीवाल के बाहर खडा होकर समझता है कि महल का मेहमान हो गया हूँ। शरीर के भीतर हमारा कोई प्रवेश नही है, हम शरीर के बाहर जीते हैं। बस शरीर की पर्त, बाहर की पर्त को हम जानते हैं। भीतर की पर्त का कोई पता हमे नही चलता। दीवाल के भीतर का ही हिस्सा पता नही चलता, महल तो बहुत दूर है। दीवाल के बाहर के हिस्से को ही महल समझते हैं, दीवाल के भीतर के हिस्से तक से परिचय नही हो पाता।

हम अपने शरीर को अपने से बाहर से जानते हैं, हमने कभी भीतर खडे होकर भी शरीर को नही देखा है भीतर से। जैसे मै इस कमरे के भीतर बैठा हूँ, आप इस कमरे के भीतर बैठे हैं। हम इस कमरे को भीतर से देख रहे हैं। एक आदमी बाहर घूम रहा है। वह इस मकान को बाहर से देख रहा है।

आदमी अपने शरीर के घर को भीतर से भी देखने मे समर्थ नहीं हो पाता, बाहर से ही जानता है। जिसे हम बाहर से जानते हैं वह केवल खोल है, वह केवल बाहरी वस्त्र है, वह केवल मकान के बाहर की दीवाल है। घर का मालिक भीतर है। उस भीतर के मालिक से तो पहचान ही हमारी नहीं हो पाती। भीतर की दीवाल तक से पहचान नहीं हो पाती तो भीतर के मालिक से कैसे पहचान होगी ?

बाहर से इस जीवन का अनुभव ही मृत्यु का अनुभव बनता है। जीवन का यह अनुभव जिस दिन हाथ से खिसक जाता है, जिस दिन इस घर को छोड कर भीतर के प्राण सिकुडते है और बाहर की दीवाल से चेतना भीतर चली जाती है, उसी दिन बाहर के लोगो को लगता है कि यह आदमी मर गया है। स्वय उस आदमी को भी लगता है कि मरा, क्योकि जिसे वह जीवन समझता था वहाँ से चेतना भीतर सरकने लगती है। जिस तल पर उसे ज्ञात था कि यह जीवन है उस तल से चेतना भीतर सरकने लगती है। नई यात्रा की तैयारी से उसके प्राण चिल्लाने लगते है कि मरा! गया! क्योकि जिसे वह समझता था कि जीवन है वह डूब रहा है, वह छूट रहा है। बाहर के लोग समझते हैं कि यह आदमी मर गया और वह आदमी भी इस मरने के क्षण मे, इस बदलाहट के क्षण मे समझता है कि मैं मरा, मैं गया।

यह जो शरीर है, यह हमारा वास्तविक होना नही है। गहराई मे इससे बहुत भिन्न और बिलकुल दूसरे प्रकार का हमारा व्यक्तित्व है। इस शरीर से बिलकुल विपरीत और उलटा हमारा जीवन है। एक बीज को हम देखते हैं। बीज के ऊपर की खोल होती है बहुत सख्त ताकि भीतर जो छिपा हुआ जीवन का अकुर है कोमल, उसकी वह रक्षा कर सके। भीतर का अकुर तो होता है बहुत कोमल और उसकी रक्षा के लिए एक बहुत कठोर दीवाल, एक घेरा, एक खोल बीज के ऊपर चढी होनी है। वह जो खोल है, वह बीज नही है और जो उस खोल को ही बीज समझ लेगा वह कभी भी उस जीवन के अकुर से परिचित नही हो पायगा जो भीतर छिपा है। वह खोल को ही लिये रह जायगा और अकुर कभी पैदा नही होगा। नही, खोल बीज नही है बल्कि सच तो यह है कि बीज जब पैदा होता है तो खोल को मिट जाना पडता है, टूट जाना पडता है, बिखर जाना पडता है, मिट्टी मे गल जाना पडता है। जब खोल गल जाती है तो बीज भीतर से प्रकट होता है।

यह शरीर एक खोल है और जीवन-चेतना और आत्मा का अकुर भीतर है। लेकिन हम इस खोल को ही बीज समझकर नष्ट हो जाते है और वह अकुर पैदा भी नही हो पाता, वह अकुर फूट भी नही पाता। जब वह अकुर फूटता है तो जीवन का अनुभव होता है। जब वह अकुर फूटता है तो मनुष्य का बीज होना समाप्त होता है और मनुष्य वृक्ष बन जाता है। जबतक मनुष्य बीज है तब तक वह सिर्फ एक सभावना है और जब उसके भीतर वृक्ष पैदा होता है जीवन का तब वह वास्तविक बनता है। उस वास्तविकता को कोई आत्मा कहता है, उस वास्तविकता को कोई परमात्मा कहता है। मनुष्य है परमात्मा का बीज। मनुष्य सिर्फ बीज है। जीवन का पूर्ण अनुभव तो वृक्ष मे होगा। बीज को क्या होगा ? बीज क्या जान सकता है वृक्ष के आनद को ? बीज क्या जान सकता है कि आयँगे हरे पत्ते, जिनपर सूरज की किरणे नाचेंगी ? बीज क्या जान सकता है कि हवाएँ बहेगी पत्तियो और शाखाओ से, और प्राण सगीत मे गूँजेगे ? बीज कैसे जान सकता है कि फूल खिलेंगे और आकाश के तारो को मात करेगे ? बीज कैसे जान सकता है कि पक्षी गीत गायँगे और यात्री उसकी छाया मे विश्राम करेगे ? बीज कैसे जान सकना है वृक्ष के अनुभव को ? बीज को तो कुछ भी पता नही। वह तो सपना भी नही देख सकता उसका जो वृक्ष होने पर सभव होगा। वह तो वृक्ष होकर ही जाना जा सकता है।

आदमी जीवन को नही जानना क्योकि उसने बीज मे ही अपनी पूर्णता समझ ली है। वह तो जीवन को तभी जानेगा जब भीतर के जीवन का पूरा वृक्ष प्रकट हो। लेकिन भीतर के जीवन का वृक्ष प्रकट होना तो दूर, भीतर कुछ है शरीर से भिन्न और अलग—इसका ही हमे कोई बोध नही हो पाता। इसकी ही हमे कोई स्मृति, इसका ही कोई स्मरण, पैदा नही हो पाता कि शरीर से भिन्न और अलग भी कुछ है। जीवन की समस्या जो भीतर है उसके अनुभव की समस्या है।

एक वृक्ष से मैने पूछा—तेरा जीवन कहाँ है ? वह कहने लगा—उन जडो मे जो दिखाई नही पडती। जडे दिखाई नही पडती, पर वही जीवन है। वृक्ष जो दिखाई पडता है, वह वहाँ से जीवन लेता है जो अदृश्य है। लेकिन हमने जीवन को समझा है बाहर का सारा का सारा फूल-पत्ते का जो फैलाव है वह, और भीतर की जडें बिलकुल उपेक्षित है, आदमी के भीतर की जडें बिलकुल ही उपेक्षित पडी है। स्मरण भी नही कि भीतर भी मैं कुछ हूँ और जो भी

है वह भीतर है। सत्य भीतर है, शक्ति भीतर है, जीवन की सारी क्षमता भीतर है। बाहर प्रकटीकरण होता है, होना भीतर है। वह जो वास्तविक है वह भीतर है। जो फैलता है और अभिव्यक्त होता है, वह बाहर है। बाहर है अभिव्यक्ति। आत्मा तो भीतर है और जो ऊपरी की अभिव्यक्ति को ही जीवन समझ लेते है उनका सारा जीवन मृत्यु के भय से आक्रांत होता है। वे जीते है तो मरे-मरे और डरे हुए कि कभी मर जायेंगे, किसी क्षण मर जायेंगे और यही मरने से डरे हुए लोग किसी की मौत पर रोते और परेशान होते है। ये अन्य किसी की मौत पर रो रहे और परेशान नही हो रहे है। हर मौत इन्हें अपनी मौत की खबर ले आती है और जो अपने है, बहुत निकट है, उनकी मौत तो और बहुत जोर से खबर लाती है। अपनी मौत की खबर से जब प्राण भीतर कँप जाते हैं तब भय पकड लेता है, तब कपन पकड लेता है और उस कपन, मे उस भय मे आदमी बडी-बडी बाते सोचता है। सोचता है कि आत्मा तो अमर है, हम तो भगवान के अश है, हम तो ब्रह्म के स्वरूप हैं। ये सब बकवास की बातें है और यह अपने को धोखा देने से ज्यादा नही है। यह मौत से डरा हुआ आदमी अपने को मजबूत करने के लिए दोहराता है कि आत्मा अमर है। वह यह कह रहा है कि नही नही, मुझे मरना पडेगा, आत्मा तो अमर है। भीतर प्राण कँप रहे है और ऊपर से कह रहा है कि आत्मा अमर है। जो आदमी जानता है कि आत्मा अमर है उसे एक बार भी यह दोहराने की जरूरत नही है कि आत्मा अमर है क्योंकि वह जानता है, बात खत्म हो गई। लेकिन यह मौत से डरनेवाले लोग मौत से डरते हैं, जीवन को जान नही पाते और फिर बीच मे एक नई तरकीब और एक नया धोखा पैदा करते हैं कि आत्मा अमर है। इसीलिए तो आत्मा को अमर मानने वाले लोगो से ज्यादा मौत से डरनेवाली कौम खोजना कठिन है। इस देश मे ही यह दुर्भाग्य घटित हुआ है। इस देश मे आत्मा की अमरता माननेवाले सर्वाधिक लोग है और इस देश मे मौत से डरने वाले कायरो की सख्या भी सर्वाधिक है। ये दोनो बातें एक साथ कैसे हो गई ? जो जानते हैं कि आत्मा अमर है उनके लिए तो मृत्यु हो गई समाप्त, उनके लिए भय हो गया विसर्जित, उन्हे तो अब कोई मार नही सकता। और दूसरी बात भी ध्यान मे ले लेनी है कि न उन्हें कोई मार सकता है और न अब वे इस भ्रम मे हो सकते हैं कि मैं किसी को मार सकता हूँ क्योंकि मरने की घटना ही खत्म हो गई। इस

राज का थोडा समझ लेना जरूरी है। जो लोग कहेंगे आत्मा अमर है वे मौत से डरे हुए हैं और दोहरा रहे हैं कि आत्मा अमर है और साथ ही ऐसे मौत से डरने वाले लोग अहिंसा की भी बहुत बात करेंगे। इसलिए नही कि वे किसी को न मारेंगे बल्कि बहुत गहरे मे इसलिए कि कोई उन्हें मारने को तैयार न हो जाय। दुनिया अहिंसक होनी चाहिए, क्यो ? कहेंगे तो यह कि किसी को भी मारना बुरा है लेकिन गहरे में वे यह कह रहे हैं कि कोई हमे मार न डाले। किसी को भी मारना बुरा है लेकिन अगर उन्हें पता चल गया है कि मृत्यु होती ही नही तो न मरने का डर है, न मारने का डर है और न ये बातें अर्थपूर्ण रह गई।

कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि तू भयभीत मत हो क्योंकि तू जिन्हें सामने खडा देख रहा है वे बहुत बार पहले भी रहे हैं। तू भी था, मै भी था। हम सब बहुत बार थे और हम सब बहुत बार होगे। जगत मे कुछ भी नष्ट नही होता, इसलिए न मरने का डर है, न मारने का डर है। सवाल है जीवन को जीने का और जो मरने और मारने दोनो से डरते है वे जीवन की दृष्टि मे एकदम नपुंसक हो जाते हैं। जो न मर सकते हैं, न मार सकते हैं वे जानते ही नही कि जो है वह न मारा जा सकता है, न मर सकता है। कैसी होगी वह दुनिया जिस दिन सारा जगत जानेगा भीतर से कि आत्मा अमर है ! उस दिन मृत्यु का सारा भय विलीन हो जायगा ! उस दिन मरने का भय भी विलीन हो जायगा, उस दिन मारने की धमकी भी विलीन हो जायगी। उस दिन युद्ध विलीन होगे, उसके पहले नही। जबतक आदमी को लगता है कि मै मारा जा सकता हूँ, मर सकता हूँ, तबतक दुनिया मे युद्ध विलीन नही हो सकते। चाहे गाँधी समझायें अहिंसा, चाहे बुद्ध और चाहे महावीर। चाहे सारी दुनिया मे अहिंसा, के कितने ही पाठ पढाये जायँ। जबतक मनुष्य को भीतर से यह अनुभव पैदा नही हो जाता कि जो है वह अमृत है, तब तक दुनिया मे युद्ध बन्द नही हो सकते। वे, जिनके हाथो मे तलवारें दीखती है, यह न समझ ले कि वे बहुत बहादुर लोग है। तलवार सुबूत है कि यह आदमी भीतर से डरपोक है, कायर है। चौरस्तो पर जिनकी मूर्तियाँ बनाते हैं तलवारे हाथ मे लेकर, वे कायरो की मूर्तियाँ है। बहादुरो के हाथ मे तलवार की कोई जरूरत नही है क्योकि वह जानता है कि मरना और मारना दोनो बच्चो की बातें हैं। लेकिन एक अद्‌भुत प्रवचना आदमी पैदा करता है। जिन बातो को

वह नही जानता उन बातो को भी वह दिखाने की कोशिश करता है कि हम जानते हैं। भीतर है भय, भीतर वह जानता है कि मरना पडेगा, लोग रोज मर रहे हैं। भीतर वह देखता है कि शरीर क्षीण हो रहा है, जवानी गई, बुढापा आ रहा है। देखता है कि शरीर जा रहा है लेकिन दोहरा रहा है कि आत्मा अजर-अमर है। वह अपना विश्वास जुटाने की कोशिश कर रहा है, हिम्मत जुटाने की कोशिश कर रहा है कि मत घबराओ। मौत तो है, लेकिन ऋषि-मुनि कहते हैं कि आत्मा अमर है। मौत से डरने वाले लोग ऐसे ऋषि-मुनियो के पास इकट्ठे हो जाते हैं जो आत्मा की अमरता की बातें करते है।

मैं यह नही कह रहा हूँ कि आत्मा अमर नही है। मैं यह कह रहा हूँ कि आत्मा की अमरता का सिद्धान्त मौत से डरने वाले लोगो का सिद्धात है। आत्मा की अमरता को जानना बिलकुल दूसरी बात है और यह भी ध्यान रहे कि आत्मा की अमरता को वे ही जान सकते हैं जो जीते जी मरने का प्रयोग कर लेते है, उसके अतिरिक्त कोई जानने का उपाय नही। इसे थोडा समझ लेना जरूरी है। मौत मे होता क्या है? प्राणो की सारी ऊर्जा जो बाहर फैली हुई है, विस्तीर्ण है, वह वापस सिकुडती है, अपने केन्द्र पर पहुँचती है। प्राणो की जो ऊर्जा सारे शरीर के कोने-कोने तक फैली हुई है, वह सारी ऊर्जा वापस सिकुडती है, बीच मे वापस लौटती है। जैसे एक दीए को हम मन्द करते जायँ, धीमा करते जायँ तो फैला हुआ प्रकाश सिकुड जायगा, अधकार घिरने लगेगा। प्रकाश सिकुडकर दीए के पास आ जायगा। अगर हम और धीमा करते जायँ, और धीमा करते जायँ तो फिर प्रकाश बीज रूप मे निहित हो जायगा, अधकार घेर लेगा। प्राणो की जो ऊर्जा जीवन मे फैली हुई है वह सिकुडती है, वापस लौटती है अपने केन्द्र पर। नई यात्रा के लिए फिर बीज बनती है, फिर अणु बनती है। यह जो सिकुडाव है इसी सिकुडाव से, इसी सकुचन मे पता चलता है कि मैं मरा! मैं मरा! क्योकि जिसे मैं जीवन समझता था वह जा रहा है, सब छूट रहा है। हाथ-पैर शिथिल होने लगे, श्वांस खोने लगी, आँखो ने देखना बन्द कर दिया, कानो ने सुनना बन्द कर दिया। ये सारी इद्रियाँ, यह सारा शरीर किसी ऊर्जा के साथ सयुक्त होने के कारण जीवन्त था। ऊर्जा वापस लौटने लगी है। देह तो मुर्दा है, वह फिर मुर्दा रह गई। घर का मालिक घर छोडने की तैयारी करने लगा, घर उदास हो गया, निर्जन हो गया। मृत्यु के इस क्षण मे पता चलता है कि जा

रहा हूँ, डूब रहा हूँ, समाप्त हो रहा हूँ और इस घबराहट के कारण कि मैं मर रहा हूँ, इस चिन्ता और उदासी के कारण, इस पीडा के कारण, इतनी ज्यादा चिन्ता पैदा होती है मन मे कि उस मृत्यु के अनुभव को भी जानने से आदमी वचित रह जाता है। जानने के लिए शाति चाहिए। इतना अशात हो जाता है कि मृत्यु को जान नही पाता। बहुत बार हम मर चुके हैं, अनत बार, लेकिन हम अभी तक मृत्यु को जान नहीं पाए क्योंकि हर बार जब मरने की घडी आई है तब हम इतने व्याकुल, बेचैन और परेशान हो गए हैं कि उस बेचैनी और परेशानी मे कैसा जानना, कैसा ज्ञान! बार-बार मौत आकर गुजर गई है हमारे पास से लेकिन हम फिर भी अपरिचित रह गए हैं उससे! नही, मरने के क्षण मे नही जाना जा सकता है मौत को, लेकिन हाँ, आयोजित मौत हो सकती है। आयोजित मौत को ही ध्यान कहते हैं, योग कहते हैं, समाधि कहते हैं। समाधि का एक ही अर्थ है कि जो घटना मृत्यु में अपने आप घटती है, समाधि मे साधक चेष्टा और प्रयास से सारे जीवन की ऊर्जा को सिकोड कर भीतर ले जाता है। जानते हुए, निश्चित ही, अशान्त होने का कोई कारण नहीं है क्योंकि वह प्रयोग कर रहा है भीतर ले जाने का, चेतना को सिकोडने का। वह शात मन से चेतना को भीतर सिकोडता है। जो मौत करती है उसे वह खुद करता है और इस शाति में वह जान पाता है कि जीवन-ऊर्जा अलग बात है, शरीर अलग बात है। वह बल्ब, जिसमे बिजली प्रकट हो रही है वह अलग बात है और वह बिजली जो प्रकट हो रही है अलग बात है। बिजली सिकुड जाती है, बल्ब निर्जीव होकर पडा रह जाता है।

शरीर बल्ब से ज्यादा नही है। जीवन वह विद्युत है, वह ऊर्जा है, वह प्राण है, जो शरीर को जीवंत और उतप्त किए हुए है। समाधि मे साधक मरता है स्वय, और चूंकि वह स्वय मृत्यु मे प्रवेश करता है, वह जान लेता है सत्य को कि मै हूँ अलग, शरीर है अलग। और एक बार यह पता चल जाय कि मै हूँ अलग, तो मृत्यु समाप्त हो गई और जीवन का अनुभव भी हो गया। मृत्यु की समाप्ति और जीवन का अनुभव एक ही सीमा पर होते हैं, एक ही साथ होते हैं। जीवन को जाना कि मृत्यु गई, मृत्यु को जाना कि जीवन हुआ। अगर ठीक से समझें तो यह एक ही चीज के कहने के दो ढग हैं। एक ही दिशा मे इगित करने वाले दो इसारे हैं।

धर्म को इसलिए मै मृत्यु की कला (Art of Death) कहता हूँ, और कभी जीवन की कला (Art of Living) भी कहता हूँ। निश्चित ही दोनों बातें मे कहता हूँ क्योकि जो मरना जान लेता है वही जीवन को जान पाता है। धर्म ही जीवन और मृत्यु की कला है। (अगर जानना है कि जीवन क्या है और और मृत्यु क्या है तो आपको स्वेच्छा से शरीर से उर्जा को खीचने की कला सीखनी होगी। यह ऊर्जा खीची जा सकती है। इस ऊर्जा को खीचना कठिन नही है। यह ऊर्जा सकल्प से ही फैलती और सकल्प से ही वापस लोट आती है, यह ऊर्जा सिर्फ सकल्प का विस्तार है। सकल्प हम करें तीव्रता से, समग्रता से कि मैं वापस लौटता हूँ भीतर। सिर्फ आधा घटा भी कोई इस बात का सकल्प करे कि मै वापस लौटना चाहता हूँ, मे मरना चाहता हूँ, मै डूबना चाहता हूँ अपने भीतर, मै अपनी सारी ऊर्जा को सिकोड लेना चाहता हूँ तो थोडे ही दिनो मे वह इस अनुभव के करीब पहुंचने लगेगा कि ऊर्जा सिकुडने लगी है भीतर। शरीर छूट जायगा बाहर पडा हुआ। एक तीन महीने का थोडा गहरा प्रयोग, और आप शरीर अलग पडा है इसे देख सकते हैं। अपना ही शरीर अलग पडा है इसे देख सकते हैं। सबसे पहले भीतर से दिखाई पडता है और फिर थोडी और हिम्मत जुटाई जाय तो वह जो जीवन्त ज्योति भीतर है उसे बाहर भी किया जा सकता है और हम बाहर से देख सकते हैं कि शरीर अलग पडा है।

एक अद्भुत अनुभव मुझे हुआ। कोई १२-१३ साल पहले बहुत रात तक मै एक वृक्ष के ऊपर बैठकर ध्यान करता था। शरीर बनता है पृथ्वी से और पृथ्वी पर बैठकर ध्यान करने से शरीर की शक्ति बहुत प्रबल होती है। वह जो ऊँचाइयो पर, पहाडो पर और हिमालय पर जाने वाले योगियो की चर्चा है, वह अकारण नही है, बहुत वैज्ञानिक है। जितनी पृथ्वी से दूरी बढती है शरीर की, उतना ही शरीरत्व का प्रभाव भीतर कम होता चला जाता है। एक दिन ध्यान मे कब कितना लीन हो गया, मुझे पता नही और कब शरीर वृक्ष से गिर गया, वह मुझे पता नही। जब नीचे गिर पडा शरीर तब मैंने चौक कर देखा कि यह क्या हो गया। मै तो वृक्ष पर ही था और शरीर नीचे गिर गया। कैसा हुआ अनुभव कहना बहुत कठिन है। मै तो वृक्ष पर ही बैठा था और मुझे दिखाई पड रहा था कि शरीर नीचे गिर गया है। एक रजत रज्जू (silver cord) नाभि से मुझ तक जुडी हुई थी। कुछ भी समझ के बाहर

था कि अब क्या होगा, कैसे वापस लौटूंगा। कितनी देर यह अवस्था रही होगी, यह पता नही, लेकिन अपूर्व अनुभव हुआ। शरीर के बाहर से पहली दफा देखा शरीर को और शरीर उसी दिन समाप्त हो गया। मौत उसी दिन खत्म हो गई क्योंकि एक और देह दिखाई पडी जो शरीर से भिन्न है। एक और सूक्ष्म शरीर का अनुभव हुआ। कितनी देर यह रहा, कहना मुश्किल है। सुबह होते-होते दो औरतें वहाँ से निकली दूध लेकर किसी गाँव से और उन्होने शरीर पड़ा हुआ देखा। वह मै देख रहा था ऊपर से। वे करीब आकर बैठ गई। उन्होने सिर पर हाथ रखा और एक क्षण में जैसे तीव्र आकर्षण से मैं वापस अपने शरीर मे आ गया और आँखें खुल गई)

तब एक दूसरा अनुभव भी हुआ। वह दूसरा अनुभव यह हुआ कि स्त्री पुरुष के शरीर मे विद्युत्-परिवर्तन पैदा कर सकती है और पुरुष स्त्री के शरीर मे। यह भी खयाल हुआ कि उस स्त्री का छूना और मेरा वापस लौट आना, यह कैसे हो गया। फिर तो बहुत अनुभव हुए इस बात के और तब मुझे समझ मे आया कि हिन्दुस्तान मे जिन तान्त्रिको ने समाधि और मृत्यु पर सर्वाधिक प्रयोग किए थे उन्होने क्यो स्त्रियो को भी अपने साथ बाँध लिया था। गहरी समाधि के प्रयोग मे अगर शरीर के बाहर तेजस शरीर चला गया, सूक्ष्म शरीर चला गया, तो बिना स्त्री की सहायता के पुरुष के तेजस शरीर को वापस नही लौटाया जा सकता या स्त्री का तेजस शरीर अगर बाहर चला गया तो बिना पुरुष की सहायता के उसे वापस नही लौटाया जा सकता। स्त्री-पुरुष के शरीर के मिलते ही एक विद्युत वृत्त पूरा हो जाता है और जो चेतना बाहर निकल गई है वह तीव्रता से भीतर वापस लौट आती है।

छह महीने मे मुझे अनुभव हुआ कि मेरी उम्र कम से कम दस वर्ष कम हो गई। कम हो गई मतलब, अगर मैं सत्तर साल जीता तो साठ साल ही जी सकूंगा। छाती के बाल मेरे सफेद हो गए छह महीने के भीतर। मेरी समझ के बाहर हुआ कि यह क्या हो रहा है। तब खयाल मे आया कि इस शरीर और उस शरीर के बीच के सबध मे व्याघात पड गया है, उन दोनो का जो ताल-मेल था वह टूट गया है और तब मुझे यह भी समझ मे आया कि शकराचार्य का ३३ साल की उम्र मे या विवेकानन्द का ३६ साल की उम्र मे मर जाना कुछ और ही कारण रखता है। और तब मुझे यह भी खयाल मे आया कि रामकृष्ण का कई बीमारियो मे घिरे रहना और रमण का कैसर से

मर जाने का भी कारण शारीरिक नही है, उस बीच के ताल-मेल का टूट जाना ही कारण है। लोग आमतौर से कहते है कि योगी बहुत स्वस्थ होते हैं लेकिन सचाई बिलकुल उलटी है। सचाई आज तक यह है कि योगी हमेशा रुग्ण रहा है और कम उम्र मे मरता रहा है और उसका कुल कारण इतना है कि उन दोनो शरीर के बीच जो तालमेल चाहिए उसमे विघ्न पड जाता है। जैसे ही एक बार वह शरीर बाहर हुआ फिर ठीक से पूरी तरह, कभी भी पूरी अवस्था मे, भीतर प्रविष्ट नही हो पाता। फिर उसकी कोई जरूरत भी नही रह जाती, उसका कोई प्रयोजन भी नही रह जाता, उसका कोई अर्थ भी नही रह जाता। 'सकल्प से, सिर्फ सकल्प से, ऊर्जा भीतर खीची जा सकती है। सिर्फ यह धारणा, सिर्फ यह भावना कि मैं अन्दर वापस लौट जाऊँ, मैं केन्द्र पर वापस लौट जाऊँ, केन्द्र पर पहुँचा सकती है। इसकी इतनी तीव्र पुकार हो कि यह सारे कण कण मे शरीर के भीतर गूँज जाय, श्वाँस मे पकड ले। और किसी भी दिन यह घटना घट सकती है कि एक झटके के साथ आप भीतर जाते हैं पहुँच और पहली दफा भीतर से शरीर को देखते हैं।'

एक बार अनुभव हो जाय कि मैं अलग हूँ और यह शरीर अलग, तो मौत खत्म हो गई। मृत्यु नही है और फिर तो शरीर के बाहर आकर खड़ा होकर देखा जा सकता है। यह कोई दार्शनिक-तात्विक चिंतन नहीं है कि मृत्यु क्या है, जीवन क्या है। जो लोग इस पर विचार करते है वे दो कौडी भी फल कभी नही निकाल पाते। यह तो अस्तित्ववादी खोज है। जाना जा सकता है कि मैं जीवन हूँ, जाना जा सकता है कि मृत्यु मेरी नही है। इसे जिया जा सकता है, इसके भीतर प्रविष्ट हुआ जा सकता है। लेकिन जो लोग केवल सोचते है कि मृत्यु क्या है, जीवन क्या है, वे लाख विचार करें, जन्म-जन्म विचार करे, उन्हें कुछ भी पता नही चल सकता। विचार केवल उसके सबध मे हो किया जा सकता है जिसे हम जानते हो, जो ज्ञात हो। जो अज्ञात है उसकी बाबत कोई विचार नही हो सकता। आप वही सोच सकते हैं जो आप जानते हैं। आप उसे नही सोच सकते जिसे आप नही जानते। उसे सोचेंगे कैसे ? उसकी कल्पना ही कैसे हो सकती है, उसकी धारणा ही कैसे हो सकती है जिसे हम जानते ही नही हैं ? जीवन हम जानते है, मृत्यु हम जानते नही। सोचेंगे हम क्या ? इसलिए दुनिया मे मृत्यु और जीवन पर दार्शनिको ने जो कहा है उसका दो कौड़ी भी मूल्य नही है। फिलासफी की किताबो मे जो भी लिखा है मृत्यु

और जीवन के सम्बन्ध मे उसका कौडी भर मूल्य नहीं है क्योंकि वे लोग सोच-सोच कर लिख रहे हैं। सिर्फ योग ने जो कहा है जीवन और मृत्यु के सम्बन्ध में, उसके अतिरिक्त आज तक सिर्फ शब्दों का खेल हुआ है क्योंकि योग जो कह रहा है वह एक अस्तित्ववादी, एक जीवंत अनुभव की बात है। आत्मा अमर है, यह कोई सिद्धान्त, कोई आदर्श नहीं है। यह कुछ लोगों का अनुभव है। अनुभव की तरफ जाना हो तो अनुभव हल कर सकता है इस समस्या को कि क्या है जीवन, क्या है मौत ? और जैसे ही यह अनुभव होगा, ज्ञात होगा जीवन है, मौत नही है, जीवन ही है, मृत्यु है ही नहीं। (फिर हम कहेंगे, लेकिन यह मृत्यु तो घट जाती है। उसका कुल मतलब इतना है कि जिस घर मे हम निवास करते थे उस घर को छोडकर दूसरे घर की यात्रा शुरू हो जाती है। जिस घर मे हम रह रहे थे उस घर से हम दूसरे घर की तरफ यात्रा करते हैं। घर की सीमा है, घर की सामर्थ्य है। घर एक यत्र है, यत्र थक जाता है, जीर्ण हो जाता है और हमे पार हो जाना होता है) अगर विज्ञान ने व्यवस्था कर ली तो आदमी के शरीर को सौ-दो-सौ या तीन सौ वर्ष जिलाया जा सकेगा लेकिन उससे यह सिद्ध नही होगा कि आत्मा नही है, उससे सिर्फ इतना सिद्ध होगा कि आत्मा को कल तक घर बदलने पडते थे, अब विज्ञान ने पुराने ही घर को फिर से ठीक कर देने की व्यवस्था कर दी है। उससे यह सिद्ध नही होगा, इस भूल मे कोई वैज्ञानिक न रहे कि हम आदमी की उम्र अगर पाँच सौ वर्ष कर लेंगे, हजार वर्ष कर लेंगे तो हमने सिद्ध कर दिया कि आदमी के भीतर कोई आत्मा नही है। इससे कुछ भी सिद्ध नही होता। इससे इतना ही सिद्ध होता है कि शरीर का जो यत्र था उसे आत्मा को इसीलिए बदलना पडता था कि वह जराजीर्ण हो गया था। अगर उसको रिप्लेस किया जा सकता है, हृदय बदला जा सकता है, आँख बदली जा सकती है, हाथ-पैर बदले जा सकते हैं तो आत्मा को उसे बदलने की कोई जरूरत नही रही। पुराने घर से ही काम चल जायगा। यह भी हो सकता है कल के विज्ञान बच्चे को टेस्टट्यूब मे जन्म दे सके और तब शायद वैज्ञानिक इस भ्रम मे पडेंगे कि हमने जीवन को जन्म दे दिया, वह भी गलत है, यह भी मैं कह देना चाहता हूँ। उससे भी कुछ सिद्ध नही होता। माँ और बाप मिलकर क्या करते हैं ? एक पुरुष और एक स्त्री मिलकर स्त्री के पेट मे आत्मा को जन्म नही देते, वे सिर्फ एक अवसर पैदा करते हैं जिसमे आत्मा प्रविष्ट हो सकती है। माँ का और पिता का अणु

मिलकर एक अवसर (Opportunity) पैदा करते हैं जिसमे आत्मा प्रवेश पा सकती है। कल यह हो सकता है कि टेस्टट्यूब मे यह अवसर पैदा किया जा सके। इससे कोई आत्मा पैदा नहीं हो रही है। माँ का पेट भी तो एक यांत्रिक व्यवस्था है। वह प्राकृतिक है। कल विज्ञान यह कर सकता है कि प्रयोगशाला मे जिन-जिन रासायनिक तत्वो से पुरुष का वीर्याणु बनता है और स्त्री का अणु बनता है उन उन रासायनिक तत्वो की पूरी खोज और पूरी जानकारी से टेस्टट्यूब मे वही रासायनिक व्यवस्था कर लें। तब जो आत्माएँ कल माँ के पेट मे प्रविष्ट होती थी वे टेस्ट-ट्यूब मे प्रविष्ट हो जायेंगी।

जन्म की घटना दोहरी घटना है—शरीर की तैयारी और आत्मा का आगमन, आत्मा का उतरना। आत्मा के सम्बन्ध मे, आने वाले दिन बहुत खतरनाक होने वाले हैं क्योकि विज्ञान की प्रत्येक घोषणा आदमी को यह विश्वास दिला देगी कि आत्मा नहीं है। इससे आत्मा असिद्ध नही होगी, इसमे सिर्फ आदमी का भीतर जाने का जो सकल्प था, वह क्षीण होगा। अगर आदमी को यह समझ मे आने लगे कि उम्र बढ गई, बच्चे टेम्टट्यूब मे पैदा होने लगे, अब कहाँ है आत्मा ?—तो इससे आत्मा असिद्ध नही होगी, इससे सिर्फ आदमी का जो प्रयास चलता था अतस् की खोज का, वह बन्द हो जायगा। और यह बहुत दुर्भाग्य की घटना आने वाले पचास वर्षों मे घटने वाली है। इधर पचास वर्षों मे उसकी भूमिका तैयार हो गई है। दुनिया मे आज तक पृथ्वी पर दीन लोग रहे हैं, दरिद्र लोग रहे हैं, दुखी लोग रहे हैं, बीमार लोग रहे है। उनकी उम्र कम थी, उनके पास अच्छा भोजन न था, अच्छे कपडे न थे। लेकिन आत्मा की दृष्टि मे दरिद्र लोगो की सख्या जितनी आज है उतनी कभी भी नही थी और उसका कुल एक ही कारण है यह विश्वास कि भीतर कुछ है ही नही तो जाने का सवाल क्या है। एक बार मनुष्य-जाति को यह विश्वास आ गया कि भीतर कुछ है ही नही, तो वहाँ जाने का सवाल खत्म हो जाता है। आने वाला भविष्य अत्यन्त अधकारपूर्ण और खतरनाक हो सकता है। इसलिए हर कोने से इस सम्बन्ध मे प्रयोग चलते रहने चाहिए ताकि ऐसे कुछ लोग खडे होकर घोषणा करते रहे, सिर्फ शब्दो की और सिद्धातो की नही, गीता की, कुरान और बाइबिल की पुनरुक्ति नही, बल्कि घोषणा कर सकें जीवन की कि मै जानता हूँ, मैं शरीर नही हूँ। और यह घोषणा केवल शब्दो की न हो, यह उसके सारे जीवन से प्रकट होती रहे तो शायद हम मनुष्य

को बचाने में सफल हो सकते हैं, अन्यथा विज्ञान की सारी की सारी विकसित अवस्था मनुष्य को भी एक यन्त्र मे परिणत कर देगी। और जिस दिन मनुष्य जाति को यह खयाल आ जायगा कि भीतर कुछ भी नही है उस दिन से शायद भीतर के सारे द्वार बन्द हो जायेंगे और उसके बाद क्या होगा, कहना कठिन है।

आज तक भी अधिक लोगों के भीतर के द्वार बन्द रहे हैं लेकिन कभी-कभी कोई एक साहसी व्यक्ति भीतर की दीवालें तोडकर घुस जाता है। कभी कोई एक महावीर, कभी कोई एक बुद्ध, कभी कोई एक क्राइस्ट, कभी कोई एक लाओत्से तोड देता है दीवाल और भीतर घुस जाता है। उसकी सभावना भी रोज-रोज कम होती जा रही है। हो सकता है, सौ-दो सौ वर्षों के बाद मनुष्य कहे कि मृत्यु है, जीवन नही है। इसकी तैयारी तो पूरी हो गई है। इसको कहने वाले लोग तो खड़े हो गए हैं। आखिर मार्क्स क्या कह रहा है? मार्क्स कह रहा है कि मैटर है, माइंड नहीं है। मार्क्स यह कह रहा है कि पदार्थ है, परमात्मा नही है और जो तुम्हे परमात्मा मालूम होता है वह भी बाई प्रोडेक्ट है पदार्थ का। वह भी पदार्थ की ही उत्पत्ति है, वह भी पदार्थ से ही पैदा हुआ है। मार्क्स यह कह रहा है कि जीवन नही है, मृत्यु है, क्योकि अगर आत्मा नही है और पदार्थ ही है तो फिर जीवन नही है। मार्क्स की इस बात का प्रभाव बढ़ता चला गया, यह शायद आपको पता नहीं होगा। दुनिया मे ऐसे लोग रहे है जिन्होने हमेशा आत्मा को इन्कार किया है लेकिन आत्मा को इन्कार करने वालो का धर्म आज तक दुनिया मे पैदा नही हुआ था। मार्क्स ने पहली दफा आत्मा को इन्कार करने वाले लोगो का धर्म पैदा कर दिया है। नास्तिको का अबतक कोई सगठन नही था। चार्वाक् थे, बृहस्पति थे, एपीक्युरस था। दुनिया मे अद्भुत लोग हुए जिन्होने यह कहा कि आत्मा नही, लेकिन उनका कोई चर्च, उनका कोई सगठन नही था। मार्क्स दुनिया मे पहला नास्तिक है जिसके पास आर्गनाइज्ड चर्च है और आधी दुनिया उसके चर्च के भीतर खडी हो गई है और आने वाले पचास वर्षों मे बाकी आधी दुनिया भी खडी हो जायगी। (आत्मा तो है, लेकिन उसको जानने और पहचानने के सारे द्वार बन्द होते जा रहे हैं। जीवन तो है, लेकिन उस जीवन से सबधित होने की सारी सभावनाएँ क्षीण होती जा रही हैं। इसके पहले कि सारे द्वार बन्द हो जायें, जिनमे थोडी भी सामर्थ्य और साहस है उन्हें अपने ऊपर प्रयोग करने चाहिए और चेष्टा करनी चाहिए भीतर जाने की, ताकि वे अनुभव कर सकें।

और अगर दुनिया के सौ-दो सौ लोग भीतर की ज्योति को अनुभव करते हों तो कोई खतरा नही है। करोडो लोगो के भीतर का अन्धकार थोडे से लोगो की ज्योति से दूर हो सकता है और टूट सकता है। एक छोटा सा दीया न मालूम कितने अन्धकार को तोड देता है। अगर एक गाँव मे एक आदमी भी हो जो जानता हो कि आत्मा अमर है तो गाँव का पूरा वातावरण, उस गाँव की पूरी की पूरी हवा, उस गाँव की पूरी की पूरी जिन्दगी बदल जायगी।

एक छोटा-सा फूल खिलता है और दूर दूर के रास्तो पर उसकी सुगन्ध फैल जाती है। एक आदमी भी अगर इस बात को जानता है कि आत्मा अमर है तो उस एक आदमी का एक गाँव मे होना पूरे गाँव की आत्मा की शुद्धि का कारण बन सकता है। लेकिन हमारे मुल्क मे तो कितने साधु है और कितने चिल्लाने और शोरगुल मचानेवाले लोग हैं कि आत्मा अमर है और उनकी इतनी लबी कतार, इतनी भीड और मुल्क का यह नैतिक चरित्र और मुल्क का यह पतन! यह साबित करता है कि यह सब धोखेबाज धन्धा है। यह इतनी भीड, इतनी कतार, यह इतना बडा सर्कस साधुओ का सारे मुल्क मे—कोई मुँह पर पट्टी बाँधे हुए एक तरह का सर्कस कर रहा है, कोई डडा लिए हुए दूसरे तरह का सर्कस कर रहा है, कोई तीसरे तरह का सर्कस कर रहा है। यदि यह इतनी बडी भीड आत्मा को जानने वाले लोगो की है, और मुल्क का जीवन इतना नीचे गिरता चला जाय, यह असभव है! और मैं आपको कहना चाहता हूँ कि जो लोग कहते हैं कि आम आदमी ने दुनिया का चरित्र बिगाडा है, वे गलत कहते हैं। आम आदमी हमेशा ऐसा रहा है। दुनिया का चरित्र ऊँचा था कुछ थोडे से लोगो के आत्म अनुभव की वजह से। आम आदमी हमेशा था। आम आदमी मे फर्क नही पड गया है। आम आदमी के बीच कुछ लोग थे जो समाज और उसकी चेतना को सदा ऊपर उठाते रहे, सदा ऊपर खीचते रहे। उनकी मौजूदगी उत्प्रेरक का काम करती रही और आदमी के जीवन को ऊपर खीचती रही। और अगर आज दुनिया मे आदमी का चरित्र इतना नीच है तो जिम्मेवार हैं साधु, जिम्मेवार हैं महात्मा, जिम्मेवार है धर्म की बातें करनेवाले झूठे लोग। आम आदमी कोई जिम्मेवार नहीं है। उसका कभी कोई उत्तरदायित्व नही रहा है। पहले भी नही था, आज भी नहीं है।

अगर दुनिया को बदलना है तो इस बकवास को छोड दो कि हम एक-एक आदमी का चरित्र सुधारेंगे, कि हम एक-एक आदमी को नैतिक शिक्षा का पाठ

देंगे। अगर दुनिया को बदलना चाहते हैं तो कुछ थोडे मे लोगों को अत्यन्त तीव्र आत्मिक प्रयोगो से गुजरना पडेगा। जो लोग बहुत भीतरी प्रयोग से गुजरने को राजी हैं उनसे ही इसकी आशा की जा सकती है। ज्यादा नही, सिर्फ एक मुल्क मे सौ लोग आत्मा को जानने की स्थिति मे पहुँच जायें तो पूरे मुल्क का जीवन अपने आप ऊपर उठ आयगा।

मै तो राजी हो गया था इस विषय पर बोलने के लिए ताकि कोई हिम्मत का आदमी आ जाय तो मैं उसको आमन्त्रण दूं और कहूँ कि मेरी तैयारी है उसे भीतर ले जाने की। तुम्हारी तैयारी हो तो आ जाओ। वहाँ बताया जा सकता है कि जीवन क्या है और मृत्यु क्या है।

अहिंसा

अधकार खोना है, प्रकाश पाना ह । असत्य खोना है, सत्य पाना है। इससे एक बात और खयाल मे ले लेनी जरूरी है कि नकारात्मक शब्द इस बात की खबर देते हैं कि अहिंसा हमारा स्वभाव है उसे पाया नही जा सकता, वह है ही । हिंसा पाई गई है, वह हमारा स्वभाव नही है। वह अर्जित है, हिंसक बनने के लिए हमे कुछ करना पडा है । हिंसा हमारी उपलब्धि है। हमने उस खोजा है, हमने उसका निर्माण किया है । अहिंसा हमारी उपलब्धि नही हो सकती, सिर्फ हिंसा न हो जाय तो जो शेष बचेगा वह अहिंसा होगी ।

इसलिए साधना नकारात्मक है । वह जो हमने पा लिया है और जो पाने

योग्य नहीं है, उसे खो देना। वैसे कोई आदमी स्वभाव से हिंसक नही है, हो नही सकता। क्योंकि कोई भी दुःख को चाह नहीं सकता और हिंसा सिवा दुःख के कहीं भी नहीं ले जाती। हिंसा सयोगिक है, वह हमारे जीवन की धारा नहीं है। इसलिए जो हिंसक है वह भी चौबीस घटे हिंसक नही हो सकता। अहिंसक चौबीस घटे अहिंसक हो सकता है। हिंसक चौबीस घटे हिंसक नहीं हो सकता, उसे भी किसी वर्तुल के भीतर अहिंसक ही होना पडता है। असल में अगर वह हिंसा भी करता है तो किन्ही के साथ अहिंसक हो सके, इसलिए करता है। कोई आदमी चौबीस घटे चोर नही हो सकता, अगर कोई चोरी भी करता है तो इसीलिए कि कुछ समय के लिए वह बिना चोरी के हो सके। चोर का लक्ष्य भी अचोरी है और हिंसक का लक्ष्य भी अहिंसा है। और इसलिए ये सारे शब्द नकारात्मक हैं।

धर्म की भाषा मे दो शब्द विधायक हैं, बाकी सब शब्द नकारात्मक हैं। एक सत्य शब्द विधायक है, पोजिटिव है, और एक ब्रह्मचर्य शब्द विधायक है, पोजिटिव है।

यह भी प्राथमिक रूप से खयाल मे ले लेना जरूरी है कि जो पाँच शब्द मैंने चुने हैं और जिन्हें मैं पच महाव्रत कहता हूँ, वे नकारात्मक है। जब वे पाँचो छूट जायेंगे तो जो भीतर उपलब्ध होगा वह होगा सत्य, और जो बाहर उपलब्ध होगा वह होगा ब्रह्मचर्य।

सत्य आत्मा बन जायगी इन पाँच के छूट जाने पर और ब्रह्मचर्य आचरण बन जायगा इन पाँच के छूटने पर। सत्य का अर्थ है जिसे हम भीतर जानेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है जिसे हम बाहर जियेंगे। ब्रह्मचर्य का अर्थ है ब्रह्म जैसी चर्या, ईश्वर-जैसा आचरण। ईश्वर-जैसा आचरण उसी का हो सकता है जो ईश्वर जैसा हो जाय। सत्य का अर्थ है—ईश्वर जैसा हो जाना। सत्य का अर्थ है ब्रह्म। जो ईश्वर-जैसा हो गया उसकी जो चर्या होगी वह ब्रह्मचर्या होगी और ब्रह्म-जैसा आचरण होगा। ये दो शब्द धर्म की भाषा मे विधायक हैं, पोजिटिव हैं। बाकी पूरे धर्म की भाषा नकारात्मक है।

अगर ठीक से समझें तो अहिंसा पर कोई विचार नही हो सकता, सिर्फ हिंसा पर विचार हो सकता है, और हिंसा के न होने पर विचार हो सकता है। ध्यान रहे अहिंसा का मतलब सिर्फ इतना ही है—हिंसा का न होना, हिंसा की अनुपस्थिति, हिंसा का अभाव।

इसे इस तरह समझें। किसी चिकित्सक को पूछे कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है ? दुनिया मे स्वास्थ्य के बहुत मे विज्ञान विकसित हुए हैं लेकिन कोई भी स्वास्थ्य की परिभाषा नही करता। अगर आप पूछे कि स्वास्थ्य की परिभाषा क्या है, तो चिकित्सक कहेगा जहाँ बीमारी न हो। लेकिन यह बीमारी की बात हुई, यह स्वास्थ्य की बात न हुई। यह बीमारी का न होना हुआ। बीमारी की परिभाषा हो सकती है, लेकिन स्वास्थ्य की कोई परिभाषा नही हो सकती। स्वास्थ्य क्या है ? ज्यादा से ज्यादा इतना ही हम कह सकते हैं कि जब कोई बीमारी नही है तो वह स्वास्थ्य है।

धर्म परम स्वास्थ्य है, इसलिए धर्म की कोई परिभाषा नही हो सकती। सब परिभाषा अधर्म की है।

विचार से, बोध से अधर्म छूट जाय तो जो निर्विचार मे शेष रह जाता है, उसी का नाम धर्म है। इसलिए जहाँ धर्म पर चर्चा होती है, वहाँ व्यर्थ चर्चा होती है। चर्चा सिर्फ अधर्म की हो सकती है। चर्चा धर्म की हो नही सकती। चर्चा बीमार की हो सकती है, चर्चा स्वास्थ्य की नही हो सकती। स्वास्थ्य को जाना जा सकता है, स्वास्थ्य को जिया जा सकता है, स्वस्थ्य हुआ जा सकता है—चर्चा नही हो सकती। धर्म को जाना जा सकता है, जिया जा सकता है, धर्म मे हुआ जा सकता है। धर्म की चर्चा नहीं हो सकती। इसलिए सब धर्मशास्त्र वस्तुत अधर्म की चर्चा करते हैं, धर्म की कोई चर्चा नही करता।

पहली चर्चा हम अधर्म की करे जो है हिसा। और जो-जो हिसक है उनके लिए यह पहला व्रत है। यह समझने-जैसा मामला है कि हम जो विचार करेंगे वह यह मानकर विचार करेंगे कि हम हिंसक हैं। इसके अतिरिक्त उस चर्चा का कोई अर्थ नही। ऐसे भी हम हिंसक हैं। हमारे हिंसक होने मे भेद हो सकते हैं और हिंसा की इतनी पर्तें है, और इतनी सूक्ष्मताएँ हैं कि कई बार ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम अहिंसा कह रहे हैं और समझ रहे हैं वह भी हिसा का बहुत सूक्ष्म रूप हो। और ऐसा भी हो सकता है कि जिसे हम हिंसा कह रहे हैं वह भी अहिंसा का बहुत स्थूल रूप हो।

जिन्दगी बहुत जटिल है। उदाहरण के लिए गाँधी जी की अहिसा को मैं हिंसा का सूक्ष्म रूप कहता हूँ और कृष्ण की हिंसा को अहिंसा का स्थूल रूप कहता हूँ। हिंसक को ही विचार करना जरूरी है अहिंसा पर। इसलिए यह

भी प्रासंगिक है समझ लेना कि दुनिया में अहिंसा का विचार हिंसकों की जमात से आया।

जैनों के चौबीस तीर्थंकर क्षत्रिय थे। वह जमात हिंसकों की थी। उनमे एक भी ब्राह्मण नही था, उनमे एक भी वैश्य नही था। बुद्ध भी क्षत्रिय थे। दुनिया मे अहिंसा का विचार ही हिंसको की जमात से आया है। दुनिया में अहिंसा का खयाल, जहाँ हिंसा घनी थी, सघन थी वहाँ पैदा हुआ है। असल मे हिंसको को ही सोचने के लिए मजबूर होना पडा है अहिंसा के संबंध मे। जो चौबीस घंटे हिंसा मे रत हैं उन्ही को यह दिखाई पडा है कि यह हमारी अंतरात्मा नही है। असल में हाथ मे तलवार हो, क्षत्रिय का मन हो तो बहुत देर न लगेगी यह देखने मे कि हिंसा हमारी पीडा है, दुःख है। वह हमारा जीवन नही है। वह हमारा आनन्द नही है।

मै तो मानकर चलूँगा कि हम लोग हिंसक हैं। और जब मैं हिंसा के बहुत रूपो की आपसे बात करूँगा तो आप समझ पायेंगे कि आप किस रूप के हिंसक हैं। और अहिंसक होने की पहली शर्त है, अपनी हिंसा को उसकी ठीक-ठीक जगह पर पहचान लेना। क्योंकि जो व्यक्ति हिंसा को ठीक से पहचान ले वह व्यक्ति हिंसक नही रह सकता। हिंसक रहने की तरकीब, टेकनिक एक ही है कि हम अपनी हिंसा को अहिंसा समझ जाएँ। इसलिए असत्य, सत्य के वस्त्र पहन लेता है। हिंसा, अहिंसा के वस्त्र पहन लेती है। यो धोखा पैदा होता है।

मैंने एक सीरियन कथा सुनी है।

सौंदर्य और कुरूपता की देवियो को जब परमात्मा ने बनाया और वे पृथ्वी पर उतरी तो एक झील के किनारे वस्त्र रख कर वे स्नान करने गई। स्वभावतः सौंदर्य की देवी को पता भी न था कि उसके वस्त्र बदले जा सकते हैं। असल मे सौंदर्य को अपने वस्त्रो का पता ही नही होता। सौंदर्य को अपनी देह का भी पता नही होता। सिर्फ कुरूपता को देह का बोध होता है। सिर्फ कुरूपता को वस्त्रो की चिंता होती है; क्योंकि कुरूपता वस्त्रो और देह की व्यवस्था से अपने को छिपाने का उपाय करती है। सौंदर्य की देवी झील मे दूर स्नान करते निकल गई और तभी कुरूपता को देवी को मौका मिला, वह बाहर आई, उसने सौंदर्य की देवी के कपडे पहने और चलती बनी। जब सौंदर्य की देवी बाहर आई तो बहुत हैरान हुई। उसके वस्त्र वहाँ नही थे। वह नग्न खडी

थी। गाँव के लोग जागने शुरू हो गए और राहो पर चलने लगे। उधर कुरूपता की देवी उसके वस्त्र लेकर भाग गई थी। तो मजबूरी मे उसे कुरूपता के वस्त्र पहन लेने पड़े। और कथा कहती है कि तब से वह कुरूपता की देवी का पीछा कर रही है और खोज रही है, लेकिन अबतक मिलना नही हो पाया। कुरूपता अब भी सौदर्य के वस्त्र पहने हुए है और सौदर्य की देवी अभी भी मजबूरी मे कुरूपता के वस्त्रो को ओढे हुए है।

असल मे असत्य को जब भी खडा होना हो तो उसे सत्य का चेहरा उधार लेना पडता है। उसे सत्य का ढग अगीकार करना पडता है। हिसा को भी खडे होने के लिए अहिसा बनना पडता है। इसलिए अहिसा की दिशा मे जो पहली बात जरूरी है, वह यह है कि हिसा के चेहरे पहचान लेने जरूरी है। खासकर उसके अहिसक चेहरे को पहचान लेना बहुत जरूरी है। हिसा सीधा धोखा किसी को भी दे नही सकती। दुनिया मे कोई भी पाप सीधा धोखा देने मे असमर्थ है। पाप को भी पुण्य की आड मे ही धोखा देना पडता है। यह पुण्य के गुण-गौरव की कथा है। इसमे पता चलता है कि पाप भी अगर जीतता है तो पुण्य का चेहरा लगाकर ही जीतता है। जीतता सदा पुण्य ही है। चाहे पाप आपके ऊपर चेहरा बन कर जीतता हो और चाहे खुद की अतरात्मा बन कर जीतता हो। पाप खुद कभी जीतता नही। पाप अपने मे हारा हुआ है। हिसा जीत नही सकती, लेकिन दुनिया मे हिसा मिटती नही, क्योकि हमने हिसा के बहुत अहिसक चेहरे खोज निकाले है। तो पहले हम हिंसा के चेहरे को समझने की कोशिश करे।

हिसा का सबसे पहला रूप सबसे पहला आयाम बहुत गहरा है, वही से पकडे। सबसे पहली हिसा दूसरे को दूसरा मानने से शुरू होती है। जैसे ही मैं कहता कि हूँ आप दूसरे है, मै आपके प्रति हिसक हो गया। असल मे दूसरे के प्रति अहिसक होना असभव है। हम सिर्फ अपने प्रति ही अहिसक हो सकते है, ऐसा स्वभाव है। हम दूसरे के प्रति अहिसक हो ही नही सकते। होने की बात ही नही उठती, क्योकि दूसरे को दूसरा स्वीकार लेने मे ही हिसा शुरू हो गई। बहुत सूक्ष्म है, बहुत गहरी है यह बात।

सार्त्र का वचन है—'दी अदर इज हेल' वह जो दूसरा है वह नरक है। सार्त्र के इस वचन से मैं थोडी दूर तक राजी हूँ। उसकी समझ गहरी है। वह ठीक कह रहा है—दूसरा नरक है। लेकिन उसकी समझ अधूरी भी है। दूसरा

नरक नही है, दूसरे को दूसरा समझने मे नरक है। इसलिए जो भी स्वर्ग के थोड़े से क्षण हमे मिलते हैं वह तब मिलते हैं जब हम दूसरे को अपना समझते हैं। उसे हम प्रेम कहते है।

अगर मैं किसी को किसी क्षण मे अपना समझता हूँ, तो उसी क्षण मेरे और उसके बीच जो धारा बहती है वह अहिसा की है। किसी क्षण मे दूसरे को अपना समझने का क्षण ही प्रेम का क्षण है। लेकिन जिसको हम अपना समझते हैं वह भी गहरे मे दूसरा ही बना रहता है। किसी को अपना कहना भी सिर्फ इस बात की स्वीकृति है कि तुम हो तो दूसरे, लेकिन हम तुम्हें अपना मानते है। इसलिए जिसे हम प्रेम कहते हैं उसकी भी गहराई में हिंसा मौजूद रहती है। और इसलिए प्रेम की वह जो ज्योति है, कभी कम, कभी ज्यादा होती रहती है। कभी वह दूसरा हो जाता है, कभी अपना हो जाता है। चौबीस घंटे मे यह कई बार बदलाहट होती है। जब वह जरा दूर निकल जाता है और दूसरा दिखाई पडने लगता है, तब हिंसा बीच मे आ जाती है। जब वह जरा करीब आ जाता है और अपना दिखाई पडने लगता है तब हिंसा थोड़ी कम हो जाती है। लेकिन जिसे हम अपना कहते है वह भी दूसरा है। पत्नी भी दूसरी है चाहे कितनी भी अपनी हो। बेटा भी दूसरा है चाहे कितना ही अपना हो। पति भी दूसरा है चाहे कितना ही अपना हो। अपना कहने मे भी दूसरे का भाव सदा मौजूद है। इसलिए प्रेम भी पूरी तरह अहिंसक नही हो पाता। प्रेम की हिंसा के भी अपने ढग है।

प्रेम अपने ढग से हिसा करता है। प्रेमपूर्ण ढग से हिसा करता है। पत्नी, पति को प्रेमपूर्ण ढग से सताती है। पति, पत्नी को प्रेमपूर्ण ढग से सताता है। बाप बेटे को प्रेमपूर्ण ढग से सताता है। और जब सताना प्रेम हो तो बडा सुरक्षित हो जाता है। फिर सताने मे बडी सुविधा मिल जाती है, क्योंकि हिसा ने अहिसा का चेहरा ओढ़ लिया है। शिक्षक विद्यार्थी को सताता है और कहता है तुम्हारे हित के लिए ही सता रहा हूँ। जब हम किसी के हित के लिए सताते है तब सताना बडा आसान है—वह गौरवान्वित, पुण्यकारी हो जाता है। इसलिए ध्यान रखना, दूसरे को सताने मे हमारे चेहरे सदा साफ होते है। अपनो को सताने मे हमारे चेहरे कभी भी साफ नही होते। इसलिए दुनिया मे जो बडी से बड़ी हिसा चलती है वह दूसरे के साथ नही, वह अपनो के साथ चलती है।

सच तो यह है कि किसी को भी शत्रु बनाने के पहले मित्र बनाना अनिवार्य शर्त है। किसी को मित्र बनाने के लिए शत्रु बनाना अनिवार्य शर्त नही है। शर्त ही नही है। असल मे शत्रु बनाने के लिए पहले मित्र बनाना जरूरी है। मित्र बनाए बिना शत्रु नही बनाया जा सकता। हाँ, मित्र बनाया जा सकता है, बिना शत्रु बनाए। उसके लिए कोई शर्त नही है शत्रुता की। मित्रता सदा शत्रुता के पहले है।

अपनो के साथ जो हिंसा है वह अहिंसा का गहरे से गहरा चेहरा है। इसलिए जिस व्यक्ति को हिंसा के प्रति जागना हो उसे पहले अपनो के प्रति जो हिंसा है उसके प्रति जागना होगा। लेकिन मैंने कहा, किसी-किसी क्षण मे दूसरा अपना मालूम पडता है। बहुत निकट हो गए होते हैं हम। यह निकट होना, दूर होना बहुत सरल है। पूरे वक्त बदलता रहता है।

इसलिए हम चौबीस घटे प्रेम मे नही होते। किसी के साथ प्रेम के सिर्फ क्षण होते है। प्रेम के घटे नही होते। प्रेम के दिन नही होते। प्रेम के वर्ष नही होते, लेकिन जब हम क्षणो से स्थायित्व का धोखा देते है तो हिंसा शुरू हो जाती है। अगर मैं किसी को प्रेम करता हूँ तो यह क्षण की बात है। अगले क्षण भी करूँगा, जरूरी नही। कर सकूँगा, जरूरी नही। लेकिन अगर मैंने वायदा किया कि अगले क्षण भी प्रेम जारी रखूँगा तो अगले क्षण जब हम दूर हट गए होगे और हिसा बीच मे आ गई होगी तब हिंसा प्रेम की शक्ल लेगी।

इसलिए दुनिया मे जितनी अपनी बनानेवाली सस्थाएँ हैं, सब हिंसक हैं। परिवार से ज्यादा हिंसा और किसी सस्था ने नही की, लेकिन उसकी हिंसा बडी सूक्ष्म है। इसलिए अगर सन्यासी को परिवार छोड देना पडता था, तो उसका कारण था सूक्ष्मतम हिंसा मे बाहर हो जाना, और कोई कारण नही था। सिर्फ एक ही कारण था कि हिंसा का एक सूक्ष्मतम जाल है जो अपने कहनेवाले कर रहे है। उनसे लडना भी मुश्किल है, क्योकि वे हमारे हित मे ही कर रहे हैं। परिवार का ही फैला हुआ बडा रूप समाज है, इसलिए समाज ने जितनी हिंसा की है उसका हिसाब लगाना कठिन है।

सच तो यह है कि समाज ने करीब-करीब व्यक्ति को मार डाला है, इसलिए ध्यान रहे जब आप समाज के सदस्य की हैसियत से किसी से व्यवहार करते हैं तब आप हिंसक होते हैं। अगर आप जैन की तरह किसी व्यक्ति से व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। हिन्दू की तरह व्यवहार करते हैं तो आप

हिंसक हैं। मुसलमान की तरह व्यवहार करते हैं तो आप हिंसक हैं। क्योंकि अब आप व्यक्ति की तरह व्यवहार नही कर रहे हैं, आप समाज की तरह व्यवहार कर रहे हैं। और अभी व्यक्ति ही अहिंसक नही हो पाया, तो समाज के अहिंसक होने की सभावना तो बहुत दूर है। समाज तो अहिंसक हो ही नहीं सकता। इसलिए दुनिया मे जो बडी हिंसा है वह व्यक्तियो ने नहीं की, वह समाजो ने की है।

अगर एक मुसलमान को हम कहें कि इस मदिर में आग लगा दो, तो अकेला मुसलमान व्यक्ति की हैसियत से पच्चीस बार सोचेगा। क्योंकि हिंसा बहुत साफ दिखाई पड रही है। लेकिन दस हजार मुसलमान की भीड में उसे खडा कर दें तब वह एक बार भी नही सोचेगा, क्योंकि दस हजार की भीड एक समाज है। अब हिंसा साफ न रह गई, बल्कि अब यह हो सकता है कि वह धर्म के ही हित मे मदिर मे आग लगा दे। ठीक यही मस्जिद के साथ हिन्दू कर सकता है। ठीक यही दुनिया के सारे समाज एक दूसरे के साथ कर रहे है।

समाज का मतलब है अपनो की भीड। और दुनिया मे तबतक हिंसा मिटानी मुश्किल है जबतक हम अपनो की भीड बनाने की जिद बद नही करते। अपनो की भीड का मतलब है कि यह भीड सदा परायो के खिलाफ खडी होगी। इसलिए दुनिया के सब सगठन हिंसात्मक होते हैं। दुनिया का कोई सगठन अहिंसात्मक नही हो सकता। सभावना नही है अभी शायद करोडो वर्ष लग जायँ जब पूरा मनुष्य रूपातरित हो जाय तो शायद कभी अहिंसात्मक लोगो का भी कोई मिलन हो सके।

अभी तो सब मिलन हिंसात्मक लोगो के हैं, परिवार ही क्यो न हो। परिवार दूसरे लोगो के खिलाफ खडी की गई इकाई है। परिवार बायो-लॉजिकल यूनिट है, जैविक इकाई है, दूसरी जैविक इकाइयो के खिलाफ। समाज, दूसरे समाजो के खिलाफ सामाजिक इकाई है। राज्य, दूसरे राज्यो के खिलाफ राजनैतिक इकाई है। ये सारी इकाइयाँ हिंसा की है। मनुष्य उस दिन अहिंसक होगा जिस दिन वह निपट व्यक्ति होने को राजी है। इसलिए महावीर को जैन नही कहा जा सकता और जो कहते हो वह महावीर के साथ अन्याय करते है। महावीर किसी समाज के हिस्से नहीं हो सकते। कृष्ण को हिन्दू नही कहा जा सकता और जीसस को ईसाई कहना निपट पागलपन है।

ये व्यक्ति है, इनकी इकाई ये खुद हैं। ये किसी दूसरी इकाई के साथ जुडने को राजी नही हैं।

सन्यास समस्त इकाइयो के साथ जुडने से इनकार है। असल मे सन्यास इस बात की खबर है कि समाज हिंसा है और समाज के साथ खडे होने मे हिंसक होना ही पडेगा। अपनो का चेहरा भी हिंसा का सूक्ष्मतम रूप है। इसलिए जिसे प्रेम कहते हैं, वह भी अहिंसा नही बन पाता।

अपना जिसे कहते है वह भी 'मैं' नही हूँ। वह भी दूसरा है। अहिंसा उस क्षण शुरू होगी जिस दिन दूसरा नही है। यह नही कि वह अपना है, वह है ही नही। लेकिन यह क्या बात है कि दूसरा, दूसरा दिखाई पडता है। होगा ही दूसरा, तभी दिखाई पडता है। नही, लेकिन जैसा दिखाई पडता है वैसा हो ही, यह जरूरी नही है। अँधेरे मे रस्सी भी सांप दिखाई पडती है। रोशनी होने से पता चलता है कि ऐसा नही है। खाली आँखो से देखने पर पत्थर ठोस दिखाई पडता है। विज्ञान की गहरी आँखो से देखने पर ठोसपन विदा हो जाता है। पत्थर सब्स्टेंशिअल नही रह जाता। असल मे पत्थर-पत्थर ही नही रह जाता। पत्थर मेटीरियल ही नही रह जाता। पत्थर पदार्थ ही नही रह जाता, सिर्फ एनर्जी रह जाता है। जैसा दिखाई पडता है, वैसा ही नही है। जैसा दिखाई पडता है वह हमारे देखने की क्षमता की सिर्फ सूचना है। सिर्फ दूसरा है इसलिए दिखाई पडता है। नही, दूसरे को दिखाई पडने का कारण दूसरे का होना नही है। दूसरे का दिखाई पडने का कारण बहुत अद्भुत है, इसे समझ लेना जरूरी है। इसे बिना समझे हम हिंसा की गहराई को न समझ सकेंगे।

दूसरा इसलिए दिखाई पडता है कि मै अभी नही हूँ। मै नही हूँ, मुझे अपना कोई पता नही है। इस मेरे न होने को, इस मेरे का पता न होने को, इस मेरे आत्म-अज्ञान को मैने दूसरे का ज्ञान बना लिया। हम दूसरे को देख रहे है क्योकि हम अपने को देखना नही जानते और देखना तो पडेगा ही। देखने की दो सभावनाए है या तो वह दूसरे की तरफ देखने का तीर हो या अतर की ओर तीर हो—इनर ऐरोड या अदर ऐरोड हो।

दूसरे को देखे या अपने को देखें, यह देखने के दो विकल्प हैं। यह देखने के दो डायमेनशन हैं चूंकि हम अपने को देख ही नही सकते, देख ही नही पाते, देखा ही नहीं, हम दूसरे को ही देखते रहते हैं।

दूसरे का होना आत्म-अज्ञान से पैदा होना है। असल मे यह ध्यान का डायमेन्शन है। एक युवक हॉकी के मैदान मे खेल रहा है, पैर मे चोट लग गई, खून बह रहा है। हजारो दर्शकों को दिखाई पड रहा है कि पैर से खून बह रहा है, सिर्फ उसे पता नहीं। क्या हो गया उसको ? होश मे पूरा नहीं है ? होश मे है, क्योकि गेंद की जरा-सी गति भी उसे दिखाई पड रही है। गति मे बेहोश है ? बेहोश बिलकुल नही है, क्योकि दूसरे खिलाडियों का जरा-सा मूवमेन्ट, जरा सी हलचल उसकी आँख मे है। बेहोश वह नही है, क्योकि खुद को पूरी तरह सतुलित करके वह दौड़ रहा है। लेकिन पैर से खून गिर रहा है, यह दिखाई क्यो नही पड रहा है ? यह उसे पता क्यो नही चल रहा है ? उसकी सारी अटेन्शन 'अदर डायरेक्टेड' है। उसकी चेतना इस समय 'वन डायमेन्शनल' है। वह बाहर की दिशा मे लगी है। वह खेल मे व्यस्त है। वह इतने जोर से व्यस्त है कि चेतना का टुकडा भी नही बचा है जो भीतर की तरफ जा सके। सब चेतना बाहर बह रही है। खेल बन्द हो गया है। अब वह पैर पकड कर बैठ गया और रो रहा है और कह रहा है, बहुत चोट लग गई ! मुझे पता क्यो नही चला ? आधा घटा वह कहाँ था ? आधा घटा भी वह था, लेकिन दूसरे पर केन्द्रित था। अब लौट आया अपने पर। अब उसे पता चल रहा है कि पैर मे चोट लग गई, दर्द है, पीडा है। अब उसका ध्यान अपने शरीर की तरफ गया है। अभी भी उसे उसका पता नही चल रहा है जिसे पता चल रहा है कि दर्द हो रहा है। अभी और भीतर की यात्रा सभव है। अभी वह बीच मे खडा है। दूसरा बाहर है, मै भीतर हूँ, और दोनो के बीच मे मेरा शरीर है। हमारी यात्रा, या तो दूसरा या अपना शरीर—इनके बीच होती रहती है। हमारी चेतना इनके बीच डोलती रहती है। या तो हम दूसरे को जानते है या अपने शरीर को जानते हैं, वह भी दूसरा है।

असल मे अपने शरीर का मतलब केवल इतना है कि हमारे और दूसरे के बीच सबधो के जो तीर हैं, तट हैं, जहाँ हमारी चेतना की नदी बहती रहती है, मेरा शरीर और आपका शरीर इनके बीच बहती रहती है। आपसे भी मेरा मतलब आपसे नही है, क्योकि जब मेरा मतलब मेरे शरीर से होता है, तो आपसे मतलब सिर्फ आपके शरीर से होता है। न आपकी चेतना से मुझे कोई प्रयोजन है, न मुझे आपकी चेतना का कोई पता है। जिसे अपनी चेतना का पता नहीं उसे दूसरे की चेतना का पता हो भी कैसे सकता है ? अगर ठीक से

कहें तो हिंसा दो शरीरो के बीच का संबंध है। दो शरीरो के बीच अहिंसा का कोई सबध नही हो सकता। शरीरो के बीच सबध सदा हिंसा का होगा। अच्छी हिंसा का हो सकता है, बुरी हिंसा का हो सकता है, खतरनाक हिंसा का हो सकता है, गैर खतरनाक हिंसा का हो सकता है। लेकिन तय करना मुश्किल है कि खतरा कब गैर खतरा हो जाता है, गैर खतरा कब खतरा बन जाता है।

एक आदमी प्रेम से किसी को छाती से दबा रहा है। बिलकुल गैर खतरनाक हिंसा है। असल मे दूसरे के शरीर को दबाने का सुख ले रहा है लेकिन और थोडा बढ जाय और जोर से दबावे तो घबराहट शुरू हो जायगी। छोड़े ही नही और जोर से दबावे और श्वास घुटने लगे, तो जो प्रेम था वह तत्काल घृणा बन जायगा, हिंसा बन जायगा।

ऐसे प्रेमी हैं जिनको हम परपीडक कहते हैं। वे जब तक दूसरो को सता न ले तब तक उनका प्रेम पूरा नही होता। वैसे हम सब प्रेम मे एक दूसरे को थोडा सताते है। जिसको हम चुबन कहते है वह सताने का एक ढग है, लेकिन धीमा। हिंसा उसमे पूरी है। लेकिन थोडा और बढ जाय, काटना शुरू हो जाय, तो हिंसा थोडी बढी। कुछ प्रेमी काटते भी हैं, लेकिन तबतक भी चलेगा। जिन्होने प्रेम-शास्त्र लिखा है उन्होंने नख-दश को भी प्रेम की एक व्यवस्था दी है। नाखून से प्रेमी को दश पहुँचाना वह भी प्रेम है। हिन्दुस्तान मे जो कामशास्त्र के ज्ञाता हैं वे कहते हैं कि जबतक प्रेमी को नाखून से खुरचें नही, तबतक उसके भीतर प्रेम ही पैदा नही होता। लेकिन नाखून से खुरचना है, तो फिर एक औजार लेकर खुरचने मे हर्ज क्या है? लेकिन जब नाखून से खुरचना रोज की आदत बन जायगी तब फिर रस खो जायगा। फिर एक हथियार रखना पडेगा। जिस आदमी के नाम पर सैडीज्म शब्द बना है, वह आदमी अपने साथ एक कोडा भी रखता था, एक काँटा भी रखता था पाँच अगुलियो वाला। पत्थर भी रखता था। और भी प्रेम के कई साधन अपने बैग मे रखता था। वह जब किसी को प्रेम करता तो दरवाजे बन्द करके उसे कोडे लगाता। जब उसकी प्रेयसी का सारा शरीर कोडों से लहू-लुहान हो जाता तब वह काँटे चुभाता। यह सब प्रेम था।

कई प्रेमियो ने अपनी प्रेयसियो की गर्दनें दबा डाली हैं। प्रेम के क्षणो में मार ही डाला है। उस पर मुकदमे चले है। अदालतें नही समझ पाई कि यह कैसा प्रेम है? लेकिन अदालतो को समझना चाहिए, यह थोडा आगे बढ गया

प्रेम है ! यह संबंध जरा घनिष्ठ हो गया है। वैसे सभी प्रेमी एक-दूसरे की गर्दन दबाते हैं। कोई हाथ से दबाता है, कोई मन से दबाता है, कोई और-और तरकीबों से दबाता है। प्रेमी को दबाना यह हमारा ढग रहा है। कम-ज्यादा की बात दूसरी है। दो शरीरों के बीच मे जो सबंध है वह चाहे छुरा मारने का हो, चाहे चुबन का, या आलिगन का हो उसमे बुनियादी फर्क नही है।

कभी-कभी छोटे बच्चे अगर चलता हुआ कीडा देखते हैं, तो उसको तोड कर देखेंगे। फूल मिलेगा तो उसको फाड कर देखेंगे। क्या आप सोच सकते हैं कि किसी आदमी को दूसरे आदमी को फाड कर देखने मे वह जिज्ञासा काम कर रही है ? क्या आप कह सकते हैं कि विज्ञान भी बहुत गहरे मे हिंसा है ? चीजो को फाड कर देखने की चेष्टा है, लेकिन स्वीकृत। अगर आप मेढक को मार रहे हैं तो लोग कहेंगे बुरा कर रहे हैं। लेकिन लेबोरेटरीज के टेबुल पर मेढक को काट रहे हैं तो कोई बुरा नही कहेगा।

हम वैज्ञानिक के चित्त को ठीक से समझ पायें, तो पता चलेगा कि उसने अपनी हिंसा की वृत्ति को वैज्ञानिक रूप दे दिया है। हम हिंसा की वृत्ति को बहुत रूप दे सकते है। कभी हमने यज्ञ का रूप दे दिया था। किसी आदमी को किसी जानवर को काटना है, काटने मे बुराई है, पाप है—तो फिर काटने को पुण्य बना लिया जाय। हम यज्ञ मे काटे, देवता की वेदी पर काटे, तो पुण्य हो जायगा। काटने का मजा लेना है लेकिन अब वह पागलपन हो गया। अब हम जानते हैं कि देवता की कोई वेदी नही है। अब हम जानते हैं कि कोई यज्ञ की वेदी नही है, जहाँ काटा जा सके। और अगर काटना है तो ईमानदारी से यह कह कर काटो कि मुझे काटना है। देवता को क्यो फँसाते हो ? इसमें भगवान को क्यो बीच मे लाते हो ?

रामकृष्ण की जिन्दगी मे एक उल्लेखनीय बात है। एक आदमी रामकृष्ण के पास निरतर आता था। हर वर्ष काली के उत्सव पर वह सैकडो बकरे कटवाता था। फिर बकरे कटने बन्द हो गए। फिर उस आदमी ने जलसा मनाना बन्द कर दिया। फिर दो वर्ष बीत गए। रामकृष्ण के पास वह बहुत दिनो तक नहीं आया। अचानक एक दिन आ गया। रामकृष्ण ने कहा, "क्या काली की भक्ति छोड दी ? अब बकरे नही कटवाते ?" उसने कहा—"अब दाँत ही न रहे, अब बकरे कटवाने से क्या फायदा ?" फिर रामकृष्ण ने कहा—

"क्या तुम दाँतों की वजह से बकरे कटवाते थे ?" तो उसने कहा—"जब दाँत गिरे तब मुझे पता चला कि अब मुझे कोई रस न रहा। ऐसे माँस खाने में कठिनाई पड़ती है, काली की आड़ लेकर खाना आसान हो जाता है।"

अब धर्म की पुरानी वेदियाँ गिर गई। अब का धर्म विज्ञान है। इसलिए विज्ञान की वेदी पर अब हिंसा चलती है, बहुत तरह की हिंसा चलती है। विज्ञान हजार तरह के टार्चर के उपाय कर लेता है। इसी तरह हमने धर्म की वेदी पर इन्कार नही किया था, क्योंकि उस समय धर्म की वेदी स्वीकृत थी। अब विज्ञान की वेदी स्वीकृत है।

अगर एक वैज्ञानिक की प्रयोगशाला मे जायें, तो बहुत हैरान हो जायेंगे। कितने चूहे मारे जा रहे हैं, कितने मेढक काटे जा रहे है, कितने जानवर उलटे-सीधे लटकाए गए हैं, कितने जानवर बेहोश कर डाले गए है, कितने जानवरो की चीर-फाड की जा रही हैं। यह सब चल रहा है। लेकिन वैज्ञानिक को बिलकुल पक्का खयाल है कि वह हिंसा नही कर रहा है। उसका खयाल है कि वह आदमी की भलाई के लिए नई खोज कर रहा है। बस हिंसा ने अहिंसा का चेहरा ओढ लिया। जब आप किसी को प्रेम करते हैं तो खयाल करना कि आपके भीतर की हिंसा तो प्रेम की शक्ल नही बन जाती? अगर बन जाती है तो वह खतरनाक से खतरनाक शक्ल है, क्योंकि उसका स्मरण आना बहुत मुश्किल है। हम समझते रहेंगे कि हम प्रेम ही कर रहे हैं। दूसरा, तबतक दूसरा है, जब तक मुझे पता नही है। इसे मैं हिंसा की बुनियाद कहता हूँ।

हिंसा का अर्थ है दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना। स्वय से उत्पन्न हो रही चेतना अहिंसा बन जाती है, दूसरे से उत्पन्न हो रही चेतना हिंसा बन जाती है। लेकिन हमे दूसरे का ही पता है। हम जब भी देखते हैं दूसरे को देखते हैं। और अगर हम कभी अपने सम्बन्ध को भी सोचते हैं, तो हमेशा पायेंगे कि दूसरे हमारी बाबत क्या सोचते हैं? उसी तरह हम भी सोचते हैं। अगर मेरी अपनी भी कोई शक्ल है, तो वह आपके द्वारा दी गई शक्ल है। इसलिए मैं सदा डरा रहूँगा, कही आपके मन मे मेरे प्रति बुरा खयाल न आ जाय, अन्यथा मेरी शक्ल बिगड जायगी। क्योंकि मेरी अपनी तो कोई शक्ल है नहीं। अखबारो की कटिंग फाड कर मैंने अपना चेहरा बनाया है, आपकी बातें सुनकर आपकी राय इकट्ठी करके मैंने अपनी प्रतिमा बनाई है। अगर उसमे से एक पीछे खिसक जाता है, कोई भक्त गाली देने लगता है, कोई अनुयायी दुश्मन हो

जाता है, कोई मित्र साथ नही देता, तो हमारी प्रतिमा गिरने लगती है।

स्वप्न मे भी हम दूसरो को देखते हैं। जागने में भी दूसरो को देखते हैं। ध्यान के लिए बैठे, तो भी दूसरो का ध्यान करते हैं। अगर ध्यान को भी बैठेंगे, तो महावीर का ध्यान करेंगे, बुद्ध का ध्यान करेंगे, कृष्ण का ध्यान करेंगे। जिस ध्यान मे दूसरा मौजूद है, वह हिंसात्मक ध्यान है। जिस ध्यान मे दूसरा सिर्फ आप ही रह गए, वह शायद आपको अहिंसा मे ले जायगा।

महावीर जब चीटी से बच कर चल रहे हैं, तो आप इस भ्रांति मे मत रहें कि आप भी चीटी से बच कर चलते है। आप जब चीटी से बच कर चलते हैं तो चीटी से बच कर चल रहे हैं। महावीर जब चींटी से बच कर चलते है तो अपने पर ही पैर न पड जाय इसलिए बच कर चलते हैं। इन दोनो मे बुनियादी फर्क है। महावीर का बचना अहिंसा है। आपका बचना हिंसा है। चीटी न मर जाय, इसकी चिंता आपको क्यो है ? इसकी चिंता आपको सिर्फ इसलिए है कि कही चीटी के मरने से पाप न लग जाय। कही चीटी के मरने से नरक न जाना पडे, कही चीटी के मरने से पुण्य न छिन जाय, कही चीटी के मरने से स्वर्ग न खो जाय। चीटी से आपका कोई प्रयोजन नही है, प्रयोजन सदा अपने से है। दिमाग चीटी पर केन्द्रित है तो चीटी से बच रहे हैं। आपको ऐसा नही लगता जैसा महावीर को लगता है। महावीर का चीटी से बचना बहुत भिन्न है—वह चीटी से बचना ही नही है। अगर महावीर से हम पूछें कि क्यो बच रहे हैं ? तो वे कहेंगे अपने पर ही पैर कैसे रखा जा सकता है ? नहीं, यह बचना नही है। असल में अपने पर पैर रखना असभव है।

रामकृष्ण एक दिन गगा पार कर रहे हैं। बैठे हैं नाव मे। अचानक चिल्लाने लगे हैं जोर से कि 'मत मारो ! मत मारो ! क्यो मुझे मारते हो ?' आस-पास बैठे लोग उनको नही मार रहे है। सब भक्त है। उनके पैर छूते हैं पैर दबाते हैं, उनको कोई मारता तो नही। सब कहने लगे — आप क्या कह रहे हैं ? कौन आपको मार रहा है ? रामकृष्ण चिल्लाए जा रहे है। उन्होने पीठ उघाड दी। पीठ पर देखा तो कोडे के निशान हैं। खून झलक आया है। सब बहुत घबडा गए। रामकृष्ण से पूछा— यह क्या हो गया ? किसने मारा आपको ? रामकृष्ण ने कहा—वह देखो, वे मुझे मार रहे हैं। उस किनारे पर मल्लाह एक आदमी को मार रहे है कोडो से, और उसकी पीठ पर जो निशान

बने है वह रामकृष्ण की पीठ पर भी बन गए। ठीक वही निशान। और जब तट पर उतरकर भीड लग गई और दोनो के निशान देखे गए, तो तय करना मुश्किल हो गया कि कोडे किसको मारे गए ?

रामकृष्ण को चोट ज्यादा पहुँची है मल्लाह से। निशान वही है। चोट ज्यादा है। क्योकि उस आदमी ने तो विरोध भी किया होगा पर, रामकृष्ण ने तो पूरा स्वीकार ही कर लिया ! चोट ज्यादा गहरी हो गई। लेकिन रामकृष्ण के मुख से जो शब्द निकला 'मुझे मत मारो' इसका मतलब समझते हैं ? एक शब्द है हमारे पास सहानुभूति। यह सहानुभूति नही है। सहानुभूति हिंसक के मन मे होती है। वह कहता है, मत मारो उसे। दूसरो को मत मारो। सहानुभूति का मतलब है कि मुझे दया आती है। लेकिन दया सदा दूसरे पर आती है। यह सहानुभूति नही है, यह समानुभूति है। यहाँ रामकृष्ण यह नही कह रहे है कि उसे मत मारो। रामकृष्ण कह रहे हैं 'मुझे' मत मारो—यहाँ दूसरा गिर गया।

असल मे दूसरे से जो हमारा फासला है वह शरीर का ही फासला है—चेतना का कोई फासला नही। चेतना के तल पर हम दो नही है। दूसरे को बचाएँ तो वह अहिंसा नही हो सकती। हम दूसरे को बचाएँ तो वह भी हिंसा ही है। जिस दिन हम ही रह जाते है और बचने को कोई भी नही रह जाता उस दिन अहिंसा फलित होती है।

महावीर की अहिंसा को नही समझा जा सका, क्योकि हम हिंसको ने महावीर की अहिंसा को हिंसा की शब्दावली दे दी। हमने कहा—दूसरे को दुख मत दो। लेकिन ध्यान रहे, जब तक दूसरा है तब तक दुःख जारी रहेगा। चाहे उसकी छाती मे छुरा भोको, चाहे उसे दूसरे की नजर मे छुरा भोको, उसमे कोई फर्क नही पडता।

क्या आपको खयाल है, आप कमरे मे अकेले बैठे हो और कोई भीतर आ जाय, तो आप वही नही रह जाते जो आप अकेले थे। क्योकि दूसरे ने आकर हिंसा शुरू कर दी। वह आपको मार नही रहा है, आपको चोट नही पहुँचा रहा है, बहुत अच्छी बातें कर रहा है। कह रहा है, आप कुशल से तो हैं। जैसे ही कोई कमरे मे भीतर आया उसने आपको भी दूसरा बना दिया। हिंसा शुरू हो गई। अब उसकी आँख, उसका निरीक्षण, उसका देखना, उसका बैठना, उसका होना, हिंसा है। अब आप डर गए। क्योंकि हम सिर्फ हिंसा से डर

जाते हैं। अब आप भयभीत हो गए, अब आप सँभल कर बैठ गए। आप अपने बाथरूम मे और तरह के आदमी होते हैं, आप अपने बैठकखाने मे और तरह के आदमी हो जाते हैं। क्योंकि बैठकखाने मे हिंसा की सम्भावना है। बैठकखाना वह जगह है जहाँ हम दूसरे की हिंसा को झेलते है, जहाँ हम दूसरो का स्वागत करते हैं, जहाँ हम दूसरो को निमन्त्रित करते है।

अहिंसात्मक ढंग से हमने बैठकखाना सजाया है। इसलिए बैठकखाना हम खूब सजाते हैं कि दूसरे की हिंसा कम से कम हो जाय। वह सजावट दूसरे की हिंसा को कम कर दे। इसलिए बैठकखाने के हमारे चेहरे मुस्कराते होते हैं, क्योंकि मुस्कराहट दूसरे की हिंसा के खिलाफ आरक्षण है। अच्छे शब्द बोलते हैं बैठकखाने मे, शिष्टाचार बरतते हैं, सभ्यता बरतते है—यह सब इन्तजाम है।

महावीर की जिन्दगी मे एक बहुत अद्‌भुत घटना है। महावीर सन्यास लेना चाहते थे, तो उन्होंने अपनी माँ को कहा कि मैं जाऊँ, सन्यास ले लूँ? उनकी माँ ने कहा, मेरे सामने दुबारा यह बात मत करना। जबतक मैं जिन्दा हूँ तब तक सन्यास नही ले सकते। महावीर लौट गए।

अगर महावीर की हिंसक वृत्ति होती तो और जिद पकड जाते। कहते—नही, ले कर ही रहूँगा। ससार तो सब माया-मोह है। कौन अपना? कौन पराया? यह सब तो झूठ है! तुम रोकने वाली कौन हो? अब बधन कैसा? लेकिन नहीं, महावीर चुपचाप लौट गए। माँ मर गई। पिता मर गए। मरघट से लौट रहे है महावीर। अपने बड़े भाई से कहा कि बात हुई थी मात-पिता से तो वे बोले थे जब तक वे है तब तक सन्यास न लूँ, उन्हे दुख होगा। अब सन्यास ले सकता हूँ? भाई ने कहा, तुम पागल हो गए हो? माँ चली गई पिता चले गए, हम अनाथ हो गए। तुम भी छोड कर चले जाओगे? ऐसा दुख मैं न सह सकूँगा। महावीर चुप हो गए। फिर उन्होंने दुबारा बात न उठाई सन्यास की। बड़े अजीब सन्यासी रहे होगे। इतना भी दुख दूसरे को पहुँचे, यह भी अर्थहीन मालूम हुआ होगा और ऐसे मोक्ष को भी लेकर क्या करेंगे जिसमे किसी को दुख देकर जाना पडता हो। वे रुक गए।

लेकिन एक अजीब घटना घटी उस घर मे। ऐसी घटना शायद पृथ्वी पर और कहीं कभी भी नहीं घटी होगी। घर के लोगो को ऐसा लगने लगा कि महावीर हैं या नही, यह सदिग्ध हो गया। वे घर मे उठते थे, बैठते थे, आते थे, जाते थे, खाते थे, पीते थे, सोते थे, मगर घर के लोगो को सदेह पैदा होने

लगा कि वह है या नही है। उनकी उपस्थिति, अनुपस्थिति-जैसी हो गई। उनका होना, न होने–जैसा हो गया।

असल मे दूसरे के प्रति जो दूसरो का बोध है अगर वह खो जाय तो दूसरे आदमी की उपस्थिति का पता लगना मुश्किल होने लगेगा। हमे अपनी उपस्थिति का पता करवाना पड़ता है। हजार ढग से हम करवाते है। अगर घर मे पति आता है तो अपनी चाल मे खबर करवाता है कि आ गया। अपनी आँख से खबर करवाना चाहता है कि मैं हूँ। शिक्षक क्लास मे आता है तो खबर करवा देता है। गुरु शिष्यो के बीच मे आता है तो सब ढग, सारी व्यवस्था खबर करवा देती है कि जानो कि मै हूँ।

महावीर अनुपस्थित–जैसे हो गए। वे न किसी को देखते, न वे किसी को दिखाई पडते, ऐसे हो गए। वे चुपचाप घर मे रहने लगे, चुपचाप गुजरने लगे। न वे किसी को बाधा देते, न किसी की बाधा लेते। वे एक अर्थ मे, जिसको जीवित मृत्यु कहे, उसमे प्रवेश कर गए। घर के लोगो ने एक दिन बैठक की, और सबने कहा अब इन्हें रोकना फिजूल है, क्योकि ये हैं ही नही। रोकते किसको हो ? हवा को मुट्ठी बाँध कर रोका जा सकता है ? हाँ, पत्थर को रोका जा सकता है। पत्थर को मुट्ठी बाँध कर रोका जा सकता है, क्योकि पत्थर पत्थर है, बहुत मजबूती से है। पत्थर कहता है, मै हूँ। लेकिन हवा को मुट्ठी बाँध कर रोको तो जितनी थी वह भी बाहर निकल जाती है। हवा है ही नही। पत्थर के अर्थों मे नही है। इसलिए हवा को फेक कर मारा नही जा सकता किसी को। पत्थर को फेक कर मारा जा सकता है।

हवा का अस्तित्व बहुत अहिंसक है। पत्थर का अस्तित्व बहुत हिंसक है। महावीर हवा की तरह हो गए, तो घर के लोगो ने कहा, अब रोकना बेकार है। अब वे है ही नही। रोकना भी तभी तक उचित है जब तक कोई रुकता हो या न रुकता हो। दो मे से कुछ भी करना हो तो रोकने का अर्थ है। घर के लोगो ने महावीर से कहा कि अब आप जाना चाहे तो जा सकते है। उन्होने कहा, "अब तो बहुत देर हो चुकी। मैं तो जा चुका हूँ। अब मैं यहाँ नही हूँ।"

हिंसा की पहली गहरी चोट इन दो बातो से है। क्या दूसरा है ? जबतक दूसरा है तबतक हिंसा जारी रहेगी और दूसरे के कारण आप एक झूठा 'मैं,' झूठा अहकार पैदा करेंगे जो आप नही है। लेकिन दूसरो से काम चलाने के लिए पैदा करना पडेगा।

अहकार कामचलाऊ अस्तित्व है। हमे अपना कोई पता नही है कि मैं कौन हूँ ? लेकिन हम कहते हैं 'मैं'। जिसे यह भी पता नहीं है कि मैं कौन हूँ वह भी कहे, मै हूँ, यह जरा ज्यादती है। क्योकि होने का दावा तभी किया जा सकता है जब 'कौन होने' का पता हो।

यह मेरा 'मैं' कहाँ से आया ? यह कहाँ से पैदा हुआ ? अगर यह मेरे ज्ञान से पैदा हुआ है तब तो बडे मजे की बात है। क्योकि जिन्होने भी स्वय को जाना, उन्होने मैं कहना बद कर दिया। जिन्होने स्वय को पाया, उन्होने स्वय को खो दिया। जिन्होने स्वय को नही पाया, वे कहते हैं, 'मैं हूँ।' यह 'मै' कहाँ से आया ? यह आपके भीतर से नही आया। यह समाज ने पैदा करवा दिया। वह जो दूसरे हैं उनके साथ व्यवहार करने के लिए आपको एक शब्द खोज लेना पडा है कि मै हूँ, जैसे हमने नाम खोज लिया। बच्चा पैदा होता है बिना नाम के। फिर हम उसको नाम देते है—राम, कृष्ण। कुछ भी नाम दे देते है। वह नाम बच्चे के भीतर से नही आता, समाज उसे दे देना है। फिर वह जिन्दगी भर राम बना रहता है। वह इस एक शब्द के लिए लडेगा, अगर किसी ने गाली दे दी तो लडेगा।

रामतीर्थ अमेरिका मे थे। कुछ लोगो ने गालियाँ दी तो वे हँसते हुए घर लौटे। और जब लोगो को पता चला कि उनको गालियाँ दी गई तो वे बहुत नाराज हुए।

रामतीर्थ को हँसते हुए देखकर उन्होने पूछा कि आप पागल तो नही। आप हँसते क्यो हैं ? गालियाँ दी गई। रामतीर्थ ने कहा, "मुझे कोई गाली देता तो मै कोई जवाब देता। वे लोग राम को गाली दे रहे थे। राम से अपना क्या लेना देना है ? इस नाम के बिना भी मै हो सकता था। दूसरे नाम का भी हो सकता था। तीसरे नाम का भी हो सकता था। जब वे राम को गाली दे रहे थे तब हम भी भीतर बडे खुश हो रहे थे कि देखो राम, कैसी गालियाँ पड रही हैं ! बनोगे राम तो गाली पडेगी। उन्होने नाम दिया, उन्होने गाली दी। हम बाहर हैं। नाम भी उनका, गाली भी उनकी। समाज दोहरी चाल चलता है—नाम भी देता है, गाली भी देता है। प्रशसा भी देता है, निंदा भी देता है। आदर भी देता है, अपमान भी देता है। दोहरी चाल है समाज की और उस दोहरी चाल मे आदमी बुरी तरह फँसता है। वह दूसरा भी झूठा है और यह 'मैं' ? यह मेरा 'मैं' भी झूठा है। यह दो झूठ एक साथ

जिन्दा रहते हैं। जिस दिन दूसरा गिरता है उसी दिन 'मैं' गिर जाता है।

मैं और तू के गिर जाने से जो शेष रह जाता है वह अहिंसा है। तो जब तक हम कह सकते है तू, तब तक हिंसा जारी रहेगी। मैं यह नही कह रहा हूँ कि आप 'मैं' शब्द का उपयोग नही करेंगे। करना ही पडेगा। महावीर भी करते है, लेकिन तब वह शब्द है, भाषा का खेल है। तब वह अस्तित्व नही है। तब 'मैं' सिर्फ एक शब्द है। बहुत-से शब्द उपयोगी है लेकिन अस्तित्व मे नही है, अस्तित्व से उनका कोई सबध नही है।

ध्यान रहे इस 'मैं' और 'तू' के बीच जो उपद्रव पैदा हुआ है वह हिंसा है। दो झूठ खडे है। दो झूठो के बीच जो भी होगा, वह उपद्रव ही होगा। हाँ, यह उपद्रव कभी प्रीतिपूर्ण हो सकता है, कभी अप्रीतिपूर्ण हो सकता है। लेकिन जब तक 'मैं हूँ' और जब तक 'तू है' तब तक हिंसा है। यह हिंसा का पहला सूक्ष्मतम रूप है। फिर हिंसा के बहुत रूप है जो इसमे फैलते चले जाते हैं।

अहिंसा तो एक है, हिंसाएँ अनत है। लेकिन निकलती है एक ही झरने से—वह मैं और तू का झरना, या कहे आत्मअज्ञान का झरना। महावीर को अगर कोई पूछे अहिंसा क्या है ? तो वे कहेगे आत्मज्ञान। हिंसा क्या है ? तो वे कहेगे आत्मअज्ञान।

अपने को ही न जानना हिंसा है। यह बडी अजीब बात है। हम तो समझते है कि दूसरो को दुख देना हिंसा है। हम तो समझते है दूसरो को सुख देना अहिंसा है, लेकिन ध्यान रहे, दूसरे को चाहे सुख दो, चाहे दुख दो हर हालत मे दुख ही पहुँचता है। देने की सब आकाक्षाएँ व्यर्थ हो जाती है, क्योकि दूसरे को सुख दिया नही जा सकता। सुख सिर्फ स्वय को दिया जाता है। जिस दिन आप आप नही रह जाते, दूसरा नही रह जाता, उस दिन ही आपकी तरफ मुझसे सुख बह सकता है। और जब तक आपको सुख देने की कोशिश मे करता हू तब तक दुख ही देता हूँ, लेकिन हमे खयाल मे नही आता।

ध्यान रहे भगवान की मूर्ति पर चढाए गए फूल भी हिंसा हो जाते है, क्योकि हम दूसरे को स्वीकार कर रहे हैं। भक्त वह नही है जिसने भगवान की मूर्ति पर फूल चढाये। भक्त वह है जो खोजने निकला और जिसने भगवान के सिवा कुछ भी नही पाया।

फूल में भी उसको पाया और पत्थर में भी उसको पाया। चढ़ाने वाले मे भी उसे पाया, चढ़ने वाले मे भी उसे पाया और वह पूछने लगा कि किसको चढाऊँ और क्या चढ़ाऊँ ? किसके लिए चढ़ाऊँ और कैसे चढाऊँ ? कौन चढाये ?

जब कोई अहिंसा को उपलब्ध होता है, तो दूसरा मिट जाता है। और दूसरा कब मिटता है ? जब कोई स्वय को जानता है, तब दूसरा मिटता है। उसके पहले नहीं मिटता। फिर हमारी बहुत तरह की हिंसा पैदा होती चली जाती है। हम चलते हैं, तो हिंसा है, हम उठते है, तो हिंसा है। हम बैठते हैं, तो हिंसा है। हम बोलते हैं, तो हिंसा है। हम देखते हैं, तो हिंसा है।

आप अक्सर देखेंगे कि मासाहारी जितना भला आदमी मालूम पडेगा, अमासाहारी उतना भला आदमी नही मालूम पडेगा। यह अजीब सी बात है, बडी दु खद है। साधारणत जो शराब पी लेता है, सिगरेट पी लेता है, होटल मे खाना खा लेता है, वह थोडा-सा विनम्र आदमी मालूम पडेगा। जो सिगरेट नही पीता, मास नही खाता, होटल मे नही खाता, वह अविनम्र और कठोर होता चला जायगा। जो हिंसा उसकी निकलती नही है वह इकट्ठी होकर उसके भीतर सग्रहीत होने लगती है। इसलिए आमतौर से जिनको हम अच्छे आदमी कहते है अच्छे सिद्ध नही होते। दुर्घटना है यह। बुरा आदमी कई बार बहुत अच्छा सिद्ध होता है और अच्छे आदमी अक्सर बुरे सिद्ध होते है। अच्छे आदमी के साथ दोस्ती तो मुश्किल ही है, बुरे आदमी के साथ ही दोस्ती हो सकती है। दोस्ती के लिए भी थोडा सा विनम्र चित्त चाहिए–अच्छे आदमी के पास वह नही रह जाता। इसलिए महात्माओ म दोस्ती बहुत मुश्किल है।

आप महात्मा के अनुयायी हो सकते हैं या दुश्मन हो सकते है, दोस्त नही हो सकते। अच्छे आदमी के पास दोस्ती खो जाती है। अक्सर जो समाज सहज जीते हैं, बुरे और भले का बहुत फर्क नही करते वहाँ बडी मात्रा मे भले आदमी मिल जाते है। जो समाज असहज जीते हैं, बुरे-भले का बहुत फर्क करते हैं, वहाँ अच्छा आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है, क्योकि बुराई बाहर से तो रुक जाती है पर उसके भीतर इकट्ठी होती जाती है। इसलिए अक्सर ऐसा हुआ है कि ऋषि-मुनियो से ज्यादा क्रोधी आदमी खोजना कठिन हो जाता है। दुर्वासा ऋषि-मुनि मे ही पैदा हो सकता है, कही और नही पैदा हो सकता।

इधर मैं निरतर सोचता रहा तो मेरे खयाल मे आया कि अगर हिटलर थोड़ी सिगरेट पीता, थोड़ा मास खा लेता, थोड़ा बेवक्त जग जाता, थोड़ा जाकर नृत्यगृह मे नाच कर लेता, तो शायद दुनिया मे करोड़ों आदमी मरने से बच जाते। लेकिन हिटलर सिगरेट नही पीता, मास नही खाता, चाय नही पीता। पक्का शाकाहारी, प्युरीटन, शुद्धतावादी था। नियम से सोता, नियम से उठता-ब्रह्म मुहूर्त मे। सख्त नीतिवादी आदमी, चारो तरफ से सख्त। सारी शक्ति इकट्ठी हो गई।

हमने देखा महावीर को कि महावीर मास नही खाते, तो हमने सोचा हम भी मॉस नही खायँगे तो महावीर-जैसे अच्छे हो जायँगे। भूल हो गई, तर्क गलत हो गया। कही गणित चूक गया। महावीर कुछ हो गए इसलिए मास खाना असभव है। मास न खाने से कोई महावीर नही हो सकता। और अगर मास न खाने से कोई महावीर हो सके तो महावीर होना दो कौडी का हो गया। जितनी कीमत मास की, उतनी ही कीमत महावीर की हो गई। इतना सस्ता मामला नही है। धर्म इतना सस्ता नही है कि हम यह नही खायँगे तो हम धार्मिक हो जायँगे, हम यह न पीएँगे तो धार्मिक हो जायँगे, हम रात मे पानी न पीएँगे तो धार्मिक हो जायँगे।

ध्यान रहे, मै यह नही कह रहा हूँ कि रात मे पानी पीये। पीने मे भी धार्मिक नही हो जायँगे। नही पीते हैं, भला है, लेकिन इस भूल मे मत पडना कि धार्मिक हो गए, अहिसक हो गए। वह बडा खतरा है! बहुत सस्ता काम किया और बहुत महँगा विश्वास पैदा हो गया। ककड-पत्थर गिने और समझा कि हीरे-जवाहरात हाथ आ गए। यह भूल हो गई अहिसा के साथ। क्योकि अहिसा को हमने पकडा है आचरण से—गहरे से नही, अध्यात्म से नहीं। आचरण से अहिसा पकडी जायगी तो खतरनाक है और जब आचरण से कोई अहिसा को पकडता है तब सूक्ष्म रूप से हिसक होता चला जाता है।

जब हिसा सूक्ष्म बनती है तो पहचान के बाहर हो जाती है। मैं आपको कई तरह से दबा सकता हूँ। एक दबाना हिटलर का भी है, आपकी छाती पर छुरी रख देगा। एक दबाना महात्मा का भी होता है, आपकी छाती पर छुरी नही रखेगा, अपनी छाती पर छुरी रख लेगा।

एक दबाना मेरा यह हो सकता है कि मार डालूँगा अगर मेरी बात न मानी। और एक दबाना यह हो सकता है कि मर जाऊँगा अगर मेरी बात न

मानी। लेकिन दबाना जारी है। अच्छे लोग अच्छे ढंग से दबाते हैं, बुरे लोग बुरे ढग से दबाते हैं। अगर हिंसा सूक्ष्म हो तो दो रूप लेती है—एक तो दूसरे की तरफ अहिंसा का चेहरा बनाती है पर हिंसा का काम करती है और दूसरी तरफ अगर हिंसा और भी सूक्ष्म हो जाय तो अपने को भी सताना शुरू कर देती है। मजा यह है कि अहिंसा दूसरे को भी नहीं सता सकती, हिंसा अतत अपने को भी सता सकती है। हिंसा अत मे सेल्फ टार्चर भी बन जाती है।

कभी-कभी कोई महावीर, कोई कृष्ण, कोई बुद्ध, कोई जीसस होता है। आमतौर से दो तरह के आदमी होते हैं, दूसरों को सताने वाले लोग और अपने को सताने वाले लोग, परपीडक और आत्मपीडक। तो दुनियां मे अपने को कोडे मारने वाले सन्यासी हुए हैं, कांटो पर लेटने वाले सन्यासी हुए हैं, कांटो के जूते पहनने वाले सन्यासी हुए हैं, घाव बनाने वाले सन्यासी हुए हैं। ये किस तरह के लोग हैं? यह सन्यास हुआ? यह धर्म हुआ?

एक आदमी दूसरे को भूखा मारे तो हम कहेंगे अधार्मिक और एक आदमी अपने को भूखा मारे तो हम जुलूस निकालेंगे। बडे अधर्म की बात है! क्या दूसरे को सताना अधार्मिकता और अपने को सताना धार्मिक हो सकता है? सताना अगर अधार्मिक है तो इससे क्या फर्क पडता है कि किसको सताया? हां, दूसरे को सताते तो दूसरा रक्षा भी कर सकता था, अपने को सतायेंगे तो रक्षा का भी उपाय नही। अपने को सताना बहुत आसान है, दूसरे को सताने मे हजार तरह की कठिनाइयां है। समाज है, कानून है, पुलिस है, अदालत है। ध्यान रहे, जो अपने को सताता है, वह सब तरह से दूसरे को सतायगा ही, क्योकि जो अपने को नही छोडता है, वह दूसरे को कैसे छोड सकता है? यह असंभव है, यह बहुत असभव है। अगर मैंने अपने को भूखा रखकर जुलूस निकलवा लिया तो ध्यान रखिए मैं आपको भी भूखा रखवाने के सब उपाय करूंगा और जब तक आपका जुलूस न निकल जाय तब तक चैन न लूंगा। हिंसा और गहरी और सूक्ष्म हो जाती है तो आत्मपीडक बन जाती है।

महावीर की मूर्ति देखी? क्या यह मालूम पडता है कि इसने खुद को सताया होगा? इस आदमी का शरीर देखा? इस आदमी की शान देखी? इस आदमी का सौंदर्य देखा? क्या ऐसा लगता है कि इसने खुद को सताया होगा? कथाएँ झूठी होगी या फिर यह मूर्ति झूठी। इस आदमी ने अपने को सताया नहीं है। महावीर-जैसी सुन्दर प्रतिमा मैं समझता हूँ, किसी की भी नहो है।

मैं तो ऐसा समझता हूँ कि महावीर का नग्न हो जाने मे उनका सौन्दर्य भी कारण है। असल मे कुरूप आदमी नग्न नही हो सकता। कुरूप आदमी वस्त्र को सदा सँभाल कर रखेगा, क्योंकि वस्त्रों मे सौदर्य को कोई नहीं छिपाता, वस्त्रो मे सिर्फ कुरूपता छिपाई जाती है।

महावीर सर्वांग सुन्दर मालूम होते हैं। ऐसी अनुपात वाला शरीर मुश्किल से दिखाई पडता है। इस आदमी की जितनी अपने को सताने की कथाएँ हैं, सभी झूठी है। कथाएँ उन्होने लिखी हैं जो स्वय को सताने के लिए उत्प्रेरित है। वे महावीर के आनन्द को भी दु ख बना रहे है। वे महावीर की मौज को भी त्याग बना रहे है। वे महावीर के भोग को—परम भोग को—त्याग की व्याख्या दे रहे हैं। मेरी दृष्टि मे महावीर महल को छोडते है, क्योकि बडा महल उन्हे दिखाई पड गया। कथाकारो की दृष्टि मे वे सिर्फ महल छोडते हैं, कोई बडा महल दिखाई नही पडता। मैं मानता हूँ कि महावीर सोने को छोडते है, क्योकि वह मिट्टी हो गया और परम सुवर्ण उपलब्ध हो गया।

अगर महावीर किसी दिन खाना नही खाते तो वह अनशन नही है, उपवास है। अनशन का मतलब है भूखे मरना। उपवास का मतलब है इतने आनन्द मे होना कि भूख का पता भी न चले। वह बात ही और है। उपवास का मतलब है भीतर और भीतर, पास और पास होना। उपवास का मतलव है, अपने पास होना। जब कोई आदमी बहुत गहरे मे भीतर अपने पास होता है तो शरीर के पास नही हो पाता, इसलिए शरीर की भूख-प्यास का उसे स्मरण नही होता। शरीर के पास होगे तभी तो खयाल आयगा!

जब ध्यान बहुत भीतर है, तो शरीर से ध्यान चूक जाता है। उपवास का मतलब है, ध्यान की अन्तर्यात्रा। भूखे रहने से आत्मा का मिलने से क्या सबध हो सकता है?

क्या आत्मा भूख को प्रेम करती है? भूखे रहने से आत्मा का मिलने से कोई सबध नही है। हाँ, आत्मा के मिलने का क्षण भूखा रहना हो सकता है। कभी आपने खयाल किया हो, न किया तो अब करना, कि जिस दिन आप आनदित होगे उस दिन भोजन ज्यादा न कर पायँगे।

अगर कोई प्रियजन घर मे आ जाय और आप बहुत आनन्दित हो तो भोजन कम हो जायगा। आनन्द इतना भर देता है कि भीतर कुछ खाली नहीं रह जाता जिसमे भोजन डाला जाय। महावीर ने जिस आनन्द को जाना है

वह तो परम आनन्द है, वह इतना भर देता है कि भीतर जगह खाली नही रह जाती।

दुःखी आदमी ज्यादा खाते है। ध्यान रहे, जिस दिन आप दुःख मे होंगे उस दिन आप ज्यादा खा जायेंगे, क्योकि आप खाली होंगे। जो आदमी जितना दुःखी है, उतना ज्यादा खाने लगेगा।

असल में बचपन मे बच्चे को पहली बार ही यह बोध हो जाता है कि सुख और खाने मे कोई सबध है। माँ जब बच्चे को पूरा प्रेम करती है तो दूध भी देती है और उस प्रेम मे उसे आनन्द भी मिलता है। जिस बच्चे को पक्का आश्वासन है कि जब उसे दूध चाहिए मिल जायगा, वह बच्चा ज्यादा दूध नही पीता। माँ परेशान रहती है कि ज्यादा पिलाये। वह ज्यादा नही पीता, क्योकि वह जानता है जब भी चाहिए, मिल जायगा। अगर माँ दूध पिलाने से दुःखी होती है और बच्चे को जबरदस्ती दूध से अलग करती है तो बच्चा ज्यादा पीने लगेगा, क्योकि भविष्य का भरोसा नही है। जहाँ जितनी ज्यादा चिंता होगी, वहाँ उतना ही भोजन ज्यादा शुरू हो जायगा।

चिंतित लोग खाली हो जाते हैं। चिन्ता भीतर सब खाली कर देती है। आदमी ज्यादा खाने लगता है। ज्यादा खाना सिर्फ इस बात की सूचना है कि आदमी दुखी है और कम खाना इस बात की सूचना है कि आदमी सुखी है।

आनन्द तो और आगे की बात है। जब कोई आनन्द से भर जाता है तो महीनो भी बीत सकते हैं। ध्यान रहे, महावीर के महीनों उपवास मे बीते। महीनो उन्होने भोजन नही किया, ऐसा नही कहूँगा—भोजन नही कर पाए, ऐसा कहूँगा। ऐसे भरे हुए थे। यह बडे मजे की बात है कि शरीर को नुकसान भोजन के न होने से इतना नही पहुँचता जितना नही मिला इससे पहुँचता है। गहरे मे शरीर को जो नुकसान पहुँचते है वह मनोदशाओ से पहुँचते हैं।

बगाल मे प्यारी बाई नाम की एक महिला थी, जिसने तीस साल, पूरे तीस साल, भोजन नही किया और शरीर को कोई नुकसान ही नही पहुँचा। महावीर की बात तो पुरानी हो गई इसलिए इसकी मेडिकल परीक्षा का कोई उपाय नही है। लेकिन प्यारी बाई का सब तरह से मेडिकल परीक्षण हुआ। तीस साल उसने कोई भोजन नही किया। उसके पेट में कुछ दाना नही गया, उसकी सारी अँतडियाँ सिकुडकर सूख गई। लेकिन उसके स्वास्थ्य को कोई

फर्क नही पहुँचा। क्या हुआ? एक चमत्कार हुआ! मेडिकल साइन्स को समझना मुश्किल हो गया कि इसे क्या हुआ।

असल मे वह इतनी आनन्दित थी कि हम सोच भी नहीं सकते कि आनन्द भी भोजन बन सकता है। हम सिर्फ एक ही बात जानते हैं कि भोजन आनन्द बनता है। दूसरा छोर हमे पता नही कि आनन्द भी भोजन बन सकता है। प्यारी बाई तीस साल तक भूखे रहकर बता गई कि भूखे महावीर ने अगर बारह साल मे कुल ३६५ दिन भोजन किया होगा, तो यह अनशन नही था अन्यथा शरीर चला गया होता। आनन्द भोजन बन गया!

अभी यूरोप मे एक महिला थी। उस पर तो और भी प्रयोग हो सके। वह परम स्वस्थ थी, असाधारण रूप से स्वस्थ और वर्षों उसने भोजन नही किया। क्या हुआ? वह क्राइस्ट की दीवानी थी। और प्यारी बाई से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण घटना उसकी जिन्दगी मे थी। क्योकि हर शुक्रवार को (जब क्राइस्ट को सूली लगी) बिना कोई चोट पहुँचाए उसके दोनो हाथो से खून बहने लगता था। इतनी एक हो गई थी एम्पथी मे कि वह ऐसा नहीं बोलती थी कि जीसस ने कहा। वह ऐसा बोलती थी कि मैंने कहा था—"जब मुझे सूली लगी तो मैं ने कहा था इन सबको माफ कर दो क्योकि ये निर्दोष है और नहीं जानते कि क्या कर रहे है।" तो ठीक शुक्रवार के दिन, जिस दिन जीसस को सूली लगी, उसके हाथ फैल जाते, आँखे बन्द हो जाती और उसके हाथ से खून गिरना शुरू हो जाता। शुक्रवार की रात घाव विदा हो जाते। खून बन्द हो जाता। दूसरे दिन हाथ बिलकुल ठीक हो जाते। और सैकडो बार उसके हाथ से खून बहा, और भोजन उसका बन्द। बडी मुश्किल हो गई लेकिन उसका वजन कम न हुआ। तो क्या हुआ?

एक बहुत कीमती बात आपसे कहना चाहता हूँ। वह यह कि कुछ सूत्र है, कुछ राज हैं, जिनके द्वारा आनन्द भी भोजन बन जाता है। लेकिन वह उपवास है—अनशन नही है।

अहिंसा न तो किसी और को सताती है, न स्वय को सताती है। अहिंसा सताती ही नही। हिंसा ही सताती है। हिंसा के गृहस्थ रूप हैं, हिंसा के सन्यस्त रूप है, हिंसा के अच्छे रूप हैं, बुरे रूप है। और अगर हम दोनो से सजग हो जायँ तो शायद अहिंसा की खोज हो सकती है।

ताओ

ताओ का मूल रूप से वही अर्थ होता है जो धर्म का होता है। धर्म का मतलब है स्वभाव—जैसे आग जलाती है, जलाना उसका धर्म होता है। हवा दिखाई नही पडती है, अदृश्य है, यह उसका स्वभाव है, यह उसका धर्म हुआ। मनुष्य को छोडकर सारा जगत धर्म के भीतर है, अपने स्वभाव के बाहर नही जाता। मनुष्य को छोडकर जगत मे सभी कुछ स्वभाव के भीतर गति करता है। स्वभाव के बाहर कुछ भी गति नही करता। अगर हम मनुष्य को हटा दें तो स्वभाव ही शेष रह जाता है। पानी बरसेगा, धूप पडेगी, पानी भाप बनेगा, बादल बनेंगे, ठडक होगी, ओले गिरेंगे, आग जलाती रहेगी, हवाएँ उडती

रहेंगी, बीज टूटेंगे, वृक्ष बनेंगे, पक्षी अंडे देते रहेंगे—सब स्वभाव से होता है। स्वभाव मे कही कोई विपरीतता पैदा न होगी।

मनुष्य के आने के साथ ही एक अद्भुत घटना जीवन मे घटी है। सबसे बड़ी घटना, जो जगत मे घटी, यह है कि मनुष्य के पास शक्ति और क्षमता है कि वह स्वभाव के प्रतिकूल जा सके, स्वभाव से उलटा जा सके। यह मनुष्य की गरिमा भी है और दुर्भाग्य भी। इसीलिए वह श्रेष्ठतम प्राणी भी है। वह चाहे तो स्वभाव मे जिये और चाहे तो स्वभाव के प्रतिकूल चला जाय। साथ ही स्वतत्र प्राणी भी है। स्वतत्र का मतलब यह कि वह वह भी कर सकता है जो प्रकृति मे नही होता। वह आग को ठडा कर सकता है, हवा को दृश्य बना सकता है, पानी को नीचे न बहाकर ऊपर की तरफ बहा सकता है। इसका कारण यह है कि मनुष्य सोच सकता है, क्योंकि उसके पास बुद्धि है। उसकी बुद्धि निर्णायक है कि वह क्या करे, क्या न करे। ऐसा करे या वैसा करे, यह करना ठीक होगा या वह। मनुष्य के भीतर स्वतत्रता का सूत्र है और प्रकृति के ऊपर उठने की सम्भावना भी। लेकिन मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल तो जा सकता है लेकिन स्वभाव के प्रतिकूल जाने से जो दुख होते है वह उसे झेलने ही पड़ेगे। तो उसकी स्वतत्रता, स्वच्छदता नही है। उस पर एक गहरी रुकावट है। वह स्वतत्र है, वह प्रकृति से प्रतिकूल काम करेगा। लेकिन प्रतिकूल काम करने से जो भी परिणाम होंगे, वे दुखद होगे। वह उसे झेलने ही पड़ेगे। अधर्म का मतलब इतना ही है। अधर्म का मतलब यही है कि जो स्वभाव मे नही है वैसा करना। जो नही करना चाहिए था, वैसा करना। जिसे करने से दुख उत्पन्न होता है वैसा करना। जिसे भी करने से दुखद परिणाम आते हैं वह अधर्म है। स्वभाव मे दुख की गुजाइश ही नही है। इसलिए मनुष्य को छोडकर इस जगत मे और कोई दुखी नही है, चिंतित नही है, तनावग्रस्त भी नही है। मनुष्य को छोडकर और कोई प्राणी पागल होने की क्षमता नही रखता, विक्षिप्त नही होता क्योंकि वह अपने स्वभाव मे ही जीता है। स्वभाव मे सुख है, स्वभाव के प्रतिकूल जाने मे दुख है। लेकिन और कोई प्राणी जा ही नही सकता। स्वभाव मे जीना उसका चुनाव नही है, स्वभाव मे जीना उसकी मजबूरी है। इसलिए यह बात गौरवपूर्ण नही है।

मनुष्य स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता है, यह गौरवपूर्ण है। लेकिन यह जरूरी नही है कि इससे सौभाग्य आये। इससे दुर्भाग्य आ सकता है। अगर

वह प्रतिकूल जायगा तो दुख उठायगा। स्वभाव मे रहने की अगर मजबूरी हो तो सुख तो होता है, लेकिन आनन्द कभी नही होता। मनुष्य के जीवन मे एक नया सूत्र खुलता है आनन्द का। आनन्द का मतलब यह है कि स्वभाव के प्रतिकूल जा सकता था और नही गया। जाता तो दुख उठाता। अगर जा ही नही सकता और स्वभाव मे रहता तो सुख पाता। लेकिन जा सकता था, नहीं गया, तब भी सुख उपलब्ध होता है। वही आनन्द है। सुख के साथ स्वतन्त्रता जब जुड जाती है तो आनन्द बन जाता है। ताओ का अर्थ है—जैसा सारा जगत मजबूरी मे जीता है, वैसे हम अपनी स्वतन्त्रता मे जीएं। प्रकृति का पार कर गया पर परमात्मा मे प्रविष्ट नही हुआ बस द्वार पर खडा है परमात्मा के। चाहे तो प्रवेश करे, चाहे तो लौट जाय। इसकी कोई मजबूरी नही है। लौटने से जो दुख होगा वह झेलना पडेगा। प्रवेश से जो आनन्द होगा वह मिलेगा। चुनावपूर्वक, स्वतन्त्रतापूवक जो व्यक्ति स्वभाव मे जीने को राजी हो जाता है वह ताओ को उपलब्ध हो जाता है। स्वभाव मे कुछ अच्छा और बुरा नही होता, जो होता है, होता है। हम यह नही कह सकते कि पानी नीचे को तरफ बहता है तो पाप करता है। हम ऐसा नही कह सकते कि पानी नीचे की तरफ बहता ही क्यो है? यह उसका स्वभाव है। इसमे पाप पुण्य कुछ भी नही, अच्छा-बुरा भी कुछ नही है।

आग जलाती है तो हम यह नही कह सकते कि आग बहुत पाप करती है। जलने से कोई कितना भी दुख पाता हो लेकिन आग की तरफ से कोई पाप नही है, यह उसका स्वभाव है। यह उसकी मजबूरी है। वह आग है इसलिए जलाती है। इसम आग होना और जलाना एक ही चीज को कहने का दो ढग है। इसलिए प्रकृति मे कोई पाप-पुण्य नही है। जैसे हम शेर को पापी समझते है क्योकि वह गाय को खा जाता है। इसलिए पुण्यात्मा लोग ऐसी तस्वीरे बनाते है जिसमे गाय और शेर एक ही साथ पानी पी रहे है। इसमे गाय के साथ तो बहुत भला हो गया लेकिन शेर का क्या होगा? इन पुण्यात्माओ ने कभी गाय को और घास को एक साथ खडा होते नही बताया। नही तो गाय के साथ भी वही हो जायगा जो शेर के साथ हो रहा है। क्योकि घास भी तो मरी जा रही है गाय के साथ। गाय मजे से घास चर रही है और शेर को गाय के बगल मे दिखा दिया गया है। वह गाय को नही खा रहा है। हम अपनी धारणाएँ थोपते हैं। प्रकृति मे न कुछ शुभ है, न अशुभ है।

कोई अच्छे और बुरे की बात प्रकृति मे नही है क्योकि वहाँ विकल्प नही है, वहाँ चुनाव ही नहीं है। शेर जानकर गाय को नही खाता और गाय जानकर घास को नही खाती। किसी का किसी को दुख पहुँचाने का कोई इरादा नहीं है। बस, ऐसा होता है।

आदमी के साथ सवाल उठता है, क्या अच्छा है और क्या बुरा, क्योकि आदमी चुन सकता है। ऐसा कुछ भी नही है आदमी के साथ जो होता ही है। कुछ भी हो सकता है। अनन्त सम्भावनाएँ हैं। आदमी गाय भी खा सकता है, घास भी खा सकता है। घास को भी छोड सकता है, गाय को भी छोड सकता है। बिना खाये मर सकता है। आदमी के साथ अनन्त सम्भावनाएँ खुल जाती हैं। इसलिए सवाल उठता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है?

कहानी है कि कन्फ्यूसस लाओत्से के पास गया और लाओत्से से उसने कहा कि लोगो को बताना पडेगा कि क्या ठीक है, क्या गलत है। लाओत्से ने कहा कि यह तभी बताना पडता है जब ठीक खो जाता है। कन्फ्यूसस ने कहा कि लोगो को धर्म तो समझना ही पडेगा। लाओत्से ने कहा कि तभी समझना पडता है जब धर्म का कुछ पता नही चलता कि क्या धर्म है, जब धर्म खो जाता है। आदमी के साथ खो ही गया है। उसके पास कोई साफ सूत्र जन्म के साथ नही है जिसपर वह चले। उसे अपने चलने के सूत्र भी जीने के साथ ही साथ खोजने पडते है। उसकी स्वतन्त्रता तो बहुत है लेकिन स्वभाव के प्रतिकूल चले जाने की सम्भावना भी उतनी ही है। हम ऐसा भी कर सकते है जो करना हमे दुख मे ले जायगा और ऐसा हम रोज कर रहे है। ताओ का मतलब है फिर उस जगह खडे हो जाना, उस बिन्दु पर, जहाँ से चीजें साफ दिखाई पडनी शुरू हो जाती है। जहाँ हमे तय नही करना पडता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है। बल्कि जहाँ से हमे दिखाई ही पडता है कि यह ठीक है और यह गलत है। जहाँ हमे विचार नही करना पडता है, बल्कि दिखाई पडता है। ताओ की भावना क्या है?

ताओ की साधना एक ऐसे बिन्दु पर खडे हो जाने का उपाय है जहाँ से हमे दिखाई पडे कि क्या ठीक है और क्या गलत है। जहाँ हमे सोचना न पडे कि क्या ठीक है, क्या गलत है। क्योकि सोचेगा कौन? सोचूँगा मै? और अगर मै सोच ही सकता तब तो कहना ही क्या! मुझे पता नहीं है इसलिए तो मैं सोच रहा हूँ। और जो मुझे पता नही है उसे मै सोचकर

पता नहीं लगा सकता। सोच हम उसी को सकते हैं जो हम जानते हैं। अनजान को हम सोच नही सकते। इतना तो साफ है कि क्या ठीक है क्या गलत है, क्या स्वभाव है क्या विभाव है—मुझे कुछ पता नही अब हम कहते हैं, हम सोचेंगे। जहाँ से सोचना शुरू होता है वहाँ से दर्शन शुरू होता है। इसलिए कहूँगा कि ताओ का कोई दर्शन नही है। जहाँ से सोचना शुरू होता है कि क्या ठीक है और क्या गलत है, क्या करें क्या न करें, क्या करना पुण्य है, क्या करना पाप है, क्या करेंगे तो सुख होगा, क्या करेंगे तो दुख होगा? जहाँ यह सोचना है, वहाँ दर्शन है। ताओ येह कह रहा है, कि सोच कर तुम पाओगे कैसे? अगर तुम्हे पता ही होता तो तुम सोचते ही न। और अगर तुम्हे पता नही तो तुम सोचोगे कैसे? सोचने से नया कभी उपलब्ध नही होता, न कभी उपलब्ध हुआ है, न हो सकता है। सोचने से सिर्फ पुराने के नए सयोग बनते है। कभी कोई नया उपलब्ध नही हो सकता। चाहे विज्ञान की कोई नई प्रतीति हो, चाहे धर्म की कोई नई अनुभूति हो। सब सोचने के बाहर घटती हैं। सोचने के भीतर नही घटती हैं। विज्ञान की भी नही घटती। कुछ नया तब आता है जब आप सोचने के बाहर होते हैं। भले यह हो सकता है कि आप सोच सोच कर थक कर बाहर हो जायें। यह हो सकता है कि एक आदमी अपनी प्रयोगशाला मे सोच-सोच कर थक गया है और दिन भर सब तरह के प्रयोग किए है और कोई फल नही पाया। वह रात सो गया है और अचानक उसे सपने मे खयाल आ गया या सुबह उठा और उसे खयाल आया है, तो वह यही कहेगा कि मैने तो जो सोचा था उससे ही यह खयाल आया है। पर यह उससे नही आया। यह तो जब सोचना थक गया था, ठहर गया था, तब वह ताओ मे पहुँच गया। (जब कोई सोचने से छूट जाता है तत्काल स्वभाव मे आ जाता है। क्योंकि और कही जाने का उपाय नही है। विचार एकमात्र व्यवस्था है, जिसमे हम स्वभाव के बाहर चले जाते है।) जैसे मै इस कमरे मे सो जाऊँ और रात सपना देखूं। मैं सपने मे इस कमरे के बाहर जा सकता हूँ। लेकिन सपना टूट जाय तो मैं इसी कमरे मे खड़ा हो जाऊँगा। फिर मैं यह नही पूछूगा कि इस कमरे मे आया कैसे? तब मैं तत्काल जानूगा कि सपने मे बाहर गया था। मै बाहर गया नही था, सिर्फ खयाल था कि मै बाहर गया हूं, पर था मै यही। जब मैं बाहर गया था ऐसा देख रहा था, तब भी मै यही था। तो ताओ यह कहता है कि तुम कितने ही सोच

रहे हो कि यहाँ चले गए, वहाँ चले गए, तुम ताओ से जा नही सकते। रहोगे तो तुम वही, क्योकि स्वभाव के बाहर जाओगे कैसे ? स्वभाव का मतलब है कि जिसके बाहर न जा सकोगे। जो तुम्हारा होना है, उसमे बाहर जाओगे कैसे ? लेकिन सोच सकते हो बाहर जाने के लिए।

इसलिए दूसरी बात खयाल मे ले लेने-जैसी है कि मनुष्य की जो स्वतन्त्रता है वह भी सोचने की स्वतन्त्रता है। सोचने मे वह बाहर चला गया है। विचार मे वह भटक रहा है। अगर सारा विचार ठहर जाय तो वह ताओ पर खडा हो जायगा। जिसको हम ध्यान कहते है, या जिसको जापानी लोग जेन कहते है उसको लाओत्से ताओ कहता है। उस जगह खडे हो जाना है जहाँ कोई विचार नही है। वहाँ से तुम्हें वह दिखाई पडेगा जो है, जैसा होना चाहिए। जैसा होना सुख देगा, आनन्द देगा वह दिखाई पडेगा। और यह अब चुनना नही पडेगा कि इसको मै करूँगा तो यह होना शुरू हो जायगा। ताओ की जो मौलिक प्रक्रिया साधना है, वह तो ध्यान ही है। वहाँ आ जाना है जहाँ कोई सोच-विचार नही है। लाओत्से कहता है—तुमने सोचा, रत्ती भर विचार, और स्वर्ग और नर्क अलग, इतना बडा फासला हो जायगा। लाओत्से के पास कोई आया है और उससे कुछ पूछता है। वह उसे जवाब देता है। और जब वह जबाव देता है तब वह आदमी सोचने लगता है। लाओत्से कहता है कि बस सोचना मत। क्योकि सोचा तो जो मैने कहा उसे तुम कभी न समझ पाओगे। सोचना मत, जो मैने कहा उसे सुनो, सोचो मत। अगर सुन सके तो बात हो जायगी। अगर सोचा, तो गए ! सोचना ही था तो मुझसे पूछा क्यो ? तुम्ही सोच लेते। कौन तुम्हे मना करता ? सोचते ही हम तत्काल स्वभाव के बाहर हो जाते है। इसलिए विचार जो है वह स्वभाव के बाहर छलाग है, लेकिन विचार मे ही ! इसलिए मूलत हम कही नही गए होते, गए हुए मालूम पडते हैं। ताओ की साधना का अर्थ हुआ—सोच-विचार छोडकर खडे हो जाना। जहाँ कोई विचार न हो, सिर्फ चेतना रह जाय, सिर्फ होश रह जाय तो वहाँ से जो ठीक है वह न केवल दिखाई पडेगा बल्कि होना शुरू हो जायगा। इसलिए ताओ को जीनेवाला आदमी न नैतिक होता है न अनैतिक होता है, न पापी होता है न, पुण्यात्मा होता है, क्योकि वह कहता है कि जो हो सकता है वही हो रहा है, मैं कुछ नही करता।

एक ताओ फकीर से जाकर कोई पूछता है कि आपकी साधना क्या है ?

तो वह कहता है कि जब मेरी नींद टूटती है, मैं उठ जाता हूँ। अगर नींद आ जाती है तो मैं सो जाता हूँ। और जब भूख लगती है तो खाना खा लेता हूँ। वह कहता है—यह तो हम सभी करते हैं। फकीर कहता है कि यह तुम सभी नहीं करते। जब नींद आई, तब तुम कब सोए ? तुमने और हजार काम किए। और जब नींद आई थी तब तुमने नींद लाने की कोशिश की थी। और तुम कब उठे ? जब नींद टूटी हो या नींद तोड़कर उठ आए हो। या नींद टूट गई हो और तुम नही उठे हो ! तुमने कब खाना खाया, जब भूख लगी हो ?

साइबेरिया का एक एस्कीमो पहली दफा इंगलैंड आया। वह बहुत हैरान हुआ। सबसे बडी हैरानी उसकी यह हुई कि लोग घडी देखकर कैसे सो जाते हैं और घडी देखकर कैसे खा लेते हैं ! जिस घर मे वह मेहमान था वहाँ यह देखकर वह बहुत परेशान हुआ कि सारे लोग एक साथ खाना कैसे खा लेते हैं ! क्योंकि यह हो नही सकता कि एक साथ सभी को भूख लगती हो। हमारे यहाँ जिसको भूख लगती है, वह खाता है। किसी को कभी लगती है, किसी को कभी लगती है। घर भर के लोग एक साथ टेबुल पर बैठकर खाना खाते हैं। सब लोगो का एक साथ भूख लगना बडी असम्भव घटना है। लोग कहते हैं कि बारह बज गए और सो जाते हैं। यह बिलकुल समझ के बाहर की बात उसे मलूम हुई, क्योंकि साइबेरिया से आनेवाला आदमी अभी भी ताओ के ज्यादा करीब है। अभी भी जब उसे भूख लगती है तब खाता है, नही लगती है तो नही खाता है। जब नींद आती है तो सोता है, जब नीद टूटती है तो उठता है। ब्राह्म मुहूर्त मे उठना चाहिए, ऐसा ताओ नही कहेगा। ताओ कहेगा, जब तुम उठ जाते हो वही ब्राह्म मुहूर्त है। तो वह फकीर ठीक कह रहा है कि जो होता है वह हम होने देते हैं। हम कुछ भी नही करते।

मनुष्य एक बार भी फिर से अगर प्रकृति की तरह जीने लगे तो ताओ को उपलब्ध होता है। जब उसे जो होना है, होने देता है। यह बहुत गहरे तल तक है। यह खाने और पीने की बात ही नही है। अगर उसको क्रोध आता है तो वह क्रोध को भी आने देता है। अगर उसको काम उठता है तो वह काम को भी उठने देता है। क्योंकि वह कहता है कि मैं कौन हूँ ? जब उठना है उठे। असल मे जो होता है, ताओ कहता है, उसे होने देना है। तुम कौन हो जो बीच मे आते हो। अगर कोई व्यक्ति सब होने दे, जो होता है, तो साक्षी ही रह जायगा और तो कुछ बचेगा नही। देखेगा कि क्रोध आया।

देखेगा कि भूख आई, देखेगा कि नीद आई। वह साक्षी हो जायगा। तो ताओ की जो गहरी से गहरी पकड है वह साक्षी मे है। वह देखता रहेगा। एक दिन वह यह भी देखेगा कि मौत आई और देखता रहेगा--क्योंकि जिसने सब देखा हो जीवन मे, वह फिर मौत को भी देख पाता है। हम जीवन को नही देख पाते हैं, हम सदा बीच मे आ जाते है तो मौत के वक्त भी हम बीच मे आ जाते हैं और नही देख पाते है कि क्या हो रहा है। जिसने नीद को आते देखा और जाते देखा वह मौत को भी देखेगा। जिसने बीमारी को आते देखा और जाते देखा, क्रोध को आते देखा और जाते देखा वह एक दिन मौत को भी आते देखेगा। वह जन्म को भी आते देखेगा। वह सबका देखने वाला हो जायगा। जिस दिन हम सबके देखने वाले हो जाते है उसी क्षण हम पर कर्म का कोई बधन नही रह जाता। क्योकि कर्म का सारा बधन हमारे कर्ता होने मे है कि मै कर रहा हूँ। चाहे पूजा कर रहा हूँ, चाहे भोजन कर रहा हूँ, 'मैं' करनेवाला मौजूद है। तो ताओ की जो अतिम घटना है उसमे 'मै' तो खो जायगा, कर्ता खो जायगा, साक्षी रह जायगा। हम इसमे कुछ भी करनेवाले नही है यह अब नही है। ऐसी जो चेतना की अवस्था, है, जहाँ न कोई शुभ है न कोई अशुभ है, न अच्छा है, न बुरा है। (जहाँ सिर्फ स्वभाव है और स्वभाव के साथ पूरे भाव मे रहने का राजीपन है। जहाँ कोई सघर्ष नही, जहाँ कोई झगडा नही, ऐसा हो वैसा हो, ऐसा कोई विकल्प नही। जो होना है उसे होने देने की तैयारी है।) इसलिए ताओ-जैसे छोटे शब्द मे सब आ गया है, जो भी श्रेष्ठतम है साधना मे, और जो भी महानतम है मनुष्य की अध्यात्म की खोज मे। समाधि मे जो भी पाया गया है वह सब इस छोटे-से शब्द मे समाया हुआ है। यह शब्द बहुत कीमती है। इसलिए ताओ का अनुवाद नही हो सकता। धर्म से हो सकता था, लेकिन धर्म विकृत हुआ है। मूल स्वभाव मे जीने की सामर्थ्य सबसे बडी सामर्थ्य है, क्योकि तब न निन्दा का उपाय है, न प्रशसा का उपाय है। तब कोई उपाय ही नही है।

लाओत्से के पास सम्राट् ने किसी को भेजा है कि लाओत्से को बुला लाओ, सुनते है बहुत बुद्धिमान आदमी है, उसे अपना वजीर बना ले। वह आदमी गया है। जहाँ भी उसने लोगो से पूछा, उन्होने कहा कि लाओत्से को खुद ही पता नही होता है कि कहाँ जा रहा है। जहाँ पैर ले जाते है चला जाता है। पहले से वह खुद भी बता नही सकता कि कहाँ जायगा। यह बताना मुश्किल

है। उसे खोजें। कहीं न कहीं होगा। क्योंकि सुबह यहाँ दिखाई पड़ा है। इस गाँव मे था। कोई बहुत दूर नही निकल गया होगा। दूर इसलिए भी नही निकल गया होगा कि तेजी से वह चलता ही नही था। जब कहीं जाना ही नही है, कही पहुँचना ही नही है तो कही दूर नही होगा। वह मिलेगा। आस-पास खोजा, तो एक नदी के किनारे बैठा हुआ पाया। उस आदमी ने जाकर कहा कि हम बडी मुश्किल से तुम्हे खोजते आए है। सम्राट् ने बुलाया है। कहा है कि वजीर का पद लाओत्से सँभाल ले। तो लाओत्से चुपचाप बैठा रहा। फिर उसने कहा, देखते हो उस कछुए को! फिर उसने कहा कि हमने सुना है कि तुम्हारे सम्राट् के घर एक सोने का कछुआ है। उसकी पूजा होती है। कभी कोई कछुआ कई पीढी पहले किसी कारणवश उस परिवार मे पूज्य हो गया था। तो उसको सोने की खोल चढ़ाकर बहुत आदर से रखा गया। क्या यह सच है? तबउस आदमी ने कहा, हाँ सच है। सोने की खोल मे मढा हुआ वह कछुआ परम आदरणीय है। सम्राट् स्वय उसके सामने सिर झुकाता है। लाओत्से ने कहा-बस मै तुमसे यह पूछना हूँ कि अगर तुम इस नदी के कछुए से कहो कि हम तुम्हे सोने से मढ दे, और सुन्दर बहुमूल्य पेटी मे बन्द करके पूजा करेंगे, तो यह कछुआ सोने से मढ जाना पसन्द करेगा कि कीचड़ मे लोटना पसन्द करेगा? तब आदमी ने कहा, कछुआ तो कीचड मे लोटना ही पसन्द करेगा। तो लाओत्से ने कहा, हम भी पसन्द यही करेंगे। नमस्कार! तुम जाओ। जब कछुआ तक इतना बुद्धिमान है तो तुम लाओत्से को ज्यादा बुद्धिहीन समझे हो कछुए से? राजा का वजीर होना हमारे काम का नही। असल मे लाओत्से ने कुछ भी होना बन्द कर दिया है। लाओत्से जो है, वह है।

साधारणत जिसको हम साधक कहते है वह आमतौर मे साधारण आदमी से विपरीत होता है। अगर साधारण आदमी दुकान करता है, तो साधक दुकान नही करता है। अगर साधारण आदमी धन कमाता है, तो साधक धन छोड देता है। अगर साधारण आदमी विवाह करता है, तो साधक विवाह नही करता है। लेकिन साधक के करने का जितना भी नियम है वह साधक के रास्ते से मिलता है। वह सिर्फ इसकी प्रतिक्रिया होता है। लाओत्से कहता है—हम किसी की प्रतिक्रिया नही है। कौन क्या करता है इससे प्रयोजन नही है। न हम किसी के पीछे जाते है कि ऐसा करे, जैसा वह करता है। न हम किसी के प्रतिकूल जाते हैं कि ऐसा करें, जैसा वह नही करता है। हम तो वही होने

देते है जो हमारे भीतर से होता है। स्वभाव को होने देने का मतलब यह है कि हम किसी का अनुकरण न करें। किसी के विरोध मे अपने व्यक्तित्व का आयोजन न करे। जो हो सकता है भीतर से, जो होना चाहता है वह हम होने देंगे, उसपर कही कोई रुकावट न हो। कोई निन्दा न हो, कोई विरोध न हो, कोई संघर्ष न हो, कोई द्वन्द्व न हो। (जो होता है उसे होने दे। तब उसका मतलब यह है कि बुरे-भले का खयाल तत्काल छोड देना पडेगा। क्योंकि बुरा-भला ही हमे निन्दा करवाता है। यह करो और यह मत करो। यह सारे बुरे भले का शुभ-अशुभ का खयाल छोडकर और उस बिन्दु पर हमे खडे होकर देखना पडेगा कि जीवन अब वहाँ जाय, जिस बिन्दु पर कोई विचार नही है) अगर आपके मस्तिष्क से सोचने की सारी शक्ति छीन ली जाय फिर भी आप साँस लेंगे। अभी भी साँस ले रहे हैं। लेकिन साँस तक के लेने मे फर्क पड जायगा। साँस पर हम आमतौर से कोई खयाल नही करते है। लेकिन फिर भी हमारे विचार की प्रक्रिया साँस पर कई तरह की बाधा डालती रहती है। रात मे हम दूसरी तरह की साँस लेते है। अगर कोई बीमार रात मे सोना बंद कर दे तो उसकी बीमारी ठीक होना मुश्किल हो जाती है। क्योंकि जागते मे बीमारी का खयाल बीमारी को बढावा देने लगता है। जरूरी होता है कि कोई बीमार हो तो पहले उसे नींद आए। क्योंकि नींद मे वह बीमारी का खयाल छोड पावे और उसका स्वभाव जो कर सकता है, कर सके। वह स्वयं बाधा न दे। यह बहुत मजे की बात है कि आमतौर से कुरूप बच्चा खोजना बहुत मुश्किल है। सभी बच्चे सुन्दर होते है। असल मे बच्चा कुरूप होता ही नही है। किसी बच्चे को देखकर यह कभी खयाल मे नही आया होगा कि वह कुरूप है। लेकिन ये ही बच्चे बडे होकर कुरूप हो जाते है। सुन्दर आदमी खोजना मुश्किल हो जाता है। बात क्या है ? बच्चे का सौन्दर्य कहाँ से आता है—ताओ से। वह वैसे ही जी रहा है, जैसे है। यानी बडी से बडी जो कुरूपता है, बडी से बडी अग्लीनेस जो है, वह सुन्दर होने की चेष्टा से पैदा होती है। जो दीखना चाहिए उसको हम खोजना शुरू कर देते है। इसलिए स्त्रियाँ मुश्किल से सुन्दर हो पाती है। सुन्दर होने का जो अति विचार है, वह बहुत गहरी और छिपी कुरूपता भीतर भरता है। बहुत कम स्त्रियाँ है जिनमे कोई सौन्दर्य की गहराई होती है। बच्चे सभी सुन्दर मालूम होते है, जो है, जैसे है वैसे हैं। कुरूप है तो कुरूप होने को भी राजी है

उसमें भी कोई बाधा नही है। तब एक और तरह का सौन्दर्य उनमें प्रकट होता है। जिसको ताओ का सौन्दर्य कहते है। इसी तरह जीवन के सारे पहलुओ पर, एक बहुत बुद्धिमान आदमी, जो सब प्रश्नो का उत्तर जानता है, लेकिन जरूर ऐसे प्रश्न होगे जिसका उत्तर उसे पता नही। जब उसके जाने हुए प्रश्न आप पूछते हैं वह उत्तर देता है। यदि आप ऐसा प्रश्न खडा कर देंगे जो उसे पता नहीं, तो वह तत्काल अज्ञानी हो जाता है। क्योकि जो बुद्धिमत्ता थी, वह साधी गई थी। इसलिए बुद्धिमान आदमी नए प्रश्नो को स्वीकार नही करना चाहता। नए सवाल वह उठाना नही चाहता और कहता है कि पुराने सवाल ठीक हैं। वह कहता है पुराने जवाब ठीक है। क्योकि पुराने जवाब तभी तक ठीक हैं जब तक नया सवाल नही उठता है। नया सवाल उठता है तो बुद्धिमान आदमी गया। लेकिन ताओ के पास कोई जवाब नही है। इसलिए ताओ की बुद्धिमत्ता जिसको उपलब्ध हो जाय उसके लिए कोई सवाल न नया है न पुराना है। इधर सवाल खडा होता है उधर वह उस सवाल से जूझ जाता है। उसके पास कुछ तैयार नही है। कन्फ्यूसस जब लाओत्से से मिला तो, उसके मित्रो ने पूछा कि क्या हुआ ? उसने कहा कि आदमी की जगह तुमने मुझे अजगर के पास भेज दिया। वह आदमी ही नही है। वह तो खा जायगा। मेरी सारी बुद्धिमत्ता चकनाचूर हो गई। बल्कि उस आदमी के सामने मुझे पता चला कि मेरी बुद्धिमत्ता कुछ नही है, सिर्फ एक चालाकी है। उस आदमी ने ऐसे सवाल पूछे जिनका जवाब मुझे पता नही था और मुझे यह भी पता नही था कि यह भी सवाल है और तब वह बहुत हँसने लगा। अब उस आदमी के सामने मै दोबारा नही जा सकूँगा। क्योकि उस आदमी के पास मेरी सारी बुद्धिमत्ता चालाकी से ज्यादा साबित नहीं हुई।

ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है, जिस बुद्धिमत्ता मे कुछ तैयार नही है। चीजे आती हैं और स्वीकार कर ली जाती है और जो भी होता है उसे होने दिया जाता है। इसलिए ताओ का व्यवहार तय करना बहुत कठिन है। हो सकता है कि आप किसी ताओ मे स्थिर आदमी से कोई सवाल पूछे और वह जवाब न दे और आपको चाँटा मार दे। क्योकि वह यह कहेगा कि यही हुआ। वह यह भी नही कहता है कि आप न मारें। आप जवाब मे मार सकते हैं। तब जो करना है कर सकते है। लेकिन वह यह कहेगा कि जो हो सकता था, वह हुआ। और अगर उसके चाँटे को समझा जाय तो शायद

आपके लिए वही जवाब था। सभी प्रश्न ऐसे नही कि उनके उत्तर दिए जायें। बहुत प्रश्न ऐसे है जिनका चाँटा ही अच्छा उत्तर होगा। हमारे खयाल मे नहीं आयगा कि चाँटा कैसे अच्छा है!

एक ताओ फकीर के पास एक युवक पूछने गया। उसने उससे पूछा कि ईश्वर क्या है, धर्म क्या है? तो वह फकीर उठा और एक चाँटा लगाकर फिर दरवाजा बन्द करके उसे बाहर कर दिया। युवक बहुत परेशान हो गया। वह बहुत दूर से पहाड चढ कर उसके पास आया था। सामने एक दूसरे फकीर का झोपडा था। वह उसमे जाता है और कहता है, किस तरह का आदमी है यह। तब वह फकीर डडा उठाता है। युवक कहता है कि यह आप क्या कर रहे है? उसने कहा कि तू बहुत दयालु आदमी के पास गया था, अगर हमारे पास तू आता तो हम डडा ही मारते। वह आदमी सदा का दयालु है। तू वापस वही जा। उसकी बडी करुणा है। उसने इतना भी किया जो कुछ कम नही है। वह आदमी वापस लौटता है और कुछ समझ नही पाता है कि क्या मामला है। दरवाजा खटखटाता है। वह फकीर उसे भीतर बुलाकर बडे प्रेम से बिठा लेता है और कहता है, पूछ। तब वह युवक कहता है कि अभी मैं आया था तो आपने मुझे मारा और अब आप इतने प्रेम से बिठा रहे है। तब फकीर कहता है कि जो मार नही सह सकता है, वह प्रेम तो सह ही न सकेगा। क्योकि प्रेम की मार तो बहुत कठिन है। मगर तू लौट आया। तब आगे बात चल सकती है। उसने कहा, मैं तो डर कर भाग भी जा सकता था। यह तो सामने वाले की करुणा है क्योकि उसने कहा कि आप बडे कृपालु है।

अब यह जो बात सारे जगत मे पहुँची तो समझना बहुत मुश्किल हो गया कि सारा मामला क्या है। लेकिन चीजो के अपने आन्तरिक नियम हैं। चीजो का आन्तरिक ताओ है। अब यह जरूरी नही कि आप जब मुझसे प्रश्न पूछने आवे तो सचमुच प्रश्न ही पूछने आवे। और यह जरूरी नही है कि आपको उत्तर की ही जरूरत है। और यह भी जरूरी नही है कि जो आपने पूछा है वही आप पूछने आए थे। और यह भी जरूरी नही है कि जो आपने पूछा है वह आप पूछना ही चाहते है। क्योकि आपके पास भी बहुत चेहरे है। आप कुछ पूछना तय करके चलते है। कुछ रास्ते मे हो जाता है। कुछ आप आकर पूछते है। अब मेरे पास कई लोग आते हैं। अगर मै उनका दो मिनट

प्रश्न छोड़ जाऊँ और दूसरी बात करूँ, फिर दोबारा वे घटे भर बैठे रहेंगे और वे कभी नहीं पूछेंगे। फिर जो आदमी एक प्रश्न पूछने आया था मैंने उससे पूछा—कैसे हो, ठीक हो ! बस उसका प्रश्न गया। तो उसका यह प्रश्न कितना गहरा हो सकता है ! इसके कितने रूट्स हो सकते हैं। इस आदमी के व्यक्तित्व को कितनी इसकी जरूरत हो सकती है ! लेकिन वह ऐसे ही था जैसे बहुत जरूरी था उसका पूछना। जैसे इसके बिना पूछे वह जी न सकेगा। तो ताओ की अपनी एक बुद्धिमत्ता है, जो सीधा, डाइरेक्ट ऐक्शन मे है। और कुछ कहा नही जा सकता है कि ताओ मे फिर आदमी क्या करेगा। हो सकता है चुप रह जाय।

लाओत्से घूमने जाता है। एक मित्र साथ हैं। वे दो घटे घूमते हैं पहाड़ो पर, फिर लौट आते हैं। फिर एक मेहमान आया हुआ है। वह मित्र उसको लाता है और कहता है कि यह हमारा मेहमान है। आज ये भी चलेंगे। वे दोनो चुप खड़े है। लाओत्से चुप है। साथी चुप है। वह मेहमान भी चुप है। रास्ते मे सूरज उगा तब इतना ही मेहमान कहता है कि कितनी अच्छी सुबह है। तब लाओत्से बहुत गुस्से से उस अपने मित्र की तरफ देखता है जो इस मेहमान को ले आया था। वह मित्र घबड़ा जाता है और मेहमान तो और भी घबड़ा जाता है कि ऐसी तो मैंने कोई बुरी बात ही नही कही है और घंटा भर हो गया चुप रहते। मैंने कहा कि कितनी अच्छी सुबह है। फिर वे लौट आते है। घटा और बीत जाता है। दरवाजे पर लाओत्से उस मित्र से कहता है कि इस आदमी को दोबारा मत लाना। यह बहुत बकवासी मालूम होता है। मेहमान कहता है कि मैंने तो कोई बकवास नही की। सिर्फ इतना ही कहा कि कितनी अच्छी सुबह है। लाओत्से कहता है, सुबह हमको भी दिखाई पड़ रही है। यह निपट बकवास है। जो बात सबको दिखाई पड़ रही हो उसको कहने की क्या जरूरत है ? और जो बात नही कहनी तुम वह कह सकते हो। तुम ठीक आदमी नहीं हो। कल से मत आना।

अब यह बात जरा सोचने-जैसी है। असल मे जब आप सुबह देखकर कहते हैं कितनी अच्छी सुबह है तब सच मे आपको सुबह से कोई मतलब नही होता है। आप सिर्फ एक चर्चा शुरू करना चाहते हैं। सुबह तो हम सबको दिखाई पड़ रही है। सुबह सुन्दर है, तो चुप रहिए। आदमी सिर्फ खूँटी खोजता है। तो लाओत्से पूरी तरह पकड़ लेता है। वह कहता है यह आदमी

बकवासी है। इसने शुरुआत की। हम जरा ठीक आदमी नही थे नही तो शुरू हो गया होता। इसने ट्रेन तो चला दी। यह तो दो आदमियों ने सहयोग नही दिया इसलिए यह बेचारा चुप हो गया। इसने खूँटी गाड दी थी। यह और सामान भी टाँगता खूँटी के साथ। अब यह इतनी सी बात कि सुबह सुन्दर है, एक बकवासी के चित्त का सबूत हो सकता है। इससे ज्यादा उसने कुछ कहा ही नही है। हमें लगता है कि लाओत्से ज्यादती कर रहा है। लेकिन मुझे नही लगता। वह ठीक ही कहता है। क्योंकि ताओ जो है उसकी अपनी बुद्धिमत्ता है। वह दर्पण की तरह है। उसे चीजें जैसी हैं, वैसी दिख जाती हैं। तो उसने पकडा इस आदमी को कि यह घटे भर से बेचैन था। इसने कई तरकीबे लगाई, लेकिन दो आदमी बिलकुल चुप थे। लाओत्से ने कहा, यह आदमी बिलकुल बकवासी है। इसने बीज तो बो दिया था। फसल तो हमने बचाई थी।

तो ताओ का एक अपना दर्पण है जिसमे चीजे कैसी दिखाई पडेगी, यह सीधी चीजो को देखकर हम नही जानते। और चूँकि उसके पास अपना कोई बँधा हुआ उत्तर नही है इसलिए बडी मुक्ति है। चूँकि कोई रेडिमेड बात नही है, इसलिए चीजे सरल और सीधी है। और जाल कुछ भी नही है, लेकिन यह स्थिति पर खडे होने की सारी बात है। जिसे मैं ध्यान कह रहा हूँ उसको ताओ कहे तो कोई फर्क नही पडता। मै किसी भी व्यक्ति के निकट अपने को मालूम करता हूँ तो वह लाओत्से के। वह शुद्धतम है। उसने कभी जिन्दगी मे किताब नही लिखी। कितने लोगो ने कहा कि लिखो, लिखो। फिर आखरी वक्त मे वह देश छोडकर जा रहा था। तब उसे चौकी पर राजा ने पकडवा लिया और उसको कहा कि कर्ज चुका जाओ। ऐसे नही जाना है। उसने कहा, चुगी भरने के लिए तो मेरे पास कुछ है ही नही। टैक्स मैं किस बात का दूं ? तो जो टैक्स कलेक्टर है उसने कहा, तुम्हारे सिर मे जो है वह लिख जाओ, ऐसे हम तुम्हे जाने नही देगे। तुम्हारे पास बहुत सम्पदा है और तुम भागे जा रहे हो। तब उसने एक छोटी-सी किताब लिखी—एताओ तेइग। यह अद्भुत किताब है। क्योंकि कम ही ऐसे लोग हैं जो लिखते वक्त यह कहे कि जो मैं कहने जा रहा हूँ वह कहा नही जा सकेगा और जो मैं कहूँगा वह सत्य हो ही नही सकता। जो मैं कहूँगा असत्य हो जायगा, क्योंकि कहते ही चीजे असत्य हो जाती हैं।

जेन की जो पैदाइश है वह ताओ और बुद्ध, लाओत्से और बुद्ध दोनो की क्रॉस ब्रीड है। इसलिए जेन का कोई मुकाबला नही है। जेन अकेला बुद्धिज्म नही है। हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षु ध्यान की प्रक्रिया को लेकर गए। लेकिन हिन्दुस्तान के पास ताओ की पूरी दृष्टि न थी, पूरा फैलाव न था। ध्यान की प्रक्रिया थी जो स्वभाव मे थिर कर देती थी। लेकिन स्वभाव मे थिर होने की पूरी की पूरी व्यापक कल्पना हिन्दुस्तान के पास न थी। वह लाओत्से के पास थी। जब हिन्दुस्तान से बौद्ध भिक्षु ध्यान को लेकर चीन गए और वहाँ जाकर ताओ की पूरी फिलासफी, पूरी दृष्टि उनके खयाल मे आई तो जेन और ताओ दोनो एक हो गए। ध्यान और ताओ एक हो गए। इनसे जो पैदाइश हुई वह जेन है। इसलिए जेन न तो बुद्ध है, न लाओत्से है। जेन बहुत ही अलग बात है। इसलिए आज जेन की जगत मे जो खूबी है वह किसी और बात की नही है। उसका कारण है कि दुनिया की दो अद्भुत कीमती बातें बुद्ध और लाओत्से दोनो से पैदा हुई बातें है। इतनी बडी दो हस्तियो के मिलन से कोई भी दूसरी बात पैदा नही हुई। उसमे ताओ का पूरा फैलाव है और ध्यान की पूरी गहराई है। कठिन तो है, और सरल भी है। कठिन इसलिए है कि हमारे सोचने के जो ढाँचे हैं उनसे बिलकुल प्रतिकूल है और सरल इसलिए है कि स्वभाव सरल ही हो सकता है। इसमे कुछ कठिन होने की बात ही नही है।

सत्य, शिवं, सुन्दरम्

मनुष्य के जीवन मे या जगत के अस्तित्व मे एक बहुत रहस्यपूर्ण बात है। जीवन को अगर हम खोजेगे तो पायेंगे कि जीवन तीन इकाइयो पर खडित हो जाता है। अस्तित्व को खोजने जायेंगे तो अस्तित्व भी तीन इकाइयो पर खडित हो जाता है। तीन की सख्या बहुत रहस्यपूर्ण है। जबतक धार्मिक लोग तीन की सख्या की बात करते थे तबतक तो हँसा जा सकता था, लेकिन अब वैज्ञानिक भी तीन के रहस्य को स्वीकार करते है। पदार्थ को तोडने के बाद अणु के विस्फोट पर एटामिक एनालिसिस से एक बहुत अद्भुत बात पता लगी है, और वह यह है कि अस्तित्व जिस ऊर्जा से निर्मित है उस ऊर्जा के तीन

भाग हैं—न्यूट्रान, प्रोट्रान, इलेक्ट्रान। एक ही विद्युत् तीन रूपों में विभाजित होकर सारे जगत का निर्माण करती है। मैं एक शिव के मंदिर में कुछ दिन पहले गया था और उस मंदिर के पुजारी से मैंने पूछा कि यह शिव के पास जो त्रिशूल रखा है, इसका क्या प्रयोजन है। उस पुजारी ने कहा, 'शिव के पास त्रिशूल होता ही नहीं प्रयोजन की कोई बात नहीं है।' लेकिन वह त्रिशूल बहुत पहले कुछ मनुष्यों की सूझ का परिणाम है। वह तीन का सूचक है। हजारों मंदिर इस जगत मे हैं और हजारों तरह से उस तीन के आँकड़े को पकड़ने की कोशिश की गई है। ईसाई अस्तित्व को तीन हिस्से में तोड़ देते हैं, आत्मा, परमात्मा और ध्वनिगोष्ठ, और हमने त्रिमूर्तियाँ देखी हैं—ब्रह्मा, विष्णु, महेश। यह बड़े मजे की बात है कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश ये तीनों वही काम करते हैं जो न्यूट्रान, प्रोट्रान और इलेक्ट्रान करते हैं। ब्रह्म सृजनात्मक शक्ति हैं, विष्णु संरक्षण-शक्ति हैं और शंकर विध्वंस-शक्ति हैं। ये तीनों के आँकड़े मनुष्य के जीवन में बहुत द्वारों से पहचाने गए हैं। परमात्मा और परम अनुभूति को जिन्होंने जाना है, वह सत्, चित्, आनंद है। जिन्होंने मनुष्य-जीवन की गहराइयाँ खोजी हैं वे सत्य, शिव, सुन्दरम्—इन तीन टुकड़ों में मनुष्य के व्यक्तित्व को बाँटते है।

मनुष्य का पूरा गणित तीन का विस्तार है। शायद ही आपने कभी सोचा हो कि मनुष्य ने नौ की संख्या तक ही सारी संख्याओं को क्यों सीमित किया। हमारी सारी संख्या नौ का ही विस्तार है और नौ, तीन और तीन के गुणनफल से उपलब्ध होता है। बड़े आश्चर्य की बात है कि हम नौ के टुकड़े को गुणनफल करते जायें तो जो भी आँकड़े होंगे, उनका जोड़ सदा नौ होगा। अगर हम नौ का दुगुना करें अठारह तो आठ और एक नौ हो जायगा। अगर तीन गुना करें २७, तो सात और दो ९ हो जायगा। हम अरबों खरबों का भी जोड़ करे तो भी जो आँकड़े होंगे उनका जोड़ सदा ९ होगा। शून्य अस्तित्व है जो पकड़ के बाहर है और जब अस्तित्व तीन में टूटता है तो पहली बार पकड़ के भीतर आता है। जब अस्तित्व तीन से तिगुना हो जाता है तो पहली दफा आँखों के लिए सत्य होता है। और जब तीन के आँकड़े बढ़ते चले जाते हैं तो अनन्त विस्तार होना दिखाई पड़ने लगता है। मनुष्य के व्यक्तित्व पर भी ये तीन की परिधियाँ खयाल करने-जैसी हैं। सत्य मनुष्य की अन्तरतम, आन्तरिक, इनर-मोस्ट केन्द्र है। सत्य का अर्थ है, मनुष्य, जैसा है अपने मे, जान ले। सत्य

मनुष्य के स्वय से सम्बन्धित होने की घटना है। सुन्दरम् सत्यं के बाद की परिधि है। मनुष्य प्रकृति से सम्बन्धित हो जायगा, अपने से नहीं। मनुष्य प्रकृति से सम्बन्ध जोड ले तो सुन्दरम् की घटना घटती है। शिवं मनुष्य की सबसे बाहर की परिधि है। शिव का मतलब है दूसरे मनुष्यों से सम्बन्ध। शिव है समाज से सम्बन्ध, सुन्दरम् है प्रकृति से सम्बन्ध, सत्य है स्वय से सम्बन्ध। हमारे बाहर प्रकृति का एक जगत है। हमारे बाहर मनुष्यो का एक जगत है और हम हैं। तो मनुष्य के बिन्दु पर अगर हम तीन वर्तुल बनावें, तो पहला निकटतम जो सर्किल है वह सत्य का है, दूसरा जो सर्किल है वह सुन्दरम् का है, प्रकृति मे सम्बन्धित होने का, और तीसरा जो सर्किल है वह शिव का है। वह मनुष्य का मनुष्य से सम्बन्धित होने का वर्तुल है। शिव सबसे ऊपरी व्यवस्था है इसलिए समाज की दृष्टि मे शिव सबसे महत्त्वपूर्ण है। समाज नीति से ज्यादा धर्म के सम्बन्ध मे विचार नही करता। समाज के लिए बात समाप्त हो जाती है। अगर आप दूसरे के लिए अच्छे हैं तो समाज की बात समाप्त हो जाती है। समाज इससे ज्यादा आपसे माँग नही करता। समाज कहता है, दूसरे के साथ व्यवहार अच्छा है तो हमारा काम पूरा हो गया। इसलिए समाज सिर्फ नीति से चल सकता है। समाज को धर्म और दर्शन की कोई आवश्यकता नही है। समाज का काम नीति पर पूरा हो जाता है। समाज को इसकी चिन्ता नही है कि व्यक्ति प्रकृति के साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी भी चिन्ता नही है कि व्यक्ति अपने साथ भी अच्छा हो। समाज को इसकी भी चिन्ता नही है कि व्यक्ति अपने भीतर सत्य को उपलब्ध हो। इसकी भी चिन्ता नही है कि चाँद-तारो से उसके सौन्दर्य के सम्बन्ध बनें। उसकी सिर्फ एक चिन्ता है कि मनुष्यो के साथ उसके सम्बन्ध शुभ हो। इसलिए समाज शिव पर सारा जोर डालता है और जो लोग अपने जीवन मे शिव को पूरा कर लेते हैं, समाज उनको महात्मा तथा साधु का आदर देता है। लेकिन अस्तित्व की गहराइयो मे शिव सबसे कम गहरी चीज है, सबसे उथली चीज है। इसलिए साधु अक्सर गहरे व्यक्ति नही होते। साधुओं से कही ज्यादा गहरे कवि और चित्रकार ही होते हैं। साधुओ से तो वह भी ज्यादा गहरा होता है जिसने चाँद-तारो मे अपना कोई सम्बन्ध जोड लिया है। असल मे जो चाँद-तारो से अपना सम्बन्ध जोड पाता है वह मनुष्य से तो जोड़ ही लेता है, इसमे कोई कठिनाई नही है। लेकिन जो मनुष्य से सम्बन्ध जोड़ता

है, जरूरी नहीं है कि वह चाँद-तारों से भी जोड़ पाये।

जिसकी सुन्दरम् की प्रतीति गहरी है वह शिवं को तो उपलब्ध हो जाता है। जिसने ब्यूटीफुल को खोज लिया है वह गुडनेस को तो उपलब्ध हो जाता है। क्योंकि गुडनेस अपने आप में बडी से बडी सौन्दर्य की अनुभूति है। जिसने सुन्दरम् को खोज लिया वह इतनी कुरूपता भी बर्दाश्त नही कर सकता कि बुरा हो सके। बुरा होना एक कुरूपता है, एक अग्लीनेस है। लेकिन जिसने शिव को साधा है, असुन्दर हो सकता है और उसे सौन्दर्य मे भी चुनाव करना पडता है। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने एक सुझाव रखा था कि खजुराहो, कोणार्क और पुरी के मन्दिरो को मिट्टी मे दबा दिए जाने चाहिए, क्योंकि उन मन्दिरो पर जो मूर्तियाँ हैं वे शुभ नही है, शिव नही हैं, केवल सुन्दरम् है। लेकिन गुडनेस मे उनका सम्बन्ध नही मालूम पडता है। खजुराहो की दीवालो पर जो चित्र है, जो नग्न सुन्दर स्त्रियो की प्रतिमाएँ है, पुरुषोत्तमदास टण्डन का खयाल था, उन्हे मिट्टी मे दबा देना चाहिए और गाँधी जी भी उनके इस विचार से सहमत हो गए थे। अगर रवीन्द्रनाथ ने बाधा न डाली होती तो हिन्दुस्तान की सबसे कीमती सम्पत्ति मिट्टी मे दबा दी जा सकती थी। रवीन्द्रनाथ तो हैरान हो गए थे यह सुनकर कि कोई ऐसा सुझाव देगा। लेकिन टडन शिव के आदमी थे। ऐसा सौन्दर्य उनके बर्दाश्त के बाहर था जिससे किसी के मन मे अशुभ पैदा हो सके। वे ऐसी कुरूपता को भी पसन्द कर लेंगे जो शुभ की दिशा मे ले जाती हो। इसलिए जिन देशो मे साधुओ का बहुत प्रभाव है उन देशो मे सौन्दर्य की प्रतिष्ठा कम हो जाती है। हमारा ही एक ऐसा अभागा मुल्क है। इस मुल्क मे सौन्दर्य की कोई प्रतिष्ठा नही है। सौन्दर्य अपमानित है, निन्दित है। काउन्ट कैसरलेन हिन्दुस्तान से जर्मनी वापस लौटा तो उसने वहाँ जाकर लिखा कि मैं हिन्दुस्तान से यह समझ कर आया हूँ कि कुरूप होना भी एक आध्यात्मिक योग्यता है और बीमार होना भी आध्यात्मिक गुण है, और गन्दा होना भी साधना की अनिवार्य शर्त है। जैन साधु स्नान नहीं करेंगे। पसीने की जितनी दुगन्ध आवे, उतनी गहरी साधना का सबूत मिलता है। दातुन नही करेंगे। मुँह पास ले आयें और आपको घबडाहट मालूम हो तो समझना चाहिए कि दूसरी तरफ जो आदमी है वह साधु है।

हिन्दुस्तान ने शिव की बहुत प्रतिष्ठा की और इस प्रतिष्ठा ने सौन्दर्य को घातक नुकसान पहुँचाया। मेरी दृष्टि मे गाँधी शिव के अन्यतम प्रतीक है,

लेकिन शिव मनुष्य की पहली परिधि है। बहुत गहरी नहीं है, पहली सीढी है। जब हम इस विराट जीवन को मनुष्य के ही समाज में केन्द्रित कर देते है तो जगत और जीवन बहुत सकीर्ण हो जाता है। स्वभावत जो सिर्फ शिव की ही साधना करेगा, उसके पाखडी हो जाने का खतरा है। जरूरी नही है कि वह पाखडी हो जाय, लेकिन उसका खतरा है क्योकि वह बहुत ऊपर से जीवन को पकडने की कोशिश मे लगा है। उसने जिन्दगी को जडो से नहीं पकडा है, उसने जिन्दगी को फूलो से पकडने की कोशिश की है। उसने जिन्दगी की बाहरी परिधि को लीपने-पोतने की कोशिश की है। वह चरित्र को ठीक करेगा, वह पानी छान कर पीएगा, वह यह करना ठीक है या नही है, ऐसा होना ठीक है या नही ठीक है, यह सब सोचेगा, लेकिन इस सारे सोच मे वह जीएगा परिधि पर, गहराई मे नही जी सकेगा। गाँधी मेरे लिए शुभ के श्रेष्ठतम प्रतीक हैं। अगर कोई विकृत हो जाय तो हिटलर–जैसा आदमी पैदा होगा और अगर कोई स्वीकृत हो जाय तो गाँधी–जैसा आदमी पैदा होगा। यह एक ही परिधि पर खडे लोग हैं। आपको यह जानकर हैरानी होगी कि हिटलर सिगरेट नही पीता था, मास नही खाता था, नियम से सोता था और ब्रह्म मुहूर्त मे उठता था। वह अविवाहित था। उसके जीवन मे समझा जाय तो साधु के सब लक्षण पूरे थे, लेकिन उससे ज्यादा असाधु आदमी इस पृथ्वी पर दूसरा पैदा नही हुआ। अगर हिटलर थोडी सिगरेट पी लेता और थोडी शराब पी लेता और थोडा मास खा लेता तो मैं समझता हूँ दुनियाँ का उतना नुकसान न होता, जितना हुआ है। अगर वह किसी एकाध स्त्री से प्रेम कर लेता या पडोस की औरतो से लुक-छिपकर थोडी बात कर लेना तो भी दुनिया का इतना बडा नुकसान न होता जितना हुआ है। वह आदमी सब तरफ से बद हो गया था। सब तरफ से जो जबरदस्ती शुभ होने की कोशिश करेगा उसका अशुभ किसी और मार्ग से प्रकट होना शुरू हो जायगा और बहुत बडे पैमाने पर प्रकट होगा। इसलिए अक्सर ऐसा होता है कि जो लोग ऊपर से अहिंसा साध लेते हैं, उनकी आँखे, उनकी नाकें, सबसे अहिंसा की जगह हिंसा झरने लगती है। जो लोग ब्रह्मचर्य साध लेते हैं उन्हें चौबीस घटे सेक्स पीछा करने लगता है। आपको पता होगा कि उपवास करने पर दिन भर भोजन के अतिरिक्त और कोई खयाल नही आता और रात सिवा भोजन के कोई सपना नही आता।

शुभ को अगर कोई आग्रहपूर्वक जबरदस्ती थोप लेगा, तो शुभ तो नही

जाएगा, सिर्फ पाखंड होगा और विकृतियाँ पैदा होंगी। लेकिन अगर कोई शुभ को पूरे मानपूर्वक साध ले तो पाखंड तो पैदा नहीं होता, चरित्र पैदा हो जाता है। शुभ चरित्र पैदा हो जाता है, लेकिन होता है परिधि पर, बहुत गहरे नहीं होता।

दूसरी परिधि सौन्दर्य की है। आचरण शिव की परिधि है और सौन्दर्य की हमारी जो अनुभूति है, हमारे भीतर, सुन्दर की जो भावदशा है, सुन्दर को ग्रहण करने की जो ग्राहकता है, वह दूसरी परिधि है। गांधी को मैं पहली परिधि का प्रतीक मानता हूँ, सफल प्रतीक पुरुष। हिटलर को मैं पहली परिधि का असफल प्रतीक पुरुष मानता हूँ। रवीन्द्रनाथ को मैं दूसरी परिधि का सफल प्रतीक पुरुष मानता हूँ। उनके जीवन मे सौन्दर्य सब कुछ है। मैंने एक घटना सुनी है। गांधी रवीन्द्रनाथ के घर मे मेहमान हैं। साँझ घूमने निकल रहे थे तो उन्होने पूछा– क्या आप भी चलेंगे ? रवीन्द्रनाथ ने कहा, रुकिए, मैं थोडा बाल सँवार लूं। गांधी की समझ के बाहर हो गया। स्वाभाविक है। इस बुढ़ापे मे बाल सँवारने की बात बेहूदी मालूम पड सकती है, किसी भी साधु को पडेगी। लेकिन कोई और होता तो गाँधी ने तत्काल उससे कुछ कहा होता। रवीन्द्रनाथ से कुछ कहना भी कठिन था। चुपचाप खडे रह गए। उनके कहने मे भी विरोध था और उनके चुप रहने मे भी विरोध था। रवीन्द्रनाथ भीतर गए और पाँच मिनट बीत गए, दस मिनट बीत गए, नही लौटे। तो गाँधी के बर्दाश्त के बाहर हो गया। उन्होने भीतर झाँककर देखा, आदम कद आइने के सामने रवीन्द्रनाथ खडे थे। इस बुढापे मे सब सफेद हो गए बालो को सँवारते थे और मन्त्रमुग्ध ऐसे थे जैसे भूल गए थे। गाँधी ने कहा, क्या कर रहे है आप ? इस उम्र मे बालों को सँवारने की इतनी फिक्र ? रवीन्द्रनाथ मुडे। उनका चेहरा जैसे समाधिस्थ था। उन्होने कहा, जब जवान था, बिना सँवारे चल जाता था। जबसे बूढ़ा हो गया हूँ तबसे बहुत सँवारना पडता है। रात्रि मे बात हुई तो रवीन्द्रनाथ ने कहा कि मैं अक्सर सोचता हूँ कि किसी को अगर मैं कुरूप दिखाई पडूँ तो मैं उसको दुख दे रहा हूँ, और दुख देना हिंसा है। किसी को मैं सुन्दर दिखाई पडूँ तो उसे मैं सुख दे रहा हूँ, सुख देना अहिंसा है। शायद ही किसी ने सोचा हो कि सौन्दर्य में अहिंसा हो सकती है। रवीन्द्रनाथ कह रहे हैं कि मेरी नैतिकता मुझसे कहती है कि मैं सुन्दर दिखाई पडता रहूँ। अंतिम क्षण तक प्रभु से एक ही प्रार्थना है कि मैं कुरूप न हो जाऊँ। और यह

हैरानी की बात है कि रवीन्द्रनाथ, जैसे-जैसे बूढ़े होते गए वैसे-वैसे सुन्दर होते गए। मरते वक्त बहुत कम लोग इतने सुन्दर होते हैं जितने रवीन्द्रनाथ थे और रवीन्द्रनाथ को मरते वक्त देखकर कोई कह सकता था कि जैसे हिमालय के शिखर पर बर्फ आ जाय ऐसे उनके चेहरे पर वह जो बुढ़ापे की सफेदी और सफेद बाल आ गए थे उन्होने जैसे श्वेत हिम से उन्हे ढँक लिया हो। वे जैसे गौरीशंकर हो गए थे। रवीन्द्रनाथ के मन मे सौन्दर्य की बडी गहरी पकड थी इतनी गहरी पकड कि शुभ को भी वे सुन्दर का ही एक रूप समझते थे, अशुभ को असुन्दर का एक रूप समझते थे। बुरा आदमी इसलिए बुरा नही है कि बुरा काम करता है, बुरा आदमी इसलिए बुरा है कि बुरा आदमी कुरूप है और बुरे आदमियो का बुरा काम भी इसलिए बुरा है कि बुरे काम के परिणाम कुरूप है। अगर साधु भी कुरूपता पैदा कर रहा है जीवन मे, तो रवीन्द्रनाथ का विरोध है। सौन्दर्य की जिनके जीवन मे थोडी सी प्रतीति होगी वे मनुष्य के जगत के पार जो बडा जगत है, उसमे प्रवेश कर जाते हैं। साधारणत हम मनुष्य की दुनियाँ मे ही जीते हैं। सच तो यह है कि हम मनुष्य की दुनियाँ मे भी पूरी तरह नही जीते हैं, वहाँ भी अधूरे जीते हैं। मनुष्य के पार पत्थर भी है, वृक्ष भी है, पहाड भी है, चाँद-तारे भी हैं, आकाश भी है। यह इतना विराट चारो तरफ फैला है, इसमे हमारा कोई सम्बन्ध नही है। अभी लन्दन मे एक सर्वे किया जा रहा था स्कूल के बच्चो का। दस लाख बच्चो ने कहा कि उन्होने गाय नही देखी है। सात लाख बच्चो ने कहा कि उन्होने खेत नही देखा है। अब जिन बच्चो ने गाय नही देखी, खेत नही देखा, एक अर्थ मे जगत से बुरी तरह टूट गए हैं। इनका जगत से कोई सम्बन्ध नही रहा। इनका सम्बन्ध सिर्फ मानवीय जगत मे है। आज मैं एक किताब पढ रहा था। उस किताब के लेखक ने यह सुझाव दिया है कि चूंकि जमीन छोटी हो गई है और जमीन पर रहने वाले लोग ज्यादा हो गए हे इसलिए अब हमे जमीन के नीचे रहने का इन्तजाम कर लेना चाहिए, और धीरे-धीरे मनुष्य को उस जमीन के नीचे रहने के लिए राजी कर लेना चाहिए। वह ठीक कह रहा है। अगर मनुष्यता इसी तरह बढती गई तो आदमी को जमीन के नीचे रहना पडेगा। तब शायद हो सकता है, सूरज से भी हमारा कोई सम्बन्ध न रहे, चाँद तारो से भी हमारा कोई सम्बन्ध न रहे। तब हम प्रकृति से पूरी तरह टूट जायेंगे और आदमी या उसके द्वारा बनायी गई चीजें कारखाने,

मशीनें, मकान, या आदमी की दुनियाँ रह जायँगी। आदमी की दुनिया इस विराट दुनियाँ का बड़ा छोटा हिस्सा है। अगर हम पूरी दुनिया को खयाल मे लें तो यह कोई हिस्सा ही नही है। अगर हम पूरे जगत के विस्तार को सोचें तो आदमी क्या है, वह कुछ भी नही है। उसकी यह पृथ्वी क्या है, वह भी कुछ नहीं है। उसका यह सूरज भी क्या है, वह भी कुछ नही है। हम जगत के नगण्य हिस्से है। उस नगण्य हिस्से मे आदमी की दुनियाँ नगण्य है। उस नगण्य आदमी की दुनियाँ मे दस-पचास आदमियों के बीच एक आदमी सम्बन्धित होकर जी लेता है। स्वभावत इसके अस्तित्व में बहुत गहराई नहीं पैदा हो सकती है। फिर एक और समझ लेने की बात है कि मनुष्य के साथ हमारे जो भी सम्बन्ध हैं वे अपेक्षाओ के सम्बन्ध हैं। इसलिए वे पूर्ण रूप से सुन्दर नहीं हो सकते। जहाँ अपेक्षा है वहाँ कुरूपता प्रवेश कर जाती है। मनुष्य से हमारे जो सबध है वे माँग और पूर्ति के सबध हैं। हम एक दूसरे के साथ सम्बन्धित हैं कुछ शर्तों के साथ। जब आदमी जगत के सौन्दर्य से सम्बन्धित होता है तो पहली दफा बेशर्त सम्बन्ध होता है, और जब हम बेशर्त होते हैं तो सम्बन्धो की गहराई और ही हो जाती है। सौन्दर्य के सम्बन्ध मनुष्य को गहरे ले जाते हैं। ससार मे कवि, चित्रकार, नृत्यकार, मूर्तिकार, सगीतज्ञ, सौन्दर्य के स्रष्टा और सौन्दर्य के भाव को जानने वाले लोग है, लेकिन साधुओ के प्रभाव के कारण काव्य-सौन्दर्य और सगीत हमारे जीवन मे गहरा प्रवेश नही कर पाया। साधुओ को सदा इस बात का डर रहा है कि सौन्दर्य लोगो को अनीति मे ले जाता है जबकि सच्चाई यह है कि अगर सौन्दर्य का बोध बढ जाय तभी आदमी वस्तुत नैतिक हो पाता है अन्यथा नैतिक नही हो पाता। सौन्दर्य का जितना गहरा बोध होता है उतना आदमी सवेदनशील हो जाता है और जितना सवेदनशील हो जाता है उतना अनैतिक होना कठिन हो जाता है। सौन्दर्य के बोध की कमी ही अनीति मे ले जाती है। एक आदमी रुपए से प्रेम खरीदने की बात सोच सकता है, यह बताती है कि उसके पास कोई आन्तरिक गहराई का अस्तित्व नही है।

सौन्दर्य का बोध दूसरी गहरी परिधि है, जो मनुष्य को जगत से ऊपर उठाती है और विराट से जोडती है। रवीन्द्रनाथ मुझे दूसरे प्रतीक मालूम होते हैं। जरूरी नही है कि दूसरी परिधि पर जो है वह जरूरी रूप से शिव भी हो, शुभ भी हो, लेकिन बहुत सम्भावना है उसके शिव और शुभ होने की।

पहली परिधि के आदमी के लिए जरूरी नही है कि वह सिर्फ शुभ ही हो और सुन्दर का उसे बोध न हो। लेकिन उसके सौन्दर्य के बोध की कठिनाई ज्यादा है।

तीसरी परिधि है सत्य की, जहाँ व्यक्ति बाहर मे नहीं, स्वय से, अन्त मे सम्बन्धित होता है। सत्य तीसरा बिन्दु है जिसके प्रतीक अरविन्द हैं। जिनकी सारी खोज भीतर और भीतर, और भीतर, यह कौन है इसे जानने की खोज है। जो व्यक्ति सत्य को उपलब्ध होता है उसके लिए शिव और सुन्दरम् सहज ही उपलब्ध हो जाते है। इसलिए अरविन्द आचरण के सम्बन्ध मे बहुत अद्भुत हैं। गाँधी से पीछे नही हैं। वे सावित्री लिखकर बता सके हैं कि सौन्दर्य के बोध मे रवीन्द्र से वे पीछे नही है। अगर अरविन्द को कविता के ऊपर नोबल प्राइज नही मिला तो उसका कारण यह नही है कि अरविन्द की कविता रवीन्द्र से पिछडी हुई है। उसका कारण यह है कि नोबल प्राइज बाँटने वाले लोगो के दिमाग सावित्री को समझने मे असमर्थ हैं। ये तीन व्यक्ति मैं मौजूदा जिन्दगी से ले रहा हूँ ताकि बात हमे साफ हो सके। लेकिन तीनो मे से कोई भी मुक्त नही हो सकता है—न गाँधी, न रवीन्द्र, न अरविन्द। क्योकि ये तीनो अस्तित्व की बातें है। मुक्ति इसके पार शुरू होती है। अगर कोई आचरण पर रुक गया तो भी बंध जाता है, अगर कोई सौन्दर्य पर रुक गया है तो भी बँध जाता है, अगर कोई स्वय पर रुक गया है तो भी बंध जाता है। पहला बधन जरा दूर है, दूसरा बधन जरा निकट है, तीसरा बधन अति निकट है। लेकिन तीनो ही बधन हैं। अगर कोई व्यक्ति स्वय के भीतर ही रुक गया तो भी रुक गया। क्योकि स्वय के पार भी सर्व की सत्ता है। चरित्र पर रुक जाऊँ तो सामाजिक अश बन कर रह जाता हूँ, प्रकृति पर रुक जाऊँ तो प्रकृति का अश बनकर रह जाता हूँ, अपने पर रुक जाऊँ तो चेतना का अश होकर रह जाता हूँ। लेकिन सर्वात्मा का अश नही बन पाता हूँ। इन तीनो के पार जो होता है वही मुक्ति मे प्रवेश करता है वही फ्रीडम मे, टोटल फ्रीडम मे प्रवेश करता है।

सत्य, शिव और सुन्दरम् मनुष्य की तीन भाव-दशाएँ हैं। जब तीनो भाव-दशाओ के कोई पार होता है तो निर्भाव हो जाता है। तब वह मन के पार चला जाता है। समाधि तीनो के पार हो जाने का नाम है। लेकिन तीनो के पार होने के भी ढग हैं। एक ढग के प्रतीक रमण हैं और दूसरे ढग के प्रतीक कृष्णमूर्ति हैं। तीनो के पार होने का एक ढग तो यह है कि तीनो शान्त हो

जायें । तीनो में से कोई भी न रह जाय, तीनो बिदा हो जायें । जैसे लहर खो गई सागर मे, कोई लहर न बची—न शिव की, न सुन्दरम् की, न सत्य की । तीनो शान्त हो गई । रमण निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध होते हैं । तीनो शान्त हो गए हैं । न सत्यं की कोई पकड है, न शिव की कोई पकड है, न सुन्दरम् की कोई पकड है । तीनो की लहर खो गई है । यह निष्क्रिय समाधि है । रमण मे यात्रा शुरू होती है मुक्ति की । कृष्णमूर्ति ठीक विपरीत है रमण से । चौथी जगह खडे हैं, लेकिन विपरीत है । रमण मे तीनो खो गए है, कृष्णमूर्ति मे तीनो एक है, सजग हैं । तीनो समतुल हैं । तीनो की शक्ति बराबर एक है और तीनो एक-से प्रकट हैं । अरविन्द को तो कविता लिखनी पडती है, कृष्णमूर्ति जो बोल रहे है, वह कविता है, अलग से लिखनी नहीं पडती । कृष्णमूर्ति का होना ही कविता है । अरविन्द का तो कोई क्षण काव्य का होगा, कृष्णमूर्ति के लिए पूरा अस्तित्व काव्य है । गाँधी को सयम साधना पडता होगा, कृष्णमूर्ति के लिए वह साधना नही पडना है, वह उनकी छाया है । गाँधी को अहिंसा लानी पडती है, कृष्णमूर्ति के लिए अहिंसा आती है । अरविन्द को सत्य को खोजना पडता है, कृष्णमूर्ति को सत्य ही खोजता हुआ आ गया है । तीनो समतुल हैं । एक ही शक्ति के है । लेकिन रमण और कृष्णमूर्ति मे क्या फर्क है ? दोनो एक ही द्वार पर खडे है । एक निष्क्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है, क्योंकि तीनो के पार चला गया है । एक सक्रिय समाधि को उपलब्ध हुआ है क्योंकि तीनो के समन्वय को उपलब्ध हो गया है । दोनो मे थोडा-सा फर्क है । अन्दर का कोई फर्क नही है । लेकिन व्यक्तित्व का बुनियादी फर्क है । रमण की समाधि ऐसी है जैसे बूंद सागर मे गिर जाय—बूंद समानी समुन्द में । और कृष्णमूर्ति की समाधि ऐसी है जैसे बूंद मे सागर गिर जाय—समुन्द समाना बूंद में । परिणाम मे तो एक ही घटना घट जायगी । लेकिन दोनो के व्यक्तित्व भिन्न है ।

रमण और कृष्णमूर्ति से भी महतर व्यक्तित्व हैं । जैसे – बुद्ध, महावीर या क्राइस्ट । बुद्ध, महावीर और क्राइस्ट मे रमण और कृष्णमूर्ति सयुक्त रूप से प्रकट हुए हैं, अलग-अलग नही हैं । निष्क्रिय और सक्रिय समाधि एक साथ घटित हुई है । महावीर मे, बुद्ध मे या क्राइस्ट मे निषेध और विधेय दोनो एक साथ घटित हुए हैं । महावीर जब बोल रहे हैं तब वे कृष्णमूर्ति-जैसी भाषा बोलते हैं । और महावीर जब चुप है तब वे रमण-जैसे चुप है । रमण मौन है, साइलेंट हैं । कृष्णमूर्ति मुखर है, प्रकट है । कृष्णमूर्ति मे तेजी है, रमण मे सब

शान्ति है। अगर महावीर को बोलते हुए कोई देखे तो वे कृष्णमूर्ति-जैसे होंगे। और महावीर को चुप देखे तो वे फिर रमण-जैसे होंगे। बुद्ध और क्राइस्ट भी ऐसे ही व्यक्तित्व है। एक तरफ क्राइस्ट इतने शान्त हैं कि सूली पर लटकाए जा रहे है तो भी वे परमात्मा से कह रहे हैं कि इन्हें माफ कर देना, क्योंकि इन्हें पता नही है कि ये क्या कर रहे है। यह रमण की हालत है। क्राइस्ट चर्च मे कोडा लेकर चला गया है और सूदखोरो को कोडे मारकर उनके तख्ते उलट दिए है और उनको घसीट कर मन्दिर के बाहर निकाल दिया है। वह कृष्ण-मूर्ति के रूप मे है। मुझे कोई कहता है कि कृष्णमूर्ति इतने चिल्ला कर और इतने गुस्से मे क्यो बोलते है? जहाँ सिर्फ सक्रिय समाधि होगी वहाँ ऐसी घटना घटेगी। मुझे कोई कहता है कि रमण चुप क्यो बैठे रहते हैं? लोग पूछने जाते है और वे चुप ही बैठे रहते है। तो मैं उनसे कहता हूँ कि निष्क्रिय समाधि ऐसी ही होगी। वह चुप होकर ही उत्तर दे रहे है। बुद्ध, महावीर और जीसस मे ये दोनो घटनाएँ एक साथ है। बुद्ध, महावीर और जीसस के पास और भी पूर्णतर व्यक्तित्व है। लेकिन बुद्ध, महावीर और जीसस से भी पूर्णतर व्यक्तित्व की सम्भावनाएँ है और वैसा व्यक्तित्व श्रीकृष्ण के पास है।

बुद्ध, महावीर और जीसस मे दोनो चीजो के लिए अलग-अलग क्षण है। जब वे निष्क्रिय होते हैं तब वे अलग मालूम पडते है, जब वे सक्रिय होते है तब वे अलग मालूम पडते है। लेकिन आज तक ईसाई इस बात को हल न कर पाये कि जो जीसस कोडा मार सकता है, वह जीसस सूली पर चुपचाप कैसे लटक सकता है! इन दोनो बातो का टाइम अलग-अलग है, घडी अलग-अलग है। इसलिए जीसस मे बहुत कन्ट्राडिक्शन्स मालूम पडते हैं। बुद्ध मे भी, महावीर मे भी। कृष्ण का व्यक्तित्व और भी पूर्णतर है। वहाँ यह कन्ट्राडिक्शन ही नही है। वहाँ वे दोनो एक साथ है। उनके ओठ पर बाँसुरी और उनकी आँख मे क्रोध एक साथ है। उनका वचन कि युद्ध मे नही उतरूँगा और उनका वचन तोड देना और युद्ध मे उतर जाना एक साथ है। उनकी यह बात कि करुणा भी धर्म है और उनकी यह बात कि युद्ध मे लडना भी धर्म है—एक साथ है। कृष्ण के व्यक्तित्व मे अलग खड बाँटना मुश्किल हैं। वहाँ निष्क्रिय और सक्रिय एक साथ घटित हुआ है। वहाँ निष्क्रिय और सक्रिय का भेद भी गिर गया है। कृष्ण मे आध्यात्मिक प्रवेश की आखिरी, अधिकतम योग्यता है।

इसका मतलब यह नही है कि रमण या कृष्णमूर्ति जिस मोक्ष मे प्रवेश होगे वह कुछ न्यून क्षमता का होगा। इसका यह भी मतलब नही है कि बुद्ध और महावीर जिस मुक्ति मे जायँगे उसका आनन्द कृष्ण की मुक्ति से कम होगा। इसका यह मतलब नही है कि इन दोनो मे कोई छोटा-बडा है। इसका कुल मतलब यह है कि तीनो के व्यक्तित्व मे भेद है। जहाँ ये पहुँचते हैं वह तो एक ही जगह है। लेकिन इन तीनो मे बुनियादी फर्क है। रमण और कृष्णमूर्ति के व्यक्तित्व से सत्य, शिव, सुन्दरम् होना शुरू हो जाता है।

रमण और कृष्णमूर्ति के नीचे तीन तल हैं, जहाँ कोई शिव को पकडकर बैठ गया है, जहाँ कोई सुन्दर को पकडकर बैठ गया है, जहाँ कोई सत्य को पकडकर बैठ गया है और हम सब तो उन तीनो तल के बाहर ही खडे रह जाते है। एक अर्थ मे जबतक हम पहली सीढी पर न खडे हो तबतक हम मनुष्य होने के अधिकारी नही होते। गाधी जी के साथ मनुष्यता शुरू होती है, अरविन्द के साथ मनुष्यता पूरी होती है। रमण और कृष्णमूर्ति के साथ अति मानव शुरू होता है। कृष्ण के साथ अति मनुष्यता का अन्त होता है। हम कहाँ हैं? हम पशु नही हैं, इतना पक्का है। हम आदमी हें, इसमे सन्देह है। एक बात तय है कि हम जानवर नही है। दूसरी बात इतनी तय नही है कि हम आदमी है। क्योंकि जानवर न होना केवल निषेध है। आदमी होना एक विधायक उपलब्धि है। हम जानवर नही हैं, प्रकृति वहाँ तक छोड देती है और आदमी होने का अवसर देती है कि हम आदमी हो सके। प्रकृति हमे आदमी की तरह पैदा नही करती। अगर प्रकृति हमे आदमी की तरह पैदा कर दे तो फिर हम आदमी कभी भी न हो सकेंगे। क्योकि आदमी होने का पहला कृत्य चुनाव है। अगर प्रकृति हमे चुनाव का मौका न दे तो फिर हम जानवर ही होगे। आदमी और जानवर मे जो फर्क है वह एक ही है कि जानवर के पास कोई चुनाव नही है। कुत्ता पूरा कुत्ता पैदा होता है और आप ऐसा नही कह सकते कि यह कुत्ता उस कुत्ते से थोडा कम कुत्ता है। ऐसा कहेंगे तो आप पागल मालूम पडेंगे। सब कुत्ते बराबर कुत्ते होते है। दुबले-पतले हो सकते है, मोटे हो सकते हैं, लेकिन कुत्तापन बिलकुल बराबर होगा। पर आप एक आदमी के सम्बन्ध मे बिलकुल कह सकते है कि यह आदमी थोडा कम आदमी है, यह आदमी थोडा ज्यादा आदमी है। आदमियत जन्म से नही मिलती, इसलिए यह सम्भव है। आदमियत हमारा सृजन है

आदमियत हम निर्मित करते है, आदमियत हमारी उपलब्धि और खोज है, आदमियत हमारा आविष्कार है। लेकिन हम सारे लोग जन्म के साथ यह मान लेते हैं और बडी भूल हो जाती है कि हम आदमी है। जन्म के साथ कोई भी आदमी नही होता। किसी माँ-बाप की हैसियत आदमी पैदा करने की नही है। सिर्फ आदमी होने का अवसर पैदा किया जाता है। मजा यह है कि यदि आदमी चाहे तो आदमी हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो आदमी के पार हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु हो सकता है, यदि आदमी चाहे तो पशु से भी नीचे हो सकता है। अगर हम ठीक से समझे तो आदमियत का मतलब है चुनाव की अनन्त क्षमता। नीचे पशुओ मे कोई चुनाव नही है। पशु जैसे है वैसे होने को मजबूर है। अगर एक कुत्ता भूकता है तो यह उसका चुनाव नही है। अगर एक शेर हमला करता है और हिंसा करता है तो यह उसका चुनाव नही है। इसलिए किसी शेर को आप हिंसक नही कह सकते। क्योकि जिसकी अहिंसक होने की कोई क्षमता ही नही है उसको हिंसक कहने का क्या अर्थ है। इसलिए आप किसी जानवर पर अनैतिक होने का जुर्म नही लगा सकते और अपराधी नही ठहरा सकते। हम सात साल तक के बच्चे को अपराधी ठहराने का विचार नही करते, क्योकि हम मानते है कि अभी वह आदमी कहाँ है। अभी जानवर चल रहा है। इसलिए बच्चे को हम जानवर के साथ गिनते है। अभी चुनाव शुरू नही हुआ है। लेकिन सात साल तक न हो, यह तो समझ मे आता है, फिर सत्तर साल तक न हो, तो समझ मे आना बहुत मुश्किल हो जाता है। कुछ आदमी बिना चुनाव किए ही जी लेते है। प्रकृति उन्हे जैसा पैदा करती है वैसा जी लेते है।

चुनाव मनुष्यता का निर्णायक कदम है। कहाँ से चुनाव करे? शिव से चुनाव करे? सुन्दर से चुनाव करे? सत्य से चुनाव करे? कहाँ से चुनाव करे? साधारणत दो तरह की बाते रही हैं। एक तो वे लोग है, जो कहते है, पहले आचरण बदलो फिर और कुछ गहरा बदला जा सकेगा। मैं उनसे राजी नही हूँ। मेरी अपनी समझ यह है कि आचरण को अगर बदलने से शुरू किया तो पाखंड का पूरा डर है। इसलिए मै कहता हूँ, स्वय को समझने से शुरू करो। सत्य से शुरू करो, गाँधी से शुरू मत करो। अरविन्द से शुरू करो। पहले स्वय को समझने की चेष्टा से शुरू करो और जिस दिन स्वय को जान सको उस दिन स्वय के बाहर जो फैला हुआ विराट है, उसे जानने की

चेष्टा को फैलाओ तो सौन्दर्य जीवन मे उठेगा। और जिस दिन इस विराट को जानने की बात भी पूरी हो जाय उस दिन इस विराट के साथ कैसे व्यवहार करना, उसका विस्तार करो तो शिव ही फैलेगा। सत्य से शुरू करो, सौन्दर्य पर फैलाओ, शिव पर पूरा करो। साधारणत आजतक दुनियाँ मे जितने धर्म है वे कहते है शिव से शुरू करो और सत्य की यात्रा करो। वे कहते हैं आचरण से शुरू करो और आत्मा की तरफ जाओ। मैं आपसे कहता हूँ, आत्मा से शुरू करो और आचरण को आने दो। असल मे जो आचरण से शुरू करेगा वह हो सकता है जिन्दगी बहुत फिजूल के श्रम मे गँवा दे। गाँधीजी ने जिन्दगीभर ब्रह्मचर्य का प्रयोग किया लेकिन अन्तिम क्षण तक तय न कर पाए कि ब्रह्मचर्य उपलब्ध हुआ है या नही हुआ है। आचरण से शुरू करने की बडी तकलीफ है। महावीर को कभी शक नही हुआ, बुद्ध को कभी शक नही हुआ। गाँधी को शक हुआ। उसका कारण है, उन्होने आचरण से ही जीवन को साधा था। बाहर की दीवाले, जीवन की बाहर की परिधि कितनी ही शुभ हो जाय तो भी जरूरी नही है कि भीतर जो जी रहा है वह शुभ होगा। लेकिन अगर भीतर जो जी रहा है वह सत्य हो जाय तो जो बाहर है वह अनिवार्य रूप मे शुभ हो जाता है।

सारी दुनियाँ मे धर्मों ने आदमी मे कुछ पदा न कर पाया, क्योकि उनकी प्रक्रिया उलटी है। आचरण से शुरू करते हैं और आत्मा तक जाने की बात कहते हैं। आदमी जिन्दगी भर आचरण को सँभालने मे नष्ट हो जाता है और कभी तय नही कर पाता कि आत्मा को सँभालने का क्षण आया है। अगर मनुष्य जाति को सच मे धार्मिक बनाना है तो यात्रा भीतर मे शुरू करनी पडेगी और बाहर की तरफ फैलना पडेगा। मजे की बात यह है कि भीतर से यात्रा करना सरलतम है, क्योकि जिसे हम बाहर साध-साध कर भी साध नही पाते वह भीतर साधना से अपने आप आ जाता है। जैसे कोई आदमी गेहूँ बोता है तो भूसा अपने आप पैदा होता है, भूसे को अलग से पैदा नही करना पडता है। लेकिन कोई यह सोचे कि जब गेहूँ के साथ भूसा पैदा हो जाता है तो हम भूसा बो दें तो गेहूँ भी पैदा हो जायगा। भूसे के साथ गेहूँ पैदा नही होता। भूसा बहुत बाहरी चीज है, गेहूँ बहुत भीतरी चीज है। असल मे भूसा गेहूँ के लिए पैदा होता है, उसकी रक्षा के लिए पैदा है। अगर गेहूँ नही है तो भूसे के पैदा होने की कोई जरूरत नही

होती। जब भीतर सत्य पैदा होता है तो उसके आसपास सौन्दर्य और शिव अपने आप रक्षा के लिए पैदा होते हैं,। असल मे जब भीतर सत्य का दीया जल जाता है तो अपने आप शिव का आचरण निर्मित होता है। क्योकि सत्य के दीए को अशिव आचरण मे बचाया नही जा सकता। जब भीतर सत्य पैदा हो जाता है तब चारो तरफ जीवन मे सौन्दर्य की आभा फैल जाती है, वैसे ही जैसे दीया जलता है तो घर के बाहर रोशनी फैलने लगती है। अगर इस कमरे मे दीया जलता हो तो खिडकियो के बाहर रोशनी फैलने लगेगी। लेकिन आप कही सोचे कि खिडकियो के बाहर पहले रोशनी फैले और फिर भीतर दीया जलायेंगे। इस खयाल मे पड गए तो बहुत खतरा है। हो सकता है कोई नकली रोशनी लाकर बाहर चिपका ले, तो बात अलग है। लेकिन नकली रोशनी अँधेरे से भी बदतर होती है। नकली फूल असली फूल से भी बुरा होगा, क्योंकि असली फूल न हो तो असली फूल के खोज की पीडा होती है, और नकली फूल हाथ मे हो तो यह भी खयाल भूल जाता है कि असली फूल को खोजना है।

मनुष्य जाति का अबतक का धर्म शिव मे शुरू होता था, सत्य की यात्रा पर निकलता था। इसलिए हम बहुत लोगो को न तो शिव बना पाए, न सुन्दर बना पाए, न सत्य दे पाए। भविष्य मे अगर धर्म की कोई सभावना है तो इस प्रक्रिया को पूरा उलट देना पडेगा। सत्य से शुरू करें, शिव और सुन्दरम् उनके पीछे आएँ। लेकिन ध्यान रहे, सत्य भी उपलब्ध हो जाय, शिव भी मिल जाय, सुन्दरम् भी मिल जाय, तो भी हम सिर्फ मनुष्य हो पाते है, पूरे मनुष्य। मनुष्य होना काफी नही है, जरूरी है। जैसे ही हम मनुष्य होते है, वैसे ही एक नई यात्रा का द्वार खुलता है जो मनुष्यता के भी पार ले जाता है। और जब कोई मनुष्यता के पार जाता है, तभी पहली दफे जीवन मे उस आनद को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का आनद है, उस स्वतत्रता को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व की स्वतत्रता है, उस अमृत को उपलब्ध होता है जो अस्तित्व का अमृतत्व है।

इन तीनो के बाहर जाना है, लेकिन हम तो इन तीनो मे भी नही गए। इन तीनो मे जाना है, ताकि इन तीनो के पार जाया जा सके। सत्य, शिव सुन्दरम् यात्रा है, अत नही है। मार्ग है, मजिल नही है। साधन है, साध्य नही है। सत्य, शिव, सुदरम् का यह त्रय प्रक्रिया है, और सच्चिदानद का त्रय

उपलब्धि है। उसकी थोडी-थोडी झलक मिलनी शुरू होती है। जो अपने जीवन मे शिव को उतार लेता है, जो अपने जीवन मे सत्य को उतार लेता है उसके जीवन मे सुख आना शुरू हो जाता है। लेकिन जहाँ तक सुख है वहाँ तक दुख की सभावनाएँ सदा मौजूद रहती हैं। जो सीमा के पार चला जाता है वहाँ आनंद आना शुरू होगा। इसलिए न सुख रहा, न दुख रहा। इसलिए आनंद के विपरीत कोई भी शब्द नही है, आनद अकेला शब्द है मनुष्य की भाषा मे जिसका उलटा नही है। सुख का उलटा दुख है और शाति का उलटा अशाति है और अँधेरे का उजाला है और जीवन का मृत्यु है। आनन्द का उलटा शब्द नही है। आनद अकेला शब्द है जिसके विपरीत कोई शब्द नही है। जैसे ही हम सुख और दुख के पार होते है, आनद मे प्रवेश होता है। मुक्ति का द्वार तो रमण और कृष्णमूर्ति से खुल जाता है। आप कहेंगे, जब द्वार यही खुल जाता है, तो बुद्ध और महावीर और कृष्ण तक जाने की क्या जरूरत है ? अलग-अलग व्यक्ति के लिए अलग-अलग बात निर्भर करेगी। मैं बबई आता हूँ तो बोरीवली उतर सकता हूँ। वह भी बबई का एक स्टेशन है। दादर भी उतर सकता हूँ, वह भी बबई का स्टेशन है। सेंट्रल भी उतर सकता हूँ वह भी बबई का स्टेशन है, लेकिन वह टर्मिनस है। एक सिर्फ प्रारभ है और एक अत है। कृष्ण टर्मिनस पर उतरते है जहाँ ट्रेन ही खत्म हो जाती है। उसके आगे फिर यात्रा ही नही। रमण और कृष्णमूर्ति बोरीवली उतर जाते हैं, महावीर और बुद्ध और जीसस दादर उतर जाते हैं। अपनी पसद की बात है। लकिन रमण और कृष्णमूर्ति तक तो प्रत्येक को पहुँचना ही चाहिए। उसके आगे बिलकुल पसद की बात है कि कौन कहाँ उतरता है। वह बिलकुल व्यक्तिगत झुकाव है। लेकिन बहुत दूर है रमण और कृष्णमूर्ति ! गाँधी होना ही कितना मुश्किल मालूम पडता है ! कितने लोग बेचारे चर्खा चला-चला कर गाँधी होने की कोशिश करते हैं। चर्खे ही चल पाते हैं और चर्खा परेशान हो जाता है और वे गाँधी नही हो पाते। रवीन्द्रनाथ होना ही कितना मुश्किल है ! कितनी तुकबंदी चलती है, कितनी कविताएँ रची जाती हैं, लेकिन काव्य का जन्म नहीं हो पाता। कितने लोग आँख बद कर ध्यान करते हैं, पूजा करते हैं, उपवास करते हैं। अरविंद होना भी मुश्किल है। लेकिन अगर रवींद्र रवींद्र हो सकते हैं, अरविंद अरविंद हो सकते हैं, तो कारण नही है कि कोई भी दूसरा व्यक्ति क्यो नही हो सकता है। मनुष्य का बीज समान है, उसकी

संभावनाएँ समान है। एक बार सकल्प हो तो परिणाम आने शुरू हो जाते हैं।

एक घटना मैं पढ रहा था, दो दिन पहले। अमरीका का एक फिल्म अभिनेता मरा। मरने के दस साल पहले उसने वसीयत की थी कि मुझे मेरे छोटे से गाँव मे ही दफनाया जाय। लोग महात्माओ की वसीयत नही मानते, अभिनेताओ की वसीयत कौन मानेगा ? जब वह मरा तो अपने गाँव से दो हजार मील दूर मरा था। कौन फिक्र करता था ? मरते क्षण भी उसने कहा कि देखो, मुझे यहाँ मत दफना देना। मैं आखिरी बात तुमसे कह दूं कि मुझे मेरे गाँव पहुँचा देना, जहाँ मैं पैदा हुआ था। उसी गाँव मे मुझे दफनाया जाय। वह मर गया। लोगो ने कहा, मरे हुए आदमी की क्या बात है। उन्होने ताबूत मे बन्द करके उसे दफना दिया। लेकिन रात एक भयकर तूफान आया और उसकी कब्र उखड गई। उसकी कब्र के पास खडा हुआ दरख्त गिर गया और उसका ताबूत समुद्र मे बह गया और दो हजार मील ताबूत ने समुद्र की यात्रा की और अपने गाँव के किनारे जाकर लग गया। जब लोगो ने ताबूत खोला तो सारा गाँव एकत्र हो गया। वह उनके गाँव का बेटा था जो सारी दुनियाँ मे जगजाहिर हो गया था। उन्होने उसे उसी जगह दफना दिया जहाँ वह पैदा हुआ था। उस अभिनेता की जीवन-कथा मैं पढ रहा था। उस लेखक ने लिखा है कि क्या यह उसके सकल्प का परिणाम हो सकता है ? यह उसने प्रश्न उठाया है।

अगर मैं आदमियो की तरफ देखूं तो शक होता है कि सकल्प का परिणाम कैसे हो सकता है ? आदमी जिन्दगी मे जहाँ पहुँचना चाहता है वह जिन्दा रह कर नही पहुँच पाता। यह आदमी मर कर जहाँ पहुँचना चाहता था कैसे पहुँच गया ? लेकिन दो हजार मील की यह लम्बी यात्रा और अपने गाँव पर लग जाना और उसी रात तूफान का आना, ऐसा भी नही मालूम पडता कि सकल्प से बिलकुल हीन हो। सकल्प इसमे रहा होगा। (सकल्प की इतनी शक्ति है कि मुर्दा भी यात्रा कर सकता है तो क्या हम जिन्दा लोग यात्रा नही कर सकते ? लेकिन हमने कभी यात्रा ही नही करनी चाही, हमने कभी अपनी इच्छा को ही नही पुकारा है, हमने कभी सोचा ही नही कि हम भी कुछ हो सकते हैं या हम भी कुछ होने को पैदा हुए है या हमारे होने का भी कोई गहरा प्रयोजन है।

कोई गहरा बीज हम में छिपा है जो फूटे और वृक्ष बने और फूलों को उपलब्ध हो, हमें वह खयाल ही नही है।)

पहले तो जन्म को जीवन मत समझ लेना और पशु होने को मनुष्य होना न समझ लेना। मनुष्य की शकल मे मनुष्य की उपलब्धि मत समझ लेना। मनुष्य होने के लिए श्रम करना पडेगा, सृजन करना पडेगा, यात्रा करनी पडेगी और मनुष्य होने के लिए शिव से शुरू मत कर देना अन्यथा लम्बी यात्रा हो जायगी और जन्मो का भटकाव हो जायगा। यात्रा शुरू करनी हो तो सत्य से शुरू करना और शिव तक फैलाना और अंतिम बात कि सत्य भी मिल जाय, शिव भी मिल जाय, सुन्दरम् भी मिल जाये तो भी रुक मत जाना। यह भी पडाव नही है। मनुष्य के ऊपर जाना। मनुष्य होना जरूरी है, लेकिन पर्याप्त नही है। मनुष्य के ऊपर उठकर ही मनुष्य का पूरा फूल खिलता और विकसित होता है।

आचार्य रजनीश का अन्य साहित्य

असंविगत सन्यास	0 30
अन्तर्यात्रा	5 00
अन्तर्वीणा	6 00
अस्वीकृति मे उठा हाथ (भारत, गाँधी और मेरी चिन्ता)	5 00
अहिंसा दर्शन	1 00
अज्ञात के नये आयाम	1 00
ईशावास्योपनिषद्	15 00
कृष्ण मेरी दृष्टि मे	40 00
क्रांति की वैज्ञानिक प्रक्रिया	1 50
क्रांति बीज	6 00
गहरे पानी पैठ	5 00
गीता दर्शन पुष्प ४	30 00
गीता दर्शन पुष्प ५	25 00
गीता दर्शन पुष्प ६	30 00
,, ,, ७	12 00
जिन खोजा तिन पाइयाँ	प्रेस मे
ज्यो की त्यो धरि दीन्ही चदरिया	5 00
जनसंख्या विस्फोट समस्या समाधान	1 50
ढाई आखर प्रेम का	6 00
ताओ उपनिषद् भाग १	40 00
,, ,, भाग २	शीघ्र
धर्म और राजनीति	1 00
निर्वाण उपनिषद्	15 00
प्रेम के फूल	5 00
प्रभु की पगडडियाँ	6 00
पथ की खोज	2 00
पथ के प्रदीप	6 00
भारत गाधी और मै	3 00
बिखरे फूल	1 00
मुल्ला नसरुद्दीन	5 00
महावीर वाणी भाग १	30 00
,, ,, भाग २	30 00
मै कहता आँखन देखी	6 00
युवक और यौन	1 00
विद्रोह क्या है ?	1 50
शाति की खोज	3 50
शून्य के पार	4 00
शून्य की नाव	5 00
सत्य की खोज	4 00
सत्य की पहली किरण	6 00
समाजवाद से सावधान	3.00
साधनापथ	5.00
सारे फासले मिट गये	1 25
सिंहनाद	1 50
सत्य के अज्ञात सागर का आमंत्रण	2.00
ज्योतिशिखा (त्रैमासिक पत्रिका)	2 00
युक्रान्द (मासिक पत्रिका)	1 00

Books in English

Beyond & Beyond	3 00
Dynamics of Meditation	15 00
Flight of the Alone to Alone	2 50
From Sex to Superconsciousness	6 00
I am the Gate	10 00
Inward Revolution	15 00
Lead Kindly Light	1 50
LSD A short cut to false Samadhi	2 00
Meditation A New Dimension	3 00
Rajneesh A Glimpse	1 25
Seriousness	2 00
The Dimensionless Dimension	2 00
The Eternal Message	3 00
The Gateless Gate	2 00
The Silent Exposition	12 50
Secrets of Discipleship	3 00
Thy will be done	2 00
The Silent Music	2 00
The Turning In	2 00
The Vital Balance	1 50
Towards the Unknown	1 50
What is Meditation ?	4 00
Wisdom of Folly	6 00
Yoga As Spontaneous Happening	2 00

आचार्य रजनीश के सम्पूर्ण साहित्य के लिए पता करें :—

मो ती ला ल ब ना र सी दा स

प्रधान कार्यालय बंगलो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली ७

शाखाएं १. चौक, वाराणसी-१ (उ० प्र०)